प्रभा खेतान के लेखन में स्त्री संवेदना

Women Sensibility in Prabha Khetan's Writing

(Prabha Khetan ke lekhan mein Stree Samvedna)

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध

शोध निर्देशक

प्रो. राम चन्द्र

शोधार्थी

आशा मीणा

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली –110067

2018

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Date: 05/02/2018

DECLARATION

I here declare that the research work done in this Ph. D. Thesis Entitle " PRABHA KHETAN KE LEKHAN MEIN STREE SAMVEDNA"(Women Sensibility in Prabha Khetan's Writing) by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

ASHA MEENA
(Research Scholar)

PROF. RAM CHANDRA
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. GOBIND PRASAD
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, Jnucil@gmail.com

पूजनीय माता–पिता
को समर्पित...

अनुक्रमणिका सूची

			पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन			1-6
प्रथम अध्याय	:	स्त्री विमर्श की संक्षिप्त पृष्ठभूमि और प्रभा खेतान की स्त्री दृष्टि	7-39
द्वितीय अध्याय	:	प्रभा खेतान की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री संवेदना	40-82
तृतीय अध्याय	:	प्रभा खेतान की आत्मकथा में अभिव्यक्त स्त्री जीवन	83-107
चतुर्थ अध्याय	:	प्रभा खेतान के कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री संघर्ष	108-167
पंचम अध्याय	:	प्रभा खेतान की आलोचनात्मक साहित्य में स्त्री संवेदना	168-198
उपसंहार			199-204
संदर्भ–ग्रंथ सूची–			205-212

(क) आधार–ग्रंथ सूची

(ख) सहायक–ग्रंथ सूची

(ग) पत्र–पत्रिकाएँ

प्राकक्थन

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही दलित और स्त्री शोषित रही हैं इसीलिए उन्नीसवीं सदी के मध्य में दो बड़े आंदोलन हुए। दलितों ने अपनी मुक्ति की आकांक्षा को लेकर और स्त्रियों ने अपनी अस्मिता की पहचान को लेकर बड़े आंदोलन किये। जिसमें दलित और स्त्री मुक्ति आन्दोलन प्रमुख हैं। बीसवीं सदी के प्रारंभ तक आते–आते स्त्री लेखिकाओं ने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य चिंतन के प्रभाव स्वरूप अपनी संवेदनाओं को साहित्य में रेखांकित करना शुरू कर दिया । हालांकि पूर्व में ही स्त्रियों की वेदना, पीड़ा और उनकी मुक्ति को लेकर पुरुष लेखकों ने अनेक साहित्य का सृजन किया है। लेकिन स्त्री मुक्ति की संवेदनात्मक अनुभूति जिस गहराई के साथ स्त्री लेखन में दिखाई देती है, वैसी अनुभूति की प्रामाणिकता पुरुष साहित्यकारों के लेखन में दिखाई नहीं देती। यदपि बीसवीं सदी के उतरार्ध में स्त्रियों ने अपने जीवन की पीड़ा को साहित्य में व्यक्त करना शुरू कर दिया। उस दौर की महिला लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्दगल, नासिरा शर्मा, कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्बदा आदि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री के शोषण के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति की है। उसी कड़ी में प्रभा खेतान का नाम लिया जाता है। जिन्होंने भारतीय और पाश्चात्य विमर्श के प्रभाव स्वरूप स्त्री अस्मिता के सवाल को साहित्य के माध्यम से उठाया। उनकी कविताओं, उपन्यासों और आलोचनात्मक ग्रंथों में ग्रामीण और महानगरीय जीवन की स्त्री की पीड़ा और उनमें मुक्ति की छटपटाहट को देखा जा सकता है। प्रभा खेतान के लेखन की महत्वपूर्ण विशेषता है कि उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री मुक्ति के सवाल को बड़े ही पुरजोर तरीके से समाज के सामने रखा हैं। अपने साहित्य में उन्होंने स्त्री अस्मिता से सम्बन्धित विचारों को खुलकर प्रस्तुत किया है।

वह अपने साहित्य में स्त्री शोषण की तस्वीर को समाज के सामने लाने के लिए कथा का जो ताना–बाना बुनती हैं उसकी संवेदना अपने परिवेश से ग्रहण करती है। सबसे बड़ी बात है उन्होंने समाज में स्त्रियों के शोषण के जिन रूपों को देखा था उसे बड़ी गहराई के साथ अभिव्यक्त करती हैं।

प्रभा खेतान विभिन्न युगों में स्त्री शोषण के भिन्न–भिन्न रूपों की जो यथार्थ तस्वीर खींचती हैं उसमें एक साथ कई पीढ़ियों को सम्मिलित करती हैं, ताकि

पाठक को बदलते सामाजिक, राजनीतिक परिवेश में स्त्री के शोषण और शोषण के विभिन्न रूपों का पता चल सके। यही नहीं वह पीढ़ियों के अंतराल में स्त्री चेतना और संवेदना में क्या अंतर आया, उसे भी उजागर करती हैं। अपनी रचनाओं में स्त्री मुक्ति से संबंधित प्रश्नों को उठाती हैं और पाठक उन सवालों के जवाब सोचने के लिए बाध्य हो जाता है।

प्रभा खेतान की कविताओं में स्त्री की पीड़ा और उससे मुक्ति की छटपटाहट को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है उन्होंने अपनी कविताओं में प्रेम, प्रेम की वेदना, प्रतीक्षा की बेचौनी, आम आदमी की वेदना, नगरी समस्या, परिवारिक संवेदनशीलता और मानसिक द्वंद उजागर करती हैं।

प्रभा खेतान ने उपन्यास, कविताएं और आत्मकथा का भी सृजन किया है प्रभा खेतान अपने आत्मकथा में स्त्री के शोषण के कारणों पर प्रकाश डालते हुए यह बताने का प्रयास करती हैं कि समाज में औरत जितना रोती है उतनी ही कमजोर होती जाती है और समाज में कमजोर स्त्री का शोषण सबसे अधिक होता है। एक स्त्री होने के नाते स्त्री के मन की पीड़ा और संवेदनाओं को बड़ी ही गहराई के साथ अनुभव करती हैं स्त्रियों के प्रति जो उनकी स्वानुभूति है वही स्वानुभूति उनके स्त्री लेखन में दिखाई देती है।

प्रभा खेतान स्त्री को उपनिवेश की संज्ञा देती हुई कहती हैं कि पुरुष समाज में स्त्रियों को प्रायः दोयम दर्जे का स्थान दिया जाता है। समाज में पुरूष अपना वर्चस्व बनाये रखना चाहता है ताकि स्त्रियों का शोषण किया जा सके। परिवार और समाज में स्त्रियों की स्वतंत्रताओं का हनन किया जाता हैं। आज भूमंड़लीकरण के दौर में बाजारीकरण की प्रक्रिया में भी स्त्रियों की स्वतंत्रताओं का हनन किया जाता है। स्त्रियों को एक ओर आत्मनिरर्भर बनाया जाता है तो दूसरी ओर उनके शोषण के नये–नये आयाम तैयार किये जाते हैं। जब तक स्त्री अपनी स्वतंत्रता अपने अस्तित्व के लिए स्वंय संघर्ष नहीं करेंगी तब तक उन्हें स्वतंत्रत जीवन जीने का अधिकार नहीं मिलेगा।

प्रभा खेतान स्वयं मारवाड़ी समाज से थी इसीलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में जहां एक ओर पुरातनपंथी मारवाड़ी समाज की पुरानी परंपराओं, रीति–रिवाजों आदि के संस्कारों में जकड़ी स्त्री की वेदना और पीड़ा को अभिव्यक्त किया है, वहीं

दूसरी ओर आधुनिक स्त्री की त्रासदी को भी यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया हैं। स्त्री शिक्षित आत्मनिर्भर स्वतंत्र तो हो जाती है लेकिन स्वतंत्रता के नाम पर समाज में मुक्त व्यवहार स्त्रियों के लिए एक अभिशाप बन जाता है। वह मानती है कि स्वतंत्रता एक सीमा तक ही ठीक है, उसके बाद वह घातक हो जाती है। क्योकि स्वतंत्रता स्त्री के शोषण के मार्ग खोल देती है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय है 'प्रभा खेतान के लेखन में स्त्री संवेदना'। जिसे पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय 'स्त्री विमर्श की संक्षिप्त पृष्ठभूमि और प्रभा खेतान कीस्त्री दृ ष्टि' में पश्चिम देशों और भारत में हुए स्त्री–आन्दोलनों की संक्षिप्त पृष्ठभूमि को उद्घाटित किया गया । इसके साथ ही प्रभा खेतान की स्त्री–विषयक दृष्टि को सामने लाने का प्रयास किया गया । स्त्री–विमर्श, मुख्यधारा के विमर्शों में कैसें शामिल हुआ ? इसका कालांतर में स्त्री–जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ा ? क्या स्त्री–संबंधी चिंतन ने पहले की अपेक्षा आधुनिक स्त्री को सशक्त किया ? और यदि किया तो कितना ? स्त्री–विमर्श ने भारत में किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और धार्मिक स्तरों पर परंपरागत स्त्री की छवि को तोड़ा और एक नई स्त्री–चेतना का निर्माण किया? क्या नयी स्त्री ने अपनी अधिकारों की लड़ाई पितृसत्ता के सामने पुरजोर तरीके से की और यदि की तो वह कहाँ तक सफल हुई? इन सब सन्दर्भों को प्रथम अध्याय में खोजने और समझने का प्रयास किया गया। इसके अतिरिक्त स्त्री–मुक्ति से जुड़ी पारिवारिक समस्यायों जैसे विवाह, मातृत्व, तलाक, संपत्ति अधिकार, यौन शुचिता एवं स्त्री–देह से जुड़े मुद्दों पर भी इस अध्याय के अंतर्गत बात की गयी ।

द्वितीय अध्याय 'प्रभा खेतान की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री–संवेदना' में प्रभा खेतान किस प्रकार अपनी कविताओं के माध्यम से एक स्त्री–जीवन की पीड़ाओं, समस्यायों, विडम्बनाओं व असंगतियों को उजागर करती हैं? इसे समझने का प्रयास किया गया। इस के साथ ही प्रभा खेतान की कविताएँ स्त्री मन को किस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं ? इस पर विचार किया गया।

तृतीय अध्याय 'प्रभा खेतान की आत्मकथा में स्त्री जीवन' में प्रभा खेतान के निजी जीवन की समस्यायों और आवश्यकताओं को समझने का प्रयास किया

जायेगा। उन्होंने भारत और विदेश में रहते हुए स्त्री–जीवन की जिन–जिन तस्वीरों से साक्षात्कार किया, उन–उन तस्वीरों के तह में जाने की और उन्हें समझने की कोशिश इस अध्याय में की गयी। साथ–ही यह देखने का प्रयास किया गया है कि प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में स्त्रियों को पुरुषसत्ता की जंजीरों से अपनी मुक्ति के लिए किस प्रकार प्रेरित करती है ? तथा स्त्री–मुक्ति के संघर्ष के पन्नों पर उनकी आत्मकथा अपनी निशान किस प्रकार अंकित करती है और कहाँ तक सफल होती है? इन सभी प्रश्नों पर इस अध्याय के अंतर्गत विश्लेषण किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय 'प्रभा खेतान के कथा–साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री–संघर्ष' में प्रभा खेतान के उपन्यासों के माध्यम से स्त्री–जीवन के द्वंद्व, साहचर्य की भावना, करुणा, प्रेम तथा ममता के कोमल भावों की अभिव्यक्ति को तलाशने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में स्त्री–जीवन में आनेवाली कठिनाईयाँ और जोखिम के खतरों की पहचान की गई, साथ–ही उसका समाज व्यवस्था से विद्रोह, पहचान कासंकट, स्वावलंबन की चाह, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव ग्रहण आदि मुद्दों पर विस्तार से विश्लेषण किया गया हैं।

पंचम अध्याय 'प्रभा खेतान के आलोचनात्मक साहित्य में स्त्री–संवेदना' है। इस अध्याय के अंतर्गत प्रभा खेतान के आलोचनात्मक कृतियों की तर्कपरक समीक्षा की गई है। सार्त्र, अल्बेयर कामू, सिमोन द बोउवार जैसें अस्तित्ववादियों का एवं फ्रायड जैसें मनोविश्लेषणवादी दार्शनिक का प्रभाव उन पर किस प्रकार पड़ा इसकी चर्चा इस अध्याय में की गई है। इसके अतिरिक्त आज के उत्तर आधुनिक ज्ञान आधारित अर्थव्यस्था वाले सूचना–समाज में किस प्रकार स्त्री–विज्ञापन, बाजार, राजनीति, न्यूज आदि माध्यमों से एक उपनिवेश बना दी गई है इसका भी विस्तार से विश्लेषण किया गया है। स्त्री के मान–सम्मान और अभिमान को किस प्रकार आज बौना बनाने का षडयंत्र बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कर रही हैं, इस सन्दर्भ पर भी इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है ।

अंत में उपसंहार के अंतर्गत सम्पूर्ण शोध–कार्य से निकलने वाले निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है। इस शोध–कार्य से होने वाली उपलब्धियों एवं योगदान पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को पूरा करने में मेरे शोध–निर्देशक प्रो. राम चन्द्र सर का

स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन सदैव मेरे साथ रहा। सर के सक्रिय योगदान के लिए मेरे पास शब्द अपूर्ण हैं। शोध के दरम्यान उन्होंने सामने आने वाली समस्याओं को दूर करते हुए नए रास्ते पर चलने का मार्ग दिखलाया। इससे पुराने अनुभव जहाँ परिमार्जित हुए वही कुछ नए अनुभव भी सीखने को मिले ।

सबसे पहले मेरे आस्तित्त्व से साक्षात्कार मेरे माता–पिता ने कराया। इसलिए मैं उनके ममता, प्रेम और सहयोग से कृतार्थ हूँ। मैं अपने बड़े भईया और भाभी की भी शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने मेरी अनावश्यक चिंताओं को दूर करते हुए मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी ।

इस शोध–कार्य को तन्मय होकर पूरा करने की सलाह मेरे सास–ससुर ने दी और उन्होंने मुझे सभी पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त रखा, उनके इसी सहयोग के कारण में अपना शोध कार्य पूर्ण कर पायी जिसके लिए मैं उन्हें ह्रदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

जीवन के कठिन दौरमें हमेशा साथ देने के लिए और इस शोध–कार्य को लेकर उत्साहवर्धन के लिए मैं विशेष रूप से हरिनारायण मीणा जी का दिल से आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही छोटी बहनों के रूप में मिली मेरी ननद सपना और मीना के अमूल्य सहयोग और वार्तालाप ने मुझे निराशा के घने आवरण से निकालने में मदद की और मेरे शोध कार्य को आसान बनाया।

रचनात्मक क्षणों में मुझे मानसिक बल तथा संयम देने का कार्य गार्गी कॉलेज के डॉ. संतोष कुमार भारद्वाज सर ने किया। इनके सहयोग के बिना मेरे शोध कार्य का समय पर पूर्ण हो पाना संभव नहीं था। समय के अभाव के बावजूद इन्होंने मेरी मदद की। उनकी सद्भावना, सत्प्रेरणा तथा सही समय पर समुचित सहयोग व परामर्श ने मेरे शोध–कार्य को गति दी और इससे मेरा शोध–कार्य समय रहते पूरा हो सका। उनके प्रति धन्यवाद या कृतार्थ का शब्द बौना नजर आता है ।

विशेष रूप से कुमार गौरव का भी मैं दिल से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय–समय पर मुझे शोध कार्य से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करवाई। संयम एवं सहजता के साथ मेरे शोध कार्य की प्रूफ रीडिंग की और शोध से संबंधित सामग्री पर अमूल्य सुझाव दिया ।

शोध कार्य की प्रकृति जटिल एवं अति गंभीर होती है इसलिए अपने

शोध–कार्य को समय पर पूरा करने की चुनौती मेरे सामने थी। समय से शोध कार्य को पूरा करने में मेरे पति बाबूलाल मीणा ने समय–समय अपना सक्रिय सहयोग देते हुए मेरे मनोबल को हमेशा ऊँचा बनाये रखा जिसके कारण मैं अपने शोध–कार्य से संबंधित आवश्यकताओं को समय पर पूरा कर सकी।

मैं अपनी मित्र धनेश्वरी गोस्वामी के सहयोग को नहीं भूल सकती।शोध कार्य के दौरान निराशा एवं अवसाद के क्षणों से मुझे उभारा ।

इस शोध–कार्य हेतु मैंने कई पुस्तकालयों का भ्रमण किया और वहाँ की उपलभ सामग्रियों से लाभ उठाया । इनमें जवाहरलाल नेहरु विश्ववि।ालय, साहित्य अकादमी, दिल्ली विश्ववि।ालय, कलकत्ता प्रभा खेतान फाउंडेशन के पुस्तकालय शामिल हैं ।

अंत में उन सबके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे परोक्ष–अपरोक्ष रूप से शोध–कार्य की संपन्नता के लिए सद्प्रेरणा, परामर्श तथा सहयोग दिया ।

आशा मीणा

प्रथम अध्यायः

स्त्री विमर्श की संक्षिप्त पृष्ठभूमि और प्रभा खेतान की स्त्री दृष्टि

प्रथम अध्याय

स्त्री विमर्श की संक्षिप्त पृष्ठभूमि और प्रभा खेतान

समकालीन कथा साहित्य में स्त्रियों का जीवन 'एक अबला स्त्री' के रूप में नहीं देखा जाता है। वस्तुतः समकालीन कथा साहित्य स्त्री जीवन के संघर्ष, रोमांस, अस्तित्व बोध व स्त्री–पुरुष संबंधों में आये बदलावों को रेखांकित करता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए इसी कारण भारतीय समाज में भी स्त्री–पुरुषों के संबंधों में व्यापक परिवर्तन दिखाई देते हैं। जैसें–जैसें संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ और एकल परिवार की निर्मिती हुई वैसे–वैसे स्त्रियों का जीवन, उनकी विचारधारा, उसके व्यवहार और उसकी परिधि में आने वाले लोग भी बदलते गए। सामंतवादी व्यवस्था में स्त्री संपत्ति, उपभोग और विलास के रूप में देखी–समझी जाती रही, परंतु औद्योगिक युग में वह एक श्रमिक के रूप में सामने आई। कालांतर में सूचना क्रांति और सूचना विस्फोट ने स्त्रियों को सशक्त बनाने का काम किया। यह भी सच है कि आज से ही नहीं अपितु अनादि काल से भारतीय स्त्रियों को पितृसत्तात्मक समाज में दोयम दर्जे का स्थान दिया गया। परंपरागत दृष्टि से स्त्री के प्रति व्यवस्था का नजरिया निश्चित मानदंडों, आदर्शों के नियत व्यवहारों से संचालित होता रहा है जिसमें स्त्री को दोयम दर्जे की भूमिका में निर्धारित आदर्श, आचरण संहिता के अनुसार जीना पड़ा। पुरुषों के द्वारा किये गये अत्याचार और उनके अन्यायों को सहन करना पड़ा। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक पुरूषों की अधीनता लंबे समय तक भौतिक, आर्थिक और भावनात्मक रूप से स्त्री जीवन का केंद्रीय तत्व रहा है। आज के समय में देखें तो दुनिया भर की स्त्रियों का नारा स्त्री–मुक्ति का रहा है। वस्तुतः "सामाजिक पराधीनता, पुरुष अधीनस्थ और प्रचलित आदर्श, विश्वासों, मान्यताओं व मूल्यों के बंधन से नारी को मुक्त करने का प्रयास ही नारी मुक्ति आंदोलन है।"[1]

वर्तमान दौर 'स्त्री' का है। इस कथन से ही स्त्री के सशक्तिकरण का बोध होता है। स्त्री के इस सशक्तिकरण से पुरुष–सत्तात्मक समाज में खलबली मची हुई है। समाज के बाह्य धरातल पर स्त्री को मुक्त करने का पुरुष–सत्तात्मक समाज का

दिखावा जोरों पर है जबकि आतंरिक रूप से पुरुष–सत्ता स्त्री को बंधन–मुक्त नहीं करना चाहती। दरअसल समाज के सभी बौद्धिक जन–साहित्यकार, पत्रकार, व्यवसायी, विज्ञापनदाता, समाज सेवक, कार्यकर्ता, मीडिया और फिल्म आदि क्षेत्रों के लोग स्त्री को मुक्त करने के लिए स्त्री–विमर्श में दिखावे के लिए ही अपने योगदान को रेखांकित कर देना चाहते हैं। इनमें से हर कोई सदियों से पीछे धकेल दी गई स्त्री को पुनः मुख्यधारा के विमर्श में लाकर अपने को स्त्री मुक्ति का सबसे बड़ा हितेषी साबित करने में लगा है। सत्य है कि पुरुष–समाज ने स्त्री–मुक्ति में जो योगदान दिया उसे नकारा नहीं जा सकता लेकिन सही मायने में स्त्री–मुक्ति या स्त्री–चेतना की शुरुआत स्त्रियों के स्वयं के लेखन से ही शुरू होता है। इस बात को समझने के लिए स्त्री–विमर्श के अर्थ और उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना होगा।

विश्व में स्त्री–मुक्ति, स्त्री–चेतना के लिए जिस 'स्त्री–विमर्श' शब्द का प्रयोग होता है वह दो शब्दों से मिलकर बना है–'स्त्री' और 'विमर्श'। 'स्त्री' वैदिक संस्कृत का शब्द है जिसका उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद (4–6–7) में मिलता है। स्त्री शब्द 'सत्यै'धातु से बना है जिसका अर्थ लज्जायुक्त होना लिया जाता है। पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में 'सत्यै' का अर्थ 'करना' लिया है । जबकि पतंजलि का मानना है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का समुच्चय स्त्री है। पुरुष की ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति स्त्री से होता है इसलिए उसे स्त्री कहा जाता है। इस तरह से संस्कृत ग्रंथों में अलग–अलग विद्वानों ने स्त्री–शब्द की व्युत्पत्ति और उसकी व्याख्या भिन्न–भिन्न दृष्टि से की है। हिन्दी में स्त्री–शब्द की व्युत्पति और उसकी व्याख्या अनेक विद्वानों ने की है । डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपने ग्रंथों में स्त्री के लिए प्रयुक्त होने वाले अनेक शब्दों–अबला, औरत, स्त्री, कबीला, कामिनी, गृहिणी, चरणदासी मानवी, बिनिता, भामिनी इत्यादि शब्दों का उल्लेख किया है । अंग्रेजी में स्त्री का पर्यायवाची शब्द 'वुमन' (woman) या 'फिमेल' (fèmale) प्रयुक्त हुआ है। हिन्दी में 'विमर्श' के लिए समानार्थी शब्द विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, तर्क आदि शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। प्रख्यात आलोचक डॉ नामवर सिंह का मानना है कि "हिन्दी में विमर्श शब्द मिशेल फूको के 'डिस्कोर्स' का अनुवाद है।"[2] अतः विद्वानों के अनुसार

'स्त्री–विमर्श' का सामान्य अर्थ 'स्त्री' के सन्दर्भ में विचार–विमर्श, चिंतन और विनिमय करना है ।

भारतीय और पाश्चात्य विचारकों ने स्त्री–विमर्श को अपनी–अपनी दृष्टि से परिभाषित किया है। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार "स्त्रीवाद स्त्रियों के विविध रूपों का अध्ययन करता है और दमन से उन्हें मुक्त करने की दिशा में पहल करता है। यह स्त्री की वैयक्तिक, राजनीतिक एवं दार्शनिक समस्यायों से जुड़ा हुआ है।"[3]

इसी क्रम में अर्चना वर्मा लिखती हैं कि "चिंतन जगत में स्त्री–विमर्श एक युगांतर है। दर्शन, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, यौन विज्ञान, कानून, मनोविश्लेषण, फिल्म, कला और साहित्य आदि पर ज्ञान क्षेत्र का एक स्त्रीवादी संस्करण मौजूद है जो न केवल पिछले व्यवहार की आलोचना बल्कि किन्ही अर्थों में पुनर्जन्म भी कहा जा सकता है । साहित्य के सन्दर्भ में भी स्त्री–विमर्श के विविध आयामों को रचना और आलोचना के अलावा इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण और यौन विज्ञान से सम्बद्ध देखा जा सकता है।"[4] स्त्री–विमर्श को परिभाषित करते हुए पाश्चात्य विचारक बेबल कहते हैं कि–"औरत और सर्वहारा दोनों ही दलित है और दोनों के सामाजिक जागरण की सम्भावना यांत्रिक सभ्यता में न्यूनकृत की जा सकती है। औरत की समस्या उसकी श्रम की क्षमता के समस्या में न्यूनकृत की जा सकती है किन्तु आधुनिक विकसित यांत्रिकी ने क्षमता के स्तर पर भी स्त्रियों को पुरुष के बराबर खड़ा कर दिया है।"[5] स्पस्ट है कि बेबल ने स्त्री को पुरुष के समान्तर खड़ा करने की कोशिश की है। पुरुष की सत्ता का स्त्री जाति के लिए घातक बताते हुए सिमोन द बोउवार लिखती हैं कि "पुरुष ने सभ्यता के आदिकाल से ही अपनी शारीरिक शक्ति के कारण अपनी श्रेष्ठता को मान्यता दी, वे सब उसकी अपनी सुविधा के लिए थे। उसके इस एकछत्र राज्य को औरत ने पहले कभी चुनौती नहीं दी। कहीं–कहीं कुछ महिलाओं ने व्यक्तिगत रूप से आवाज उठाई, कुछ आन्दोलन भी हुए, किन्तु पुरुष ने उतनी ही मांगी मानी, जितनी वह देना चाहता था । पुरुष ने औरत का सब कुछ अपने हाथों में रखा । उसने स्त्री के स्वार्थ में उसकी नियति नहीं गढ़ी, बल्कि अपनी परियोजनाओं और जरूरतों से वह नियोजित हुआ।"[6]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि स्त्री–विमर्श के अंतर्गत पुरुष–प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री अपनी अस्मिता की पहचान और समाज में सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए संघर्षरत है । अतः मदन गोपाल दुबे के शब्दों में कहे तो "समाज में स्त्री के प्रति जागृति लाना तथा स्त्री के स्वत्व को, पहचान को स्थापित करने के प्रयास को ही स्त्रीवाद अथवा स्त्री–विमर्श कहा जाता है ।"[7]

वर्तमान में स्त्री–विमर्श विश्व भर में एक बड़े आन्दोलन के रूप में स्थापित हो चुका है । यदि कुछ अपवाद को छोड़ दे तो विश्व में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ पर पुरुषों के बराबर स्त्रियाँ समान मताधिकार, कानून, राजनीति, आर्थिक एवं शैक्षिक अधिकारों से वंचित है । पश्चिमी देशों में जहाँ स्त्रियाँ आत्मनिर्भर हैं वही भारत जैसें पिछड़े देशों में स्त्रियाँ तेजी से आगे बढ़ रही हैं। स्त्रियों ने स्त्री–आन्दोलनों एवं विमर्शों के माध्यम से बहुत सारे पुराने रूढ़ियों को न केवल बदल दिया बल्कि बहुत सारे नियम अपने पक्ष में बनवाये जिससे उन्हें उनके जीवन स्तर में काफी सुधार हुए हैं । सबसे बड़ी बात यह है कि भारत ही नहीं विश्व भर की स्त्रियाँ अपनी स्वतंत्रता, अस्मिता, गरिमा एवं मूल्यों के लिए आवाज उठा रही हैं। फ्रांस की राज्यक्रांति तथा इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति ने स्त्री मुक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। पश्चिम देशों की इन स्त्री मुक्ति क्रांतियों से स्त्री के जीवन में बुनियादी परिवर्तन की आशा की गई थी क्योंकि पश्चिम की स्त्री भी चारों तरफ से शोषण का शिकार थी। फ्रांस की महिलाओं ने साठ के दशक में अपनी अधिकारों को लेकर सड़कों पर प्रदर्शन किया और यह माँग की कि उन्हें भी पुरुष के समान बराबरी का अधिकार दिए जाए । इन आदोलनों से भारतीय स्त्री भी प्रभावित हुई । कालांतर में भारतीय स्त्रियों ने अपने अधिकारों को लेकर सामाजिक,राजनीतिक और साहित्यिक जगत में आन्दोलन किया । वस्तुतः "स्त्री मुक्ति का सवाल जब जब उठता है तो यह स्पष्ट है कि स्त्री पराधीन है, गुलाम है।वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का रेशां–रेशां पुरुषों द्वारा पुरुषों के लिए निर्मित है। पुरुष द्वारा स्त्री पर थोपी हुई गुलामी का ठोस रूप घर की चारदीवारी में स्त्री को कैद रखना और उसे संतान उत्पत्ति की मशीन समझना ।"[8]

प्राचीन काल से ही भारतीय स्त्री पितृसत्ता के बंधन में जकड़ी रही है । परम्परा से ही स्त्रियों के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित मानदंडों, आदर्शों एवं

व्यवहारों से संचालित होता रहा है । इस व्यवस्था में स्त्रियों की भूमिका के अनुसार ही उन्हें जीवन जीना पड़ता था। हालाँकि सृष्टि के प्रारंभ में स्त्रियों और पुरुषों के लिए न तो कोई सामाजिक मानदंड थे न ही उनका कोई नियत व्यवहार निर्धारित था। वे स्वछंद रूप से जीवन व्यतीत करते थे लेकिन जैसें–जैसें समाज का विकास हुआ वैसे–वैसे जीवन निर्वाह के लिए स्त्री और पुरुषों के लिए मानदंड बनाये जाने लगे । प्रारंभिक परिवारों की शुरुआत घुमक्कड़ जातियों से हुई । उनका मुख्य पेशा पशुपालन था। पुरुष पशुओं के झुण्ड को लेकर चरागाहों में घूमते रहते तो स्त्रियाँ घर में बच्चों की देख रेख करती थी । अक्सर पुरुष घर से बाहर ही रहते इसलिए धीरे–धीरे परिवार की बागडोर स्त्रियों के हाथों में आने लगी। जिससे मातृसत्तात्मक परिवार स्थापित होने का अवसर प्राप्त हुआ । एक तरह से हम देखें तो यह स्त्री मुक्ति का प्रथम उदाहरण है जहाँ सत्ता स्त्रियों के हाथों में आती है । इसी सन्दर्भ में सीमोन द बोउवार लिखती हैं कि "प्रागैतिहासिक यायावर समाज में शारीरिक कमजोरी के बावजूद औरत पुरुष की इतनी अधीनस्थ नहीं थी कि वह पुरुषों की गुलाम कही जाए । उन दिनों पुरुषों के सम्मुख स्त्री को समर्पण के लिए विवश करने वाली न कोई संस्था थी, न व्यवस्थागत संपत्ति की अवधारणा और न न्याय व्यवस्था ही थी।"[9] अर्थात् स्त्री की स्थिति अच्छी थी। कालांतर में कृषि युग में भी स्त्री सम्मानित थी क्योंकि उसकी तुलना भूमि से की जाने लगी। ऐसा प्रमाण मिलता है कि वह अपने विवाह के लिए स्वयंवर के द्वारा अपने वर का चुनाव कर सकती थी ।

वैदिक काल तक आते–आते सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आया। पितृसत्तामक समाज बनने लगे । इसके बावजूद भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ही समानाधिकार प्राप्त थे । डॉ. किरण पोपकर लिखती है कि "बात कुछ भी हो लेकिन उस युग में स्त्री–पुरुष संबंधों में आज की सी जर्जरता नहीं थी । उस दौरान पुत्रों को पिता के नाम से नहीं बल्कि माता के नाम से संबोधित किया जाता था जैसें कि अर्जुन को कौन्तेय, कर्ण को राधे और कृष्ण को यशोदा नंदन।"[10] अतः पोपकर के विचारों से यह विदित होता है की पितृसत्ता का उदय होने लगा था तथापि मातृसत्ता का पूर्णतः अंत नहीं हुआ । हाँ, इतना जरूर हुआ कि पितृसत्ता ने घर और बाहर अपना अधिकार जमा लिया और स्त्री को नैतिक मानदंडों में जकड़कर

निर्बल बना दिया । इस सन्दर्भ में सिमोन द बोउवार लिखती हैः "मातृसत्ता से पितृसत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी ऐतिहासिक हार थी।"[11]

वैदिक काल के बाद समाज सामंतवादी काल में प्रवेश किया । इस काल में स्त्री संपत्ति के अधिकार से से विमुख हो गई । वस्तुतः सामंतवादी काल स्त्रियों को उपभोग और वस्तु में परिणत करने का काल बना । यानी पितृसत्तात्मक समाज अपने चरम रूप में सामंती काल में ही उदित होता है । जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं कि "ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करें तो पाएँगे कि भारत में ईसा पूर्व 5500 वर्ष से पितृसत्ता का आगमन हुआ। वैदिक आर्यों को पितृसत्ता की विकसित अवस्था माना जाता है।"[12] पितृसत्ता ने स्त्री के शोषण के रूप में कई तरह के नैतिक और अनैतिक मानदंडों को अपनाकर स्त्री को स्त्रीपन के लिए मजबूर कर दिया । यही नहीं पितृसत्ता ने स्त्रियों के चारों तरफ संस्कृति और परम्परा का ऐसा जाल बुना कि उसने स्वयं अपनी नियति मानकर सामाजिक बेड़ियों में खुद को कैद कर लिया। इस सन्दर्भ में सिमोन द बोउवार लिखती हैं कि "विश्व की प्रत्येक संस्कृति में या तो स्त्री को देवी रूप में रखा गया या गुलाम की स्थिति में । अपनी इस स्थिति को स्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया, बल्कि बहुत–सी जगहों पर वह सह–अपराधिनी भी रही ।"[13] परन्तु स्त्री ने आज अपनी शक्ति को पहचान लिया है। उसने देवी और कुलटाओं जैसी उपमाओं को उतार फेंका है जिसके चलते वर्चस्ववादी पुरुष समाज आतंकित हो गया है । वह पुनः स्त्री को अपनी बेड़ियों में जकड़ने के लिए धार्मिक ग्रंथो और परम्परा की दुहाई दे रहा है । इसके लिए वह सीता, सावित्री, अहिल्या आदि पौराणिक नारियों का उदाहरण देता है । इन सन्दर्भों पर व्यंग्य करती हुई डॉ अनामिका लिखती हैं "आज्ञाकारिता के कठघरे में जकड़ने वाले यह क्यों भूल जाते हैं कि सीता का सबसे बड़ा सच है लक्ष्मण रेखा लांघ जाना यानि आपात स्थिति में अपनी बीबी के हिसाब से नियमावलियों में परिवर्तन का साहस।"[14] लेकिन पुरुष सत्तात्मक समाज इस बात को बर्दास्त नहीं कर पाता है और सीता रावण के द्वारा हरण कर ली जाती है। सवाल यह है कि स्त्री ने जब–जब पुरुष के द्वारा खिंची गई लक्ष्मण रेखा को लांघने का प्रयास किया उसे कलंकिनी और चरित्रहीन करार देकर मृत्यु की गोद में धकेल दिया । सीता ने

परिस्थितियाँ वश बाध्य होकर इसे अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया । लेकिन वर्तमान स्त्री लेखिकाएं सीता और सावित्री के प्रतीक पर ना केवल सवाल खड़ा करती हैं बल्कि इसे स्त्री की नियति ना मानकर पुरुष का षड्यंत्र करार देती है ।

भारत में प्राचीन समय में गार्गी, अहिल्या, मैत्रेयी जैसी विदुषिका हुईं जिन्होंने तत्कालीन पुरुष समाज से संवाद करके स्त्री–चेतना का प्रखर और आदर्श रूप समाज के सामने रखा । मध्यकाल में मीराबाई जैसी भक्त–कवियित्री की कविताओं में भी स्त्री–चेतना का प्रखर स्वरुप दृष्टिगोचर होता है । आगे चलकर आधुनिक काल के मुहाने पर स्त्री–चेतना का सशक्त रूप साबित्रीबाई फूले और पंडिता रमाबाई जैसी महिलाओं में भी दिखता है। वस्तुतः आधुनिक काल के उदय के साथ ही भारत में स्त्री आन्दोलन की शुरुआत हो जाती है । रचनाकार साहित्य के माध्यम से स्त्री–संवेदना को अभिव्यक्त करने लगते हैं।बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृणाल पाण्डेय, क्षमा शर्मा, रमणिका गुप्ता, ममता कालिया, निर्मला जैन, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, गीतांजलि श्री, अनामिका, तसलीमा नसरीन, मेहरूनिशा परवेज, मृदुला गर्ग आदि सैकड़ों स्त्रियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री–विमर्श को धारा प्रदान की ।

दुनिया के समाज में स्त्री की दयनीय दशा रही है। वह पुरुष द्वारा बनाये गए सत्तात्मक नियमों के बेड़ियों में जकड़कर दम तोड़ती रहती है। भारत में भी ऐसी बहुत–सी परिस्थितियाँ रही हैं जिनके कारण स्त्री विमर्श शुरू हुआ है। हिन्दी कथाकारों ने अपनी रचनाओं में स्त्री–मुक्ति को ध्यान में रखकर अपने विचार व्यक्त किए हैं। हिन्दी कथाकारों ने स्त्री–विमर्श के द्वारा स्त्री–मुक्ति, उनके अधिकारों से संबंधित सूचनाओं, विचारों तथा तथ्यों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया हैं। कविताओं, उपन्यासों, कहानियों, नाटकों आादि साहित्यिक विधाओं के माध्यम से पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की जो यथास्थिति है उसे समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया। कुछ वर्षों में स्त्री विमर्श ने साहित्य जगत् में अपनाएक मुकम्मल स्थान बनाया है। इस दिशा में स्त्री लेखिकाओं ने बहुत प्रयास किये हैं। स्त्री वर्ग से संबंधित होने के कारण स्त्री के मन की संवेदनाओं को बहुत ही गहराई के साथ स्त्री लेखिकाओं ने अभिव्यक्त किया है। वे अपनी समस्याओं को अधिक प्रामाणिक

ढंग से रख रही हैं। आठवे–नौवें दशक में महिला लेखिकाओं ने स्त्री की समस्याओं को बहुत ही व्यापक स्तर पर प्रस्तुत किया है।

वस्तुतः पुरुष लेखकों ने अपने साहित्य में स्त्री–मुक्ति के सवालों को उठाया है लेकिन उनके साहित्य में स्त्री के प्रति सहानुभूति है। साहित्य में पहली बार स्त्री–लेखिकाओं ने संवेदना के साथ अपनी स्वानुभूति को व्यक्त किया है। अतः जिस अनुभूति के साथ एक स्त्री, स्त्रियों की पीड़ा को अभिव्यक्त कर सकती है उस गहराई के साथ पुरुष लेखन में संभव नहीं है। पुरुषों के द्वारा लिखे गए साहित्य में स्वानुभूति की अपेक्षा सहानुभूति होती है। पुरुष लेखकों के द्वारा स्त्री विमर्श संबंधी लिखे गए विचारों पर महादेवी वर्मा का कहना है कि "स्त्री द्वारा जिए गए और देखे गए जीवन का आत्मानुभूति के रूप में प्रामाणिक चित्रण कोई स्त्री ही कर सकती है पुरुष के द्वारा स्त्री का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं. विकृति अधिक निकट पहुँच सकता है,परन्तु यथार्थ के अधिक समीप नहीं. पुरुष के लिए स्त्रीत्व अनुमान है, परन्तु स्त्री के लिए अनुभव, अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरांत भी शायद ही दे सके."[15] प्रभा खेतान का भी मानना है कि " मैं मानकर चलती हूँ कि स्त्री लेखन और पुरुष आज भी इस पितृसत्तात्मक समाज में जैविक,आर्थिक,सामाजिक धरातल पर भिन्न हैं।''[16]

साहित्य में खासतौर से कथा–साहित्य की बात करे तो प्रेमचंद ने मेहता के माध्यम से स्त्री की दशा का चित्रण किया है। किन्तु प्रेमचंद कहीं–कहीं स्त्री मुक्ति आन्दोलन का विरोध करते हुए नजर आते हैं, समर्थन करते हुए नहीं। वे स्त्री से पुरुष को श्रेष्ठ मानते हैं और स्त्री को यह सलाह देते हुए दिखाई दे जाते हैं । इसी संदर्भ में प्रेमचंद लिखते हैं–''यह पुरुषों का षड्यंत्र है, देवियों को ऊँचे शिखर से खींचकर अपने बराबर बनाने के लिए उन पुरुषों को जो कायर हैं, जिनमें वैवाहिक जीवन का दायित्व संभालने की क्षमता नहीं है, जो स्वच्छन्द काम क्रीड़ा की तरंगों में साड़ों भी भाँति दूसरों की हरी–भरी खेती में मुँह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षड़यंत्र सफल हो गया है और देवियाँ तितलियाँ बन गई। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि इस त्याग और तपस्या की भूमि भारत में भी कुछ वही हवा चलने लगी है। विशेषकर

हमारी शिक्षित बहनों पर वह जादू बड़ी तेजी से चढ़ रहा है। वह गृहिणी का आदर्श त्याग तितलियों का रंग पकड़ रही हैं।''[17]

हिन्दी में प्रेमचंद अकेले रचनाकार नहीं हैं जिन्होंने स्त्री के विमर्श को मुख्यधारा के समाज में लाने का प्रयास किया है। हालाँकि यह भी सच है कि सर्वप्रथम स्त्री–मुक्ति की बात करने वाले प्रेमचंद थे। हो सकता है प्रेमचंद के पूर्व के साहित्य में स्त्री की पीड़ा और उससे मुक्ति का उल्लेख मिलता हो। लेकिन स्त्री–मुक्ति या स्त्री–संवेदना की जो यथार्थ अभिव्यक्ति प्रेमचंद के साहित्य में मिलता है वह बेजोड़ है। इसके बावजूद प्रेमचंद भी कहीं न कहीं पुरुषवादी वर्चस्व की भावना से पीड़ित थे। उन्होंने 'गोदान' में मेहता और मालती के माध्यम से स्त्री–मुक्ति के प्रश्न पर विचार करते हैं परन्तु उन सवालों का कोई मुक्कमल जवाब वे नहीं देते। ऐसे बहुत से स्त्री विमर्शकार हैं जिन्होंने स्त्री के पक्ष में बहुत कुछ लिखा है। मुझे चाँद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा), बसन्ती (भीष्म साहनी), बिना दरवाजे का मकान (रामदरश मिश्र) जैसी अनेक कृतियों में पुरुष लेखकों ने स्त्रियों के ऊपर होने वाले अत्याचार का विरोध किया है।

स्त्री विमर्श का मूल स्वर परिवर्तन है। वह समाज में रूढ़िगत व सामाजिक, पितृसत्तात्मकता की बेड़ियों को तोड़ एक स्वतंत्र जीवन की मांग करती है। स्त्री विमर्शकार यह चाहती है कि आर्थिक रूप से तथा सामाजिक रूप से वह ज्यादा से ज्यादा समृद्ध रहे। आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं स्त्री–पुरुष की समानता के इर्द–गिर्द स्त्रियाँ अपने अधिकारों को लेकर सजग रही हैं। आर्थिक असमानता के कारण स्त्री अपने ही परिवार में शोषित रही हैक्योंकि विरोध करने का साहस उनमें नहीं रहा है और न ही उनके भीतर सम्बल रहा है। स्त्री–पुरुष के लिए समाज ने जो अलग–अलग प्रतिमान निर्धारित किए हैं वे स्त्री के लिए फायदेमंद कम और हानिकारक ज्यादा रहे हैं। पितृसत्तात्मक तथा सामंती समाजों में स्त्री केवल उपभोग की वस्तु मात्र बनकर रह गई थी। इस प्रकार के विचारों सेमें बंधी स्त्री–जीवन आज अपने आपको मुक्त करना चाहती है। समाज, राष्ट्र इत्यादि के स्तर पर वह अपनी आजादी चाहती है। यह आजादी वह इसलिए चाहती है ताकि वह भी अपना विकास कर सके। समानता के स्तर पर वह पुरुषों की बराबर की सब सुविधाओं का भोग कर सके। घर से ही बेटे–बेटी में जो फर्क किया जाता है वह स्त्रियों को

कचोटता है। आज कीनारियाँ अपने आत्माभिमान के लिए अपनी स्थिति को सुधारने में जुटी हुई दिखाई पड़ती है। स्त्रियाँ एक जमीन चाहती हैं और वह जमीन उनकी अपनी होनी चाहिए। स्त्री विमर्श के अर्न्तगत कुछ कथाकारों ने अपनी रचनाओं में विवाह संस्थाओं का विरोध किया हैं। वह पुरुष की पत्नी नहीं बल्कि सहयोगी बनकर रहना चाहती है। यदि वह पत्नी बनकर रह जाती है तो उन्हें लगता है कि कहीं–न–कहीं वह गुलाम बनकर रह जाएँगी। यह उचित बात नहीं है। इसलिए अधिकांश स्त्रियाँ प्रेमिका और दोस्तबनकर रहना चाहती हैं। वह किसी बंधन में नहीं बंध़ना चाहती है। वह पतिव्रत पर प्रश्न चिन्ह लगाती हुई नजर आती है। वर्जनाहीन, नैतिकहीन जीवन जीने के लिए पाश्चात्य नारियाँ तो सही हो सकती हैं किन्तु भारतीय संदर्भ में यह ठीक नहीं है।

साहित्य में ऐसी विभिन्न प्रकार की नारियों का चित्रण किया गया है जो अपने अधिकारों के लिए लड़ती है,जो अपनी आर्थिक स्वतंत्रता, समानता चाहती हैं, वह अपने वर्चस्व के लिए संघर्ष करती हैं पुरूषों से किसी भी क्षेत्र में कम नहीं होने के बावजूद भी समाज में स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार नहीं दिये गये। यहाँ यह बात तय हो जानी चाहिए कि स्त्रियाँ किसी से भी कम नहीं हैं–''स्त्री–पुरुष का फर्क शारीरिक है, किन्तु इन दोनों की अस्मिता का निर्माण क्षमताओं–अक्षमताओं की पहचान एवं सांस्कृतिक रूपों की पहचान का आधार शरीर नहीं है। कोई व्यक्ति स्त्री है या पुरुष है यह तो प्रकृति प्रदत्त चीज है किन्तु उसकी लिंग के रूप में पहचान को सांस्कृतिक कारकों के माध्यम से निर्मित किया जाता है। संस्कारों के बहाने स्त्री को अपनी पहचान मिलती है। स्त्री की पहचान जन्मजात न होकर सामाजिक निर्मिती है। स्त्री की अस्मिता को तय करने वाला प्रमुख कारक है उसका पुरुष संदर्भ। पुरुष संदर्भ के कारण ही उसे पत्नी, माँ, बहन, बेटी या रखैल का दर्जा मिलता है।''[18]

स्त्रियां पितृसत्तात्मक व्यवस्था के द्वारा समाजमेंशोषित होती रही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने सदैव यह प्रयत्न किया कि स्त्री को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं दी जाए। स्त्रियों को केवल उतनी ही स्वतंत्रता दी गई जितनी पुरुषों ने चाही। उनका दायरा घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया। अधिक स्वतंत्रता देने पर स्त्रियाँ पुरुषों से आगे ना निकल जाए और समाज में पुरुषों का वर्चस्व कम ना हो जाए

ऐसी पुरुषवादी मानसिकता के लोगों ने कभी स्त्रियों की स्थिति में सुधार नहीं होने दिया। इसी कारण स्त्रियाँ पुरुषों के समक्ष कमजोर रहीं।

स्त्री विमर्श की लहर से स्त्रियां, स्त्री चेतना से जागरूक होती हैं और अपने अधिकारों एवं अपने अस्तित्व के प्रति संघर्ष करती हुई दिखायी देती है। अपने अधिकारों की मांग की लड़ाई एक स्त्री की लड़ाई नहीं बल्कि समूचे स्त्री समाज की लड़ाई कही जा सकती है। वस्तुतः स्त्री विरोधी परिवेश का निर्माण सदियों में हुआ हैं। स्त्रियों के संघर्ष से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की नींव कमजोर होने लगी है। पितृसत्ता अपनी सत्ता बचाए रखने के लिए स्त्री विमर्शकी विचारधारा पर प्रश्नचिन्ह लगाता है जबकि–''स्त्री की लड़ाई समूचे समाज की लड़ाई है जबकि पुरुष की लड़ाई सिर्फ पुरुष की लड़ाई है, उसका पूरे समाज के संघर्ष से कोई संबंध नहीं होता। पुरुष का संघर्ष स्वार्थी संघर्ष होता है जबकि स्त्री कभी भी स्वार्थी संघर्ष में हिस्सा नहीं लेती। स्त्री के व्यक्तित्व में उदारता और नरमी कुछ भी कर सकती हैं और कुछ भी बनकर दिखा सकती है।''[19]

कोई भी स्त्री अपने निजी अनुभवों को बाह्य जगत से जोड़ने की लगातार कोशिश करती है। स्त्री–मुक्ति की कामना को लेकर लोग स्त्री के प्रति सामाजिक अन्याय के प्रश्नों को बार–बार उठाते हैं। उसे बदलने के लिए संघर्ष करते हैं। स्त्री अपने व्यक्तित्व को स्थापित करती है। आज स्त्री अपनी अस्मिता, गरिमा व मूल्यों को लेकर विभिन्न प्रकार से संघर्षरत है। आज दुनियाभर में स्त्री अपनी आवाज को बुलन्द किए हुए हैं। बहुत से स्त्रीवाद के जो समर्थक है वह भी स्त्री की विविध समस्याओं से परिचित नहीं हो पाते हैं। स्त्री लेखन धीरे–धीरे अब हाशिए पर जाता हुआ दिखाई दे रहा है। किन्तु कुछ लोगों ने इसे अभी भी केन्द्र में रखा हुआ है।

पुरुष लेखकों की रचनाओं ने उनका एक बहुत बड़ा पैमाना तय कर दिया है। श्रम, शिक्षण, राजनीति, साहित्य, अस्मिता आदि के क्षेत्र में लिंग पर आधारित अध्ययन ज्यादा से ज्यादा करना चाहिए। स्त्री को सदियों से पराधीन बनाया गया है किन्तु अब वह अपने अधिकारों के प्रति अब सचेत है। वह अराजक संघर्ष को अब खत्म करना चाहती है। वह अब आज्ञापालन के लिए बाध्य नहीं है। आज की स्त्रियाँ अब भौतिक और कानूनी संरक्षण के दायरे में है। ''स्त्रियों के मामले में भौतिक अधिकार ने कानूनी अधिकार की शक्ल नहीं ली इस तथ्य ने और साथ ही

इसे मामले के सभी विशिष्ट और योजनात्मक पहलुओं ने यह निश्चित कर दिया कि जहाँ सबसे ताकतवर के अधिकार वाली यह शाखा अपना बर्बर रूप सबसे पहले त्यागेगी, वहीं दूसरी तमाम शाखाओं के मुकाबले कहीं ज्यादा देर तक जीवित रहेगी। ताकत पर आधारित मानवीय संबंधों में यह एकमात्र ऐसा संबंध है, जो समानता पर आधारित संस्थाओं की कई पीढ़ियाँ गुजर जाने के बाद भी अपनी जगह पर कायम है और यह कायम रहेगा, जब तक कि इसकी उत्पत्ति का भेद सब पर जाहिर नहीं हो जाता है और इसका सच्चा चरित्र सबके सामने नहीं आ जाता। यह आदिम परंपरा आधुनिक सभ्यता में अटपटी प्रतीत हुए बिना अपना अस्तित्व बनाए रखेगी।''[20]

स्त्रियों की पुरुषों पर पराधीनता एक सार्वभौमिक परंपरा रही है। स्त्रियों की यह परंपरा विचित्र रही है। स्त्रियों के साथ जो कुछ भी होता है वह प्रकृतिगत न होकर परंपरागत होता है। इसी संदर्भ में जॉन स्टुअर्ट मिल कहते हैं–''स्त्रियों की पुरुषों पर पराधीनता एक सार्वभौमिक परंपरा होने के कारण इसके खिलाफ जाने की कोशिश अप्राकृतिक प्रतीत होती है। लेकिन इस मामले में भी सच्चाई यह है कि सब कुछ 'प्राकृतिक' न होकर सिर्फ 'परंपरागत' है। आज दूर देश के लोगों को जब यह पता चलता है कि इंग्लैण्ड एक साम्राज्ञी के अधीन है जो उन्हेंयह अप्राकृतिक ही नहीं अविश्वसनीय लगता है। जबकि अंग्रेजों को इसमें कुछ भी अप्राकृतिक नजर नहीं आता, क्योंकि उन्हें इसकी आदत पड़ चुकी है। पर वे इसे जरूर अप्राकृतिक मानते हैं कि कोई स्त्री सैनिक हो या संसद की सदस्य हो। जबकि सामंती युग में ठीक उल्टा था। तब और राजनीति को स्त्रियों के लिए अप्राकृतिक नहीं माना जाता था, क्योंकि यह कोई असामान्य बात नहीं थी, तब यही माना जाता था कि शासक–वर्गों की स्त्रियों में पुरुषोचित गुण होने चाहिए और शारीरिक बल के अलावा उन्हें अपने पतियों और पिताओं से किसी बात में कम नहीं होना चाहिए।''[21]

इसी संदर्भ को जॉन स्टुअर्ट मिल का विचार हैं कि–''सभी सामाजिक और प्राकृतिक कारण आपस में मिलकर एक ऐसी स्थिति खड़ी कर देते हैं कि स्त्रियों का संगठित होकर पुरुष सत्ता का विरोध करना नामुमकिन जैसा हो जाता है। वे इस मामले में जरूर दूसरे शोषित वर्गों से अलग हैं कि उनके मालिकों की वास्तविक सेवाओं के अलावा उनसे कुछ और भी चाहिए होता है। पुरुष स्त्रियों के

सिर्फ आज्ञापालन की इच्छा नहीं रखते वे उनसे भावनाएँ भी चाहते हैं। कुछ बहुत अपवादों को छोड़कर पुरुष अपनी स्त्रियों को एक बाध्य गुलाम की तरह नहीं बल्कि एक इच्छुक गुलाम की तरह रखना चाहते हैं सिर्फ गुलाम नहीं बल्कि पसंदीदा गुलाम। इसलिए उनके मस्तिष्कों को बंदी बनाए रखने के लिए उन्होंने सारे संभव रास्ते अपनाए हैं।''[22]

यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्त्रियों का शोषण वउनके अधिकारों का शोषण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में हुआ है। जो स्त्रियाँ राजपाट चला सकती हैं वह स्त्रियाँ क्या पुरुषों से कम हो सकती हैं। जैविक गुणों को छोड़कर प्रकृति का ऐसा कोई नियम नहीं जो उन्हें कमजोर बना सकतौ है। स्त्रियाँ पुरुषों के समान सक्षम बल्कि उनसे ज्यादा सक्षम साबित होती है। यदि उन्हें व्यक्तित्व के विकास के समान अवसर मिलें तो वह क्या नहीं कर सकती है, इस बात की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है। स्त्रियों की दशाप्रकृति–प्रदतनहीं होती है बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था या परिवेशगत का परिणाम होती है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्त्री और पुरुष की क्षमता में कोई अंतर नहीं होता है। इतिहास और अनुभव इस तथ्य का गवाह है कि स्त्रियों का मस्तिष्क पुरुषों के मस्तिष्क से ज्यादा गतिमान होता है। स्त्रियों को शिक्षण–प्रशिक्षण, खासतौर से उच्च शिक्षा से दूर रखने की कोशिश की जाती है ताकि वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष न कर सके। उनकी बौद्धिक शक्तियाँ ज्यादा शक्तिशाली न हो जाएँ। स्त्री की रोज की जिंदगी ही उसका कार्यक्षेत्र है। चरित्र पर लांछन लगाकर उसे चरित्रहीन साबित कर दिया जाता है। उसके कार्यक्षेत्रों को सीमित कर दिया जाता है। उसे एक तो पारिवारिक स्तर पर शोषित होना पड़ता है और जब वह समाज में जाती है तब वह समाज के स्तर पर शोषित होती है। सामान्य जीवन में स्त्रियों के ऊपर विविध प्रकार के आरोप लगाए जाते हैं। स्त्री की मानसिकता पर बाहरी प्रभाव हावी रहते हैं। स्त्रियों के मौलिक विचारों को संभावनाओं की दुनिया में छोड़ दिया जाता है। यहाँ निश्चितता संभव नहीं है।

स्त्री विमर्श स्त्रीकी समस्याओं को लेकर आया। स्त्री विमर्श ने स्त्री चिंतन के विविध पक्षों को उभार दिया। स्त्री चिंतन को लेकर विविध लहर सामने आए। प्रथम स्त्री वादी आंदोलन लगभग 1895 ई. के आस–पास आया। इस दौर में स्त्रीवादियों

ने कुछ चुनिंदा असमानता की तरफ ध्यान दिया। इनके मुद्दे स्वयं के अनुभव से निकले मुद्दे थे। यदि 1850 से पूर्व देखा जाए तो ब्रिटेन में किसी प्रकार के स्त्रीवादी आंदोलन को नहीं देखा जा सकता है। इस समय बेट्टी फ्राइडन नेअपनी लेखनी के माध्यम से धूम मचा दी थी। यह स्त्रियों या इस समय की स्त्रियों ने अपने अधिकारों से जुड़े सावालों को रखा और उसकी माँग की। इस समय मेरी बुलस्टनक्राफ्ट ने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'विंडिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन' था इसने स्त्री और उससे जुड़े आधिकारों को बहुत ही व्यापक स्तर पर उठाया। यहाँ स्त्री और पुरुष के वैधानिक परिवर्तन पर जोर दिया गया था। यहाँ इस समय सार्वजनिक पितृसत्ता में परिवर्तन की माँग उठी थी। विवाह तथा तलाक का अधिकार और अन्य अधिकारों को लेकर एक क्रांति–सी उठ गई थी।इस समय की औधौगिकीकरण की प्रक्रिया चल रही थी इसने धीरे–धीरे व्यक्ति के भीतर मानवीय मूल्यों को खत्म करना शुरु कर दिया था। सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों ने अपने अधिकारों के लिए स्त्रियों को सचेत किया।

1960 के बाद स्त्रीवाद की दूसरी लहर दिखाई देती है। 1963 के आस–पास यह घोषणा की गई कि स्त्रीवाद का अंत हो चुका है। लेकिन वहीं दूसरी तरफ एक ऐसे लोगों का भी समूह था जिसने यह कहा कि स्त्रीवादी आंदोलनों का कभी अंत नहीं हो सकता है। स्त्री मुक्ति का दावा उन्होंने बढ़चढ़कर किया। आमतौर पर इसे रेडिकल स्त्रीवादी राजनीति से जोड़कर भी देखा गया। इस समय एक महत्त्वपूर्ण कृति ने समाज में अपना स्थान बना लिया था। इस कृति का नाम 'The Second Sex था। इसने इस समय के स्त्री वादी आंदोलन को एकदम नया रूप दे दिया और इस समय की स्त्रियों ने क्रांति के नाम पर अपनी हर स्वतत्रंता को प्राप्त करना चाहा था। समाज में स्त्री की स्थिति बहुत ही सोचनीय व दयनीय थी। इससे मुक्ति की लहर धीरे–धीरे पूरे अमेरिका, फ्रांस और अन्य देशों में फैलगई। 'सिमोन द बऊवार' ने जब यह कहा कि 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बना दी जाती है' तो लगभग सभी देशों में स्त्रियों की एक नई दिशा पर चिंतन प्रारंभ हो गए। द्वितीय लहर के स्त्रीवादी–आंदोलन के दौर में फ्राइडन के विचारों ने विशेष योगदान दिया है। स्त्रियों की चेतना जागृति में इसने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यहाँ स्त्री मुक्ति

की जैवकीय दशा को लेकर क्रांति की सुगबुगाहट ही नहीं शुरू हुई बल्कि संपूर्ण स्त्री विमर्श की क्रांति का नारा दिया गया।

तृतीय लहर का जो स्त्रीवाद आया उसकी विभिन्न प्रकार से व्याख्याएँ की गई। तृतीय लहर के स्त्रीवाद ने तीसरी पीढ़ी की महिलाओं के दौर का स्त्रीवाद दिया। इस पीढ़ी की महिलाओं ने संरचनावाद को चुनौती दी। यहाँ स्त्रीवादी अस्मिता को जोड़कर पुरुष सत्ता के वर्चस्ववादी रूप का विरोध किया गया। यहाँ स्त्री विमर्श नस्लीय एवं जातीय संदर्भों से जुड़ता हुआ दिखाई देता है। इसके साथ–साथ कई तरह के सबाल्टर्न सिद्धांत सामने आए। दलित स्त्रीवादी आन्दोलन भी शुरू हो गए। इस समय के प्रमुख समाजशास्त्री एवं दलित स्त्रीवादी ने एक नया विमर्श दलित स्त्रीवादी विमर्श छेड़ दिया। इस समय की स्त्री वादियों ने पुरुष तथा विषमलैंगिकता की आलोचना की।यहाँ पीढ़ीगत संघर्ष का भाव था जो उतार–चढ़ाव के साथ धीरे–धीरे समाज में अपनी जगह बनाते जा रहा था। किन्तु आन्दोलनों के परिणामस्वरूप यह संभव था कि लोग अकादमिक सैद्धांतिककरण के जरिए धीरे–धीरे अपना दर्शन गढ़े। यहाँ अस्मिताओं का विमर्श बहुत ही व्यापक स्तर पर फैल गया था। यह एक ऐसी युवतियों का आंदोलन था जिन्होंने अपनी नई–नई इच्छाओं को व्याख्यायित करते हुए समाज और संस्कृति से उसे मुक्त करते हुए देखा। आंदोलन को लेकर इनकी समझ अपनी पूर्ववर्ती स्त्रीवादी आन्दोलनकारियों से भिन्न थी। किन्तु यह नई पीढ़ी के विचारों को स्थान नहीं दे सकीं। इसी कारण यह लहर एक अन्य दिशा में मुड़ गया ।यह जिंदगी को देखना नहीं बल्कि जिन्दगी में तब्दील होना था। इस समय की स्त्रीवादी स्त्रियों ने यह दर्शाया कि पितृसत्तात्मक सत्ता के विविध रूप हैं। यह असमानतापूर्ण समाज है तथायह हिंसक समाज है। सामाजिक व्यवस्था के रूप में शोषणकारी व दमनकारी व्यवस्था यहाँ दिखाई देती है।

आज स्त्री वादी आन्दोलन की नारियों ने सामाजिक विज्ञान के विविध पहलुओं को छुआ है। इस समय की स्त्रियाँ अपने समाज का गहराई से अध्ययन करती हैं। यहाँ जैविक भिन्नता के आधार पर काम का बँटवारा किया गया जो कि उचित नहीं है। पितृवंशीय परंपरा ने धीरे–धीरे इसी आधारपर स्त्री को पुरुषों से अलग रखा। उनका मानना था कि जिस प्रकार से कोई एक पुरुष काम कर सकता

है ठीक उसी प्रकार से कोई स्त्री नहीं कर सकती है। किन्तु वह हर क्षेत्र में हर कदम पर पुरुषों से कंधे मिलाकर काम कर सकती है। स्त्रियाँ अब देवदासी बनकर नहीं रहना चाहती हैं। वह शक्ति सम्पन्न बनकर रहना चाहती है। धीरे–धीरे वह यौनिकता की अधीनता को खत्म कर रही हैं। यहाँ स्त्रियों के केन्द्रीय तत्त्वों में स्त्रियों के सामाजिक आर्थिक और यौन उत्पीड़न जैसे बहुत से मुद्दे शामिल हैं। स्त्रियाँ अब देवदासी नहीं बनकर रहना चाहती हैं। वह पुरुष वर्चस्व को खत्म करना चाहती हैं तथा उसके खिलाफ एक प्रतिरोध की परंपरा को जीवित रखना चाहती हैं। नई दौर की स्त्रीएक नई भूमिका का निर्वाह करना चाहती हैं।

स्त्री विमर्श की भारतीय छवि को देखें तो कहा जा सकता है कि यहाँ भी स्त्रियों ने अपने अधिकारों की माँग रखी और वह भी व्यापक स्तर पर रखी। मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, मणिका मोहिनी, प्रभा खेतान इत्यादि लेखिकाओं ने स्त्रियों की विविध छवियों को उभारकर रखा है। स्त्री संघर्ष का एक लम्बा इतिहास रहा है और इस इतिहास को अलग–अलग तरीके से रूपायित किया गया है। इन्हीं महिला स्त्री कारों में से एक हैं प्रभा खेतान। प्रभा खेतान की स्थिति अन्य महिला कहानीकारों या रचनाकारों से अलग है। प्रभा खेतान ने साहित्यिक जगत् में स्त्री लेखन की सार्थकता को कई संदर्भों में स्पष्ट किया है। जिनके सबसे अहम मुद्दा तो यह है कि स्त्री की बिल्कुल निजी समस्याएँ जिन तक पुरुष सम्भवतः पहुँच ही नहीं सकता, यदि पहुँच भी जाता है तो उसकी गहनता को अनुभव नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में स्त्री स्वयं सक्षम हुई है। जब तक वह अपना मौन नहीं तोड़ पाई तब तक वह उपेक्षाओं–आक्षेपों और निराधार विशेषणों को अपने ऊपर ओढ़ी रही। और वह उसी रूप में स्थापित होती रहा जिस रूप में पुरुष उससे चाहता रहा है। प्रभा खेतान ने इन सारी स्थितियों पर गंभीरता से विचार किया है। प्रभा खेतान के साहित्य में स्त्री संबंधी चिंताओं से पता चलता है कि युगों से या युगों के साथ स्त्री लेखन के तेवर बदले हैं। युग सापेक्ष मूल्यों को प्रभा खेतान ने बहुत ही बारीकी से अभिव्यक्त किया है। वह लगातार कलम चलाती रही हैं। साठ के दशक से नब्बे के दशक तक आते–आते बहुत परिवर्तन हुआ। पूर्वाग्रहों व परंपराओं के प्रति मोहभंग हुआ। उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी से प्रभा खेतान तक आते–आते मूल्यों में बहुत परिवर्तन हुआ। समाज की स्त्री–समस्याओं पर प्रभा

खेतान ने प्रहार करते हुए कहा है–''व्यवस्था को तोड़ने वाली औरत को जहाँ समाज सौ कोड़े लगाता है वहाँ पुरुष को मंच पर क्रांतिकारी कहकर बैठाताहै। औरत हर तरह मरती है। लेकिन मुझे रोती हुई औरत अच्छी नहीं लगती। मुझे औरत की इस निष्क्रियता पर झुँझलाहट होती है। यह क्या घुट–घुटकर मरना।''[23]

इस प्रकार के विचार किसी भी साहित्यकार के सहज नहीं बन जाते हैं। यहाँ तक पहुँचने के लिए उसे एक क्रमिक यात्रा करनी पड़ती है। इस यात्रा को प्रभा खेतान सहजता से नहीं पाती बल्कि वहएक यातनाओं भरी यात्रा तय करती हैं।

प्रभा खेतान का जन्म 1 नवम्बर 1942 को कलकता में एक मारवाड़ी परिवार में हुआ था। सात भाई–बहनों के परिवार में प्रभा खेतान पाँचवीं बेटी थी। पाँचवी बेटी के रूप में जब यह समाज में जब यह समाज में आई तो उनका बहुत स्वागत नहीं हुआ बल्कि लोगों को दुःख हुआ। पिता के अचानक देहवसानसे इनके परिवार में कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो गईं। प्रभा खेतान की शिक्षा का प्रबंध बचपन से ही कर दिया था। उच्चतर माध्यामिक शिक्षा कलकत्ता से उन्होंने प्राप्त की। यहाँ से इन्होंने स्नातक की शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय से ही दर्शनशास्त्र में इन्होंने स्नातकोत्तर की उपाधि ग्रहण की। इसके बाद इन्होंने अविवाहित रहने का संकल्प लिया था। तत्पश्चात् यह 'ब्यूटी थैरेपी' का डिप्लोमा हासिल कर वह स्वदेश लौटी। कलकत्ता में ही इन्होंने 'फिगरेट' नाम का स्वास्थ्य केन्द्र खोला। बहुत वर्षों तक इसका कुशल प्रयोग करने के बाद इन्होंने चमड़ा व्यवसाय को अपना लिया था। इन्होंने चमड़े से तैयार सामान अमेरिका भेजा। साहित्य की अभिरूचि इनमें बचपन से ही थी। बचपन से ही इन्होंने कविता, कहानी इत्यादि लिखना शुरू कर दिया था। कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में पढ़ने के दौरान इन्होंने सार्त्र का बहुत गहरा अध्ययन किया था। सार्त्र पर इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं जिसमें उन्होंने सार्त्र को मसीहा बताया है। यह तथ्य यह स्पष्ट करता है कि वह दर्शन के विशेषज्ञ हैं। अस्तित्ववाद पर इनकी बहुत गहरी पकड़ है। प्रभा खेतान धीरे–धीरे साहित्य के क्षेत्र में बढ़ती गई। धीरे–धीरे उनके स्त्री व्यक्तित्व का विकास होता गया और वह निरंतर आगे ही बढ़ती गई।

एक व्यापारिक दृष्टि और रचनाकार की दृष्टि से वह अपने व्यक्तित्व को निरंतर बढ़ाती ही रही। प्रभा खेतान का हिन्दी साहित्य में पदार्पण आठवें दशक में हुआ। उनकी सर्वप्रथम कृति 'अपरिचित उजाले' था। यह एक काव्य संग्रह था। यह काव्य संग्रह 1981 ई. में आया था। अपरिचित उजाले की कविताएँ रोमानी भावबोध को लेकर लिखी गई थी। एक आयु तक व्यक्ति का प्रेम करने का सपना होता है। यह सपना उनकी कविताओं में दिखाई देता है। एक भावुकता जो हर किसी को आकर्षित करती है यह आकर्षण 'अपरिचित उजाले' में दर्शाया गया है। 'मुझे लिखे गए पत्र में' प्रभा ने कहा है कि–''मेरे लेखन का मूल स्वर व्यक्ति की अस्मिता का सवाल है, मानवीय गरिमा का सवाल है और मैं यह दृढ़ विश्वास करती हूँ कि आदमी की गरिमा किसी भी वाद या विचार के कारण कुण्ठित न हो यानि विकास क्रम में कहीं आदमी बौना न रह जाए।''[24]

इसी प्रकार की स्त्री अस्मिता का स्वर 'सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं' में मुखर होता है। सन् 1982 में लिखे गए इस संग्रह में अनुभूति और अधिक गहराई के साथ अभिव्यक्त हुई है। किन्तु यहाँ भी प्रेम की छटा दिखाई गई है। यहाँ फिर भी समाज के साथ जुड़ने की सायास चेष्टा दिखाई देती है। यह चेष्टा सायास बढ़ती ही जाती है। प्रभा खेतान में यह अस्मिता का स्वर निजत्व के बाहर एक विशाल रूप लेकर समष्टि के साथ जुड़ जाता है। इसलिए उन्होंने आदर्श कम बल्कि यथार्थ का चित्रण अधिक किया है। यथार्थ का जटिल और तीखा वर्णन किया है। आदर्शों के प्रति उनमें विरक्तता दिखाई देती है। उनका साहित्यिक यथार्थ जूझते हुए व्यक्ति का यथार्थ है। वह किसी भी साहित्यिक खेमे से संबंध रखे हुए बिना अपनी पहचान बनाती हैं। दायित्वों में मुक्त होने की भावना उनके भीतर कहीं भी दिखाई नहीं देती है। ''महान कवि तो वह होता है जो अपने युग के दिए गए कन्टेन्ट को पूरी तरह व्यक्त कर दे, इतना कुछ दे दे कि परवर्ती पीढ़ी या तो उसकी बात को दोहराती हुई लगे। फिर उसी बात को नए तरीके से कहने की प्रणाली का विकास करें।''[9]

बहुत से नारों और खेमों से प्रभा जी दूर ही रही हैं। जिन्दगी के प्रति उनका लगाव है। शिद्दत से वह जिन्दगी को जीती हैं। वह अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए तमाम पहलुओं को स्पष्ट करती हैं। और वह रिश्तों की तमाम मर्यादाओं को बहुत ही बारीकी से अध्ययन करती हैं। वह स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता की पहली

शर्त आर्थिक स्वतंत्रता मानती हैं। इसी संदर्भ में प्रभा खेतान की निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–''आज की सभ्यता एक संक्रमण के दौर से गुजर रही है। तुमने जितनी भी पीड़ा झेली पर तुम्हारी चेतना का विकास ही हुआ है, तुम्हारे भ्रम टूटे हैं। सीमाओं से बाहर आकर तुमने पारस्परिकता का संबंध स्थापित किया है।''[25]

प्रभा खेतान आर्थिक स्वतत्रंता को पहली शर्त मानती हैं। वह स्त्री उपेक्षिता को विविध संदर्भों में रेखांकित करती हैं। वह स्वयं स्त्री हैं इसलिए स्त्री समस्याओं के प्रति उनके ह्रदय में अपार पीड़ा है। स्त्री के अधिकारों को वह प्रमुख रूप से रखती हैं, गौण रूप में नहीं रखती हैं। स्त्री की अर्द्धमानवीय स्थिति है। वह इसे आधी दुनिया का सवाल मानती हैं। इसी संदर्भ में उनकी निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–''स्त्री हूँ और इस कारण समाज में उपेक्षिता स्त्री के प्रति मेरे मन में अलग स्थान है। यह जो 'अन्या' का संसार है, स्त्री की अर्द्धमानवीय स्थिति है क्या यह तमाम वाद विचार, वर्ग और राष्ट्र की सीमा से परे आधी दुनिया का सवाल नहीं।''[26]

इस आधी दुनिया की समस्याओं को प्रभा खेतान ने खाली नहीं छोड़ दिया किन्तु वह इस आधी दुनिया के सच के लिए निरन्तर लड़ती रही हैं। वह बराबर इनके लिए संघर्ष करती रही हैं। यह कोरी सहानुभूति नहीं है बल्कि स्त्री शक्ति का निर्माण है। यह निर्माण विश्व को बदलने की शक्ति रखती है।

लेखिका स्त्री को एक अलग भूमिका में काम करने को कहती हैं। वह विश्व जननी की बात करती हैं। वह पुरुष जननी की बात करती है। वह स्त्री को नए अर्थ देकर नई–नई मुक्तियों की बात करती हैं। प्रभा खेतान स्त्रियों को एक अलग पहचान देना चाहती हैं। वह स्त्री की लड़ाई जारी रखने को कहती हैं। वह स्त्रियों से कहती हैं कि हर कोई अपनी परिस्थितियों के प्रभाव में धीरे–धीरे गिरता चला जाता है। लेकिन यह गिरना ठीक नहीं है। स्त्री में सदैव आत्मविश्वास होना चाहिए। अपनी परिस्थितियों के प्रति नकार का भाव होना चाहिए। इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–''जिन्दगी के खड्डों में कौन नहीं गिरता है, किसे चोट नहीं लगती? मगर यदि कोई अन्तहीन खाई में गिरे, गिरता ही चला जाए, गिरने का एक कभी न खत्म होने वाला सिलसिला और कल्पना कीजिए कि

गिरते हुए भी वह देख रहा है...ऐसी स्थिति में भगवान भी न जाने क्यों मुँह मोड़कर खड़ा हो जाता है।''[27]

प्रभा खेतान यह कभी भी मानने कौ तैयार नहीं है कि स्त्रियाँ कमजोर हैं। वह स्त्रियों को सबसे ज्यादा मजबूत मानती हैं। वह स्त्रियों से कहती हैं कि प्यार मत खोजो। दोस्ती रखो। दोस्ती प्यार से ज्यादा बढ़कर कोई चीज होती है। प्रभा खेतान ने स्त्री के विषय में एक विशिष्ट प्रकार का दृष्टिकोण रखा है जो उनके समूचे साहित्य की विशेषता है। पुरुषों के बनाए समाज में स्त्री के लिए एक बार भी कहीं स्वतंत्राता के लिए जगह नहीं होती है। यह तथ्य सभी को मालूम हो जाना चाहिए। इसी संदर्भ में प्रभा खेतान की निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं''बचपन की ओर मुड़ती हूँ और कभी–कभी सोचती हूँ कि आखिर कैसे मैंने यह त्रासदी झेली। आखिर मैं जिंदा कैसे रह गई। एक बड़ी वाहियात–सी जिन्दगी जो थी।''[28]

प्रभा खेतान कहीं–न–कहीं पुरुष जाति से नफरत करती हैं। वह यह मानकर चलती हैं कि असहाय स्त्री को न पिता छोड़ता है, न पुत्र, न भाई। स्त्री किसी पराए पुरुष से प्यार नहीं कर सकती है। अपनी मर्जी से जी नहीं सकती है। स्त्री–उपेक्षिता का जिक्र उन्होंने पुरजोर शब्दों में उठाया है। 'सीमोन द बऊवार' की विश्व चर्चित पुस्तक 'द सेकेंड़ सेक्स' (The Second Sex) 'स्त्री–उपेक्षिता' ने स्त्रियों के अस्तित्व को स्थापित किया और उनके अधिकारों के लिए लोगों को सजग किया। घृणा और आतंक के बीच स्त्री जीती जाती है और अपनी पीड़ा किसी से नहीं कह पाती। प्रभा खेतान यह मानती हैं कि भारत की प्रत्येक स्त्री इस समय 'अन्या' है किन्तु केवल वही 'अन्या' नहीं बल्कि विश्व के प्रगतिशील समझे जाने वाले ब्रिटेन और फ्रांस के स्त्रियों की भी यही नियति है। स्त्री अपनी शारीरिक रचना के माध्यम से भी पुरुष से मात खाए बैठी है। उम्र के किसी भी पड़ाव पर वह अन्या ही है। चाहे स्त्री का शैशव हो, यौवन, हो उसके माथे से कभी स्त्री शब्द नहीं हट पाता। तवायफ से लेकर रखैल भी स्त्री ही होती है, पुरुष नहीं होता है। प्रभा खेतान के व्यक्तित्व में स्वार्थहीनता है, निराशाओं से जूझने की शक्ति है, हीन भावना उनके भीतर नहीं है।

वह अक़्सर इस बात को नकारती है कि संसार दुःखमय है इसलिए त्याज्य है। प्रभाखेतान को सामान्य स्त्री एवं सामान्य पुरुष के दुःख कचोटते हैं। वह यह मानती हैं कि हम सबका दुःख अपना है, निजी अनुभव भी अपना ही है। इसलिए निजत्व की रक्षा होनी चाहिए। प्रभा खेतान के स्त्री विमर्श और प्रेम–परक कविताओं का अपना एक दौर रहा है। उनकी रचनाएँ हमें कविता, कहानी, उपन्यास, चिंतन, अनुवाद इत्यादि के रूप में मिलती हैं। उनकी निम्नलिखित रचनाएँ हैं जिनमें स्त्री की विविध छवियों को देख सकते हैं। 'अपरिचित उजाले', 'सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं', 'सार्त्र का अस्तित्ववाद', 'सार्त्रः शब्दों का मसीहा', 'एक ओर आकाश की खोज में, 'कृष्ण धर्मा मैं', 'एक और पहचान', 'हुस्नबानों और अन्य कविताएँ, 'अहल्या', 'स्त्रीः उपेक्षिता', 'साँकलों में क़ैद क्षितिज', 'आओ पेपे घर चलें', 'तालाबन्दी', 'छिन्नमस्ता' इत्यादि। केवल समस्यापूर्ति करना ही प्रभा खेतान का उद्देश्य नहीं था बल्कि समस्या को विश्लेषित कर जीवन के संदर्भ में उसको देखना इनका ध्येय रहा है।

आधुनिक काल के स्त्रियों की विशेषता यह रही है कि इसमें गैर अभिजात्य वर्ग की लेखिकाओं का दबदबा रहा है। अधिकांश लेखिकाएँ मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग से आई हैं। यह महिलाएँ गृहस्थी और परिवार से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं। अब यहाँ स्त्री अपनी स्वतंत्रराय चाहती है जो परंपरा से भिन्न चाहती है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में स्त्रियों ने 'परिवार' के खिलाफ भी विद्रोह किया उस परिवार के खिलाफ जो रूढ़िवादी विचारों से युक्त था। उसका संघर्ष रुढ़ियों के खिलाफ था। प्रभा खेतान इसी संघर्ष को आगे बढ़ाना चाहती है। वह परिवार की अपनी अवधारणाओं पर चोट करती हैं। इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–''सुमित्रा चुपचाप बैठी पति का चेहरा देख रही थी–कहने लगी, जी कम खा लेगें पर यह क्या रात–दिन की झक–झक? यह भी कोई जीवन हुआ? आपको तो मुझसे, बच्चों से बात तक करने की फुर्सत नहीं। माँ जी को दो दिन से बुखार आ रहा है, डॉक्टर साहब आकर चले गए।''[29]

प्रभा खेतान का संघर्ष बहुस्तरीय है। एक स्त्रीका समूचा जीवन पिता, पति, भाई इत्यादि के आस–पास व्यतीत होता है इन्हीं के खिलाफ संघर्ष के लिए बहुत बड़ा ह्रदय चाहिए और वह ह्रदय उनके पास था। पुरुष निर्मित नियमों, कानूनों में स्त्री जिए तो वह ठीक है नहीं तो उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। प्रभा खेतान

यह मानती है कि स्त्री की स्वतंत्रा पहचान अभी निर्मित नहीं हुई है। उसकी स्वतंत्र जीवन–शैली अभी निर्मित नहीं हुई है। प्रभा खेतान के साहित्य में यह बताया गया है कि लिंगभेद जन्मजात नहीं बल्कि सामाजिक निर्मित है। यह निर्मित एक सामान्य आदमी नहीं जानता है। इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–''स्त्री का पठन वस्तुतः पुरुष की पठन–शैली से भिन्न होता है। इसी तरह स्त्री की विरहानुभूति को पुरुष लेखन में जिस तरह अभिव्यक्ति मिली है उसे वास्तव में अनुभूति की संज्ञा तो नहीं दी जा सकती चाहे रूपायन कितना ही मानसिक एवं यथार्थवादी हो। यह तो एक दर्शक की पीड़ा है। जो विरहानुभूति की पूरी प्रक्रिया से बाहर खड़ा है।''[30]

यहाँ यह कहा जा सकता है कि स्त्रीसंबंधी ऐसे अनेक विषय हैं जो सिर्फ स्त्री अनुभूति एवं संसार का अंग माना जा सकता है। पुरुष केवल एक दर्शक मात्र ही बनकर रह जाता है। यहाँ स्त्री की दुनिया को देखने वाला कोई नजर नहीं आता है। स्त्री को एक ऐसे अनुभव से गुजरना पड़ता है,जो शोषित है। यह अनुभव परिष्कृत है स्त्री साहित्य का यदि इतिहास लिखा जाए तो विकल्प का इतिहास लिखा जा सकता है।

स्त्री समाज और पुरुष समाज एक दूसरे की सीमा से भी परिचित हैं किन्तु पुरुषों की मानसिकता स्त्रियों की मानसिकता के विरुद्ध दिखाई देती है। हाँ, बहुत से पुरुष हैं जो स्त्रियों को उनका अधिकार दिलाने के पक्ष में हैं। किन्तु अधिकतर पुरुष इसका समर्थन नहीं करते हैं। ऐसे समय में साहित्य या विचार रचना के केन्द्र में स्त्रीवादी विचारधारा को रखना कितना महत्त्वपूर्ण है इसको देखना बहुत जरूरी है। स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता है। स्त्रियों के सामने कुल्टा की स्थिति चरित्र हीनता की स्थिति उस समय बन जाती है जब उनका अपना कोई करीबी नहीं रह जाता है। विदेश या अन्य जगह जाने पर किसी की स्त्री यदि घर पर अकेले है तो परिस्थितियों के दबाव या अन्य कारणों से वह किसी–न–किसी के संपर्क में आ जाती है। युवती के आकर्षण का केन्द्र भी कोई बन सकता है।

इन सभी तथ्यों को समझना बहुत जरूरी है। आधी दुनिया का इतिहास स्त्री का इतिहास है यह बात सभी को समझ में आ जाना चाहिए। प्रभा खेतान यह

कहती हैं कि वह उस समाज की स्त्री हैं जहाँ पुरुष एक लाख या करोड़ का आदमी होता है। प्रभा खेतान चाहती हैं कि स्त्री की एक अलग पहचान बने। वह स्त्री को गिरते जाने के क्रम से बचाना चाहती हैं। प्रभा खेतान की निम्न पंक्तियाँ इसी संदर्भ में देखी जा सकती हैं–''शायद ये दोस्तियाँ न रहती तो मैं कभी एक हीऔरत हो जाती अपने ही घरौंदे में कैद।''[31]

प्रभा खेतान स्त्री के बारे में एक अलग दृष्टिकोण रखती हैं। यह दृष्टिकोण ही उन्हें समूचे हिन्दी साहित्य से अलग एक नई भाव भूमि पर पहुँचा देता है। उपेक्षिता स्त्री को वह हमेशा से ही सहानुभूति का पात्र मानती हैं। वह उस समूचे पुरुष जाति से नफरत करती हैं जो मासूम–सी लड़की को भी नहीं छोड़ता। स्त्री स्वयं में घुल जाती है, मिट जाती है। वह किसी अन्य पुरुष से प्रेम नहीं कर पाती है। वह घुट–घुट कर मरने के लिए अभिशप्त हो जाती है। यही उसकी नियति है। इसके अतिरिक्त वह रंगभेद तथा घृणा की पात्र बन जाती है। यह घृणा समाज के लिए उपयोगी नहीं है। प्रभा खेतान यह मानकर चलती है कि कोई स्त्री अपनी शारीरिक रचना के माध्यम से पुरुष से मार खाए बैठी है। उम्र के किसी भी स्तर पर वह मार खाए बैठी है चाहे शैशव हो, यौवन हो, बुढ़ापा हो।

प्रेम के साथ दर्द और वेदना का गहरा नाता है। तभी तो लेखिका दर्दों की एक लम्बी वेदना अपने भीतर समाहित किए हुए है। लेखिका को यहाँ प्रेम लालायित करता है किंतु सामाजिक वर्जनाएँ यहाँ मौजूद हैं। वह प्रिय की प्रतीक्षा में निरंतर जलती रहती हैं। वह अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक नहीं है। इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–

''मेरे हैं एक नहीं तीन मन
एक कविता लिखता है
एक प्यार करता है
और एक केवल
अपने लिए जीता है।''[32]

यहाँ एक जीवन धड़कता है। प्रभा खेतान ने जीवन के विविध रूप इस धड़कन में अनुभव किए हैं। वह टूटने से उभरने की हद तक आ जाती है।

अपने बचपन या किशोरावस्था के शुरुआती दिनों में जब उसने चलना शुरू किया था तब उसके भीतर एक मीठी उत्तेजना थी। लेकिन वह मीठी उत्तेजना सिरहन भरी थी। अब जब वह चलती है तो ठहर कर, ठिठुर कर चलती है। हर बिन्दु पर नई राह से जुड़ती हुई चली जाती है। वह अनवरत दबाव से थकती हुई चली जाती है। यहाँ स्त्री के प्रति एक भावभीनी दुनिया भी दिखाई गई है। एक लगाव भी दिखाई गया है।

इसी प्रकार उनकी अन्य रचना जिसमें स्त्री संबंधी दृष्टिकोण निहित है वह है–'सीढियाँ चढ़ती हुई मैं'। इसमें उन्होंने अपने अस्तित्व पर गहन चिंतन किया है। यह केवल उनके अस्तित्व पर चिंतन नहीं बल्कि स्त्री के चिंतन का अस्तित्व है। अस्तित्व से संबंधित विरोधाभास, सारे अनिश्चित आयाम दिखाई देते हैं।यहाँ हँसी के साथ–साथ एक मौन कविता भी उभरती है। यहाँ कवयित्री के लिए एक अंतश्चेतना है। यहाँ आदर्श रूप धीरे–धीरे खत्म होता हुआ दिखाई देता है। यथार्थ रूप विभिन्न संदर्भों से यहाँ गुजरता दिखाई देता है किन्तु कवयित्रीा के लिए यहाँ प्रेम सृजन और प्रेरणा का आयाम भी है। इसी संदर्भ में एक स्त्री की प्रेम परक कविता देखी जा सकती है–

''तुम आए
और पहले चुम्बन के बाद
मैंने महसूस किया कि
मैं मेज पर लटकते बल्ब में
समा गई हूँ
कि इस समय
मैं पूरी रोशनी का
एक गोलचक्र हूँ
जो अब कमरे में छाए
अँधेरे के खिलाफ
पूरी तरह लड़ सकता है।''[33]

यहाँ प्रेम की बात करती हुई स्त्री अपने अस्तित्व को नहीं भूलती। इसलिए वह व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने के लिए तैयार रहती है। यह विद्रोह स्वयं की पहचान बनाने के लिए है। कवयित्रीा जीवन मृत्यु की चर्चा करते हुए दार्शनिक भी हो जाती है। उसका दृष्टिकोण दर्शन के क्षेत्र में ज्यादा प्रतीत होता है। दर्शन और अस्तित्व के मुद्दे से जुड़ी प्रभा खेतान अपनी बात करना कभी भूलती ही नहीं है। उन्होंने साहित्य जगत् में अपनी एक अलग छवि निर्मित की है। अपनी बात में प्रभा खेतान लिखती हैं–''मैं जो कुछ भी लिख रही हूँ वह बहुत महत्वपूर्ण न भी हो तब भी अपने आप में मेरे लिए उसका महत्त्व है। जब मैं लिखती हूँ तब अपनी तरह।''[34]

कवियित्री अपने 'मैं' को बचाकर रखना चाहती है। उसका अहम उसके लिए रूपायित होता है। जीवन में कुछ सृजन के पल होते हैं। समाज किसी भी कीमत पर स्त्री की पराकाष्ठा को स्वीकार नहीं करते हैं। सेवाओं और वस्तुओं की तरह उसे उपभोग की वस्तु मानी जाती है। समाज की इसी प्रक्रिया के भीतर स्त्री 'माँ' नामक संबंध से जुड़ती है। माँ बच्चे के साथ संबंध और फिर माँ की नियति को चित्रित करती हुई बताती है–

''मेरे सपनों में
अब तुम्हारा कोई स्थान नहीं
मेरे सामने
एक दुनिया खुली हैं
जब मैं माँ बनूँगी
तब भी तुम
परसी हुई थाली लिए
मेरा इंतजार कर रही होगी।''[35]

कवयित्रीा के सपने यहाँ मुक्ति के लिए छटपटाते हैं। कवयित्री जीवन के किसी रंग को छोड़ना नहीं चाहती है। यहाँ कवयित्रीा के लिए शब्दों की खूबसूरती भावों की गरिमा में है। भाषा की सरलता इसको और पुष्ट करता है। भाषा भी स्त्री की अभिव्यक्ति को अभिव्यक्त करती है। भौतिक सुख–सुविधओं एवं व्यक्ति की सम्पन्नता उसकी आत्मिक शांति की कोई शर्त नहीं रखती है। बल्कि जितनी अध्कि

सम्पन्नता होती उतनी अधिक विचलित होती है। अस्तित्व और उसकी बिसात को स्त्री बहुत ही अधिक गहराई से लेती है। मनुष्य की चाह जीवन की चाह है। इस चाह की स्वीकृति ने स्त्री की विविध छवियाँ निर्मित कर दी हैं।

लेखिका ने स्वयं स्वतंत्रता के सिद्धांत को चुना है और इसी सिद्धान्त को, मुद्दा बनाकर अस्तित्व को चुना है। लेखिका प्रेम, भाषा और आत्मपीड़न की पराकाष्ठा से पूर्ण होती है। आत्मपीड़न, तटस्थता, लालसा इत्यादि आदि अनेक प्रवृत्तियाँ है जो स्त्री के भीतर समाहित हैं। दूसरे की स्वतंत्राता या मुक्ति यह स्वयं की स्वतंत्रता या मुक्ति से जोड़कर देखती हैं। स्त्री की पराधीनता को लेकर विविध प्रकार की संभावनाएँ व्यक्त करती हैं। मानव चिंतन में स्त्री की विविध भूमिकाएँ हैं। स्त्री की अपनी खोज कभी समाप्त नहीं होती उसकी खोज विचारात्मक है। वह अपनी खोज निरन्तर करती रहती है। लेखिका सार्त्र से बहुत प्रभावित है। वह सार्त्र के दर्शन अस्तित्ववाद पर विचार करते हुए स्त्री के अस्तित्व के प्रश्नों को ढूंढती है। वह अपनी समग्रता और एकीकरण में हर आदमी के जीवन का हिस्सा बनना चाहती है। लेखिका सार्त्र के दर्शन का बार–बार उल्लेख करती है। धीरे–धीरे सार्त्र नीति और इतिहास जुड़ते जाते हैं। सार्त्र व्यक्ति के अस्तित्व को स्थापित करते हैं। लेखिका भी सार्त्र के दार्शनिक से विचारों बहुत प्रभावित होती है।

लेखिका की एक और महत्त्वपूर्ण रचना 'एक ओर आकाश की खोज में' है। इसमें स्त्री विमर्श की विविध छवियाँ दिखाई देती हैं। यहाँ लेखिका अपने शिखर पर बैठी सोचती है कि मंजिले और भी है। महत्त्वाकांक्षा का शिखर तो कोई होता नहीं वह फिर भी आकाश की खोज में चला जाता है। सुरक्षा के लिए लेखिका या प्रभा खेतान वापस अपनी दुनिया में लौट आती हैं। वह अपने अस्तित्व की स्थापना का एक सफल प्रयास करती हैं। बीच–बीच में प्रभा खेतान स्त्री की उस परिधि पर विचार करती हैं कि स्त्री पैदा नहीं होती है बल्कि बनाई जाती है। वह शृंखलाबद्ध रूप से विचार करती हैं। वह शृंखलाबद्ध आयामों पर विचार की प्रक्रिया से गुजरता है। परिवर्तन से उन्हें प्यार है। लेकिन यह प्यार धरा के परिवर्तन से है। नदी के परिवर्तन से नहीं क्योंकि अस्तित्व का खण्डन वह नहीं चाहती है। प्रेम के चरम क्षणों में भी वह स्वयं को एक सीमा तक समर्पित करती है। स्वयं को बड़ा करने का प्रयत्न जीवन का प्रयत्न है। जीवन से जुड़ने का प्रयत्न है। वह स्वयं परिधिसे भीतर

रहकर जीवित आसक्ति के रूप में नहीं रह सकती हैं क्योंकि बाह्य परिवेश प्रायः मृत सा है। इस रचना में प्रभा खेतान कहीं भी आस्था और विश्वास का हनन नहीं होने देती क्योंकि व्यक्ति के अस्तित्व के लिए उसकी संपूर्णता की ओर निरंतर गतिमान है। यहाँ दिखाई देता है कि वह जिन्दगी के अंतिम सत्य को नहीं भूलती। पतझर में मुरझाए पत्ते को देखकर वह अनायास ही कह देती हैं–

''बसन्त का जन्मा
हर कोमल पत्ता
अब भोग रहा
अपने होने का सच।''[36]

घृणा, प्रेम, प्रतीक्षा, प्रेम की श्रेणी में वह नितांत अकेली हो जाती हैं। बरसात में घुले हुए धूल की तरह वह अकेली हो जाती हैं। वह अपनी सारी आकांक्षाओं को स्मृतियों के आंगन में छोड़ आती हैं। बिछुड़ने का क्रम यहाँ जारी है। वह स्मृति में जाकर सहजता का आवरण नहीं ओढ़ पाती हैं। इसी संदर्भ में लेखिका कहती हैं–

''आज छुट्टी का दिन है
तय किए रिश्तों को
अलमारी से निकाल
धूप दिखानी है
मनमुटाव की सलवटों पर
फिर से लोहा करना है।''[37]

तमाम दर्दों के बावजूद कटु स्मृतियों के बावजूद अपने ठगे जाने के एहसास के साथ, अकेलेपन की चुभन के साथ लेखिका आशा का दामन थामे रहना चाहती हैं। वह अपने अकेलेपन के एहसास को आकश में उछाल देने का साहस रखती है। झूठ से उत्पन्न दर्द के लिए स्वीकृति उनके यहाँ नहीं है। जीवन में उपलब्धियों की ओर बढ़ती हुई उनके यहाँ मृत्यु की सत्ता को स्वीकारने में डर नहीं है। वह भयभीत नहीं होती हैं। अतीत की असफलता उन्हें अकर्मण्य नहीं बनाती हैं। बल्कि वह चिड़िया की उपलब्धि को बहुत बड़ा मानती है। यह उपलब्धि मात्रा चिड़िया की उपलब्धि नहीं बल्कि स्त्री जाति की उपलब्धि है। वह आकाश की खोज को जीवन

की संपूर्णता से जोड़कर देखती हैं। स्वीकृति, अस्वीकृति को पूरी ईमानदारी के साथ जीती हैं। आस्थाओं और अपेक्षाओं को एक लक्ष्य पर केन्द्रित करती हैं। छोटी–छोटी बातों में बहुत गहरा अर्थ कहती हैं। वह आपकी बातचीत करती हुई प्रतीत होती हैं। पांडित्य प्रदर्शन उनके यहाँ कहीं नहीं हैं। वह पाठक को बोलचाल की प्रक्रिया में उतार देती हैं। किन्तु यह बोलचाल की प्रक्रिया स्त्री विमर्श की भी प्रक्रिया है जो बहुत दूर तक स्त्री की स्थिति को सोचने के लिए मजबूर कर देती हैं।

प्रभा खेतन का स्त्री विमर्श 'कृष्णा धर्मा मैं' में भी दिखाई देता है। इसमें एक लड़की अपने अस्तित्व के लिए श्रीकृष्ण को अपनी राह के लिए अपना मुसाफिर बना लेती है। अपनी पूजा के प्रथम अर्पण में उसने भगवान कृष्ण को इस सत्य का बोध दिया कि स्वयं उसका अस्तित्व कृष्ण के अस्तित्व को मान्यता देने वाली शक्ति है। कृष्ण यहाँ मानवरूप में अनेकों लीलाएँ करते हैं किन्तु महाभारत को अपने प्रयत्नों द्वारा भी रोक नहीं पाए। उनके अस्तित्व में भी असमर्थता के क्षण आते हैं। नर रूप में अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उन्हें कर्म पथ पर भी चलना पड़ता है। प्रभा खेतान यहाँ ब्रह्म की भांति अपने जीवन को प्रयोजन मूलक बनाना चाहती हैं। स्त्री को प्रयोजन मूलक होना चाहिए इस बात पर बल देती हैं–

''परम होने की वासना
मुझे निगल जाना चाहती हुई
बना देना चाहती मुझे सिर्फ एक छाया
घोषित कर देना चाहती
मेरे समूचे इतिहास को
केवल एक भ्रम
और...
कैसें मान लूँ मैं
कैसें मान लूँ मैं
सिर्फ इतना ही प्रयोजन
अपने छोटे से जीवन का।''[38]

प्रभा खेतान के संपूर्ण व्यक्तित्व का उनकी कृतियों के माध्यम से अध्ययन करने के उपरांत एक बात स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष उभरती है कि एक सशक्त लेखिका होने के साथ–साथ उनके हृदय में प्रतिभा के प्रति सम्मान और विश्व प्रेम की भावना है ? उनका यह प्रयत्न रहा है कि विश्व में जो कुछ भी अच्छा है, सराहनीय है उसमें सभी परिचित हों। 'द सैकेंड सेक्स' का हिन्दी में 'स्त्री : उपेक्षिता' के नाम से अनुवाद कर 'सांकलों में कैद क्षितिज' में दक्षिणी अफ्रीकी कविताओं का अनुवाद कर उन्होंने अपनी परोपकारी भावना का परिचय दिया है। 'एक और पहचान' भी इसी सिलसिले की एक कड़ी है जिसमें लेखिका ने विभिन्न क्षेत्रों से, विभिन्न कवियों की रचनाओं को, बिना किसी मूल्यांकन और विश्लेषण के प्रकाशन का बीड़ा उठाया है।

जीवन में एक समान भावों की प्रस्तुति में विभिन्नता प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक पहचान बनाती है। जीवन में जिसको जो मिलता है उसका प्रस्तुतीकरण वह अपने ढंग से अपनी चेतना के आधर पर करता है। इसी चेतना को विशिष्टता को परखने के लिए प्रभा खेतान ने इन कवियों को पठकों की संवेदनशील अदालत में लाकर खड़ा कर दिया है। प्रभा खेतान ने इस सत्य को अनावृत्त किया है कि विदेशों में भी स्त्री को स्वतंत्राता के नाम पर एक व्यर्थ की भागदौड़ ही मिली है लेकिन फिर भी वह प्रसन्न है कि वह अपनी स्वतत्रंता का अर्जन स्वयं ही करती है, आर्थिक स्वतंत्रता के माध्यम से। आर्थिक–स्वतंत्रता जो पहली शर्त है स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को कायम रखने की।लेखिका ने उसी पर बल दिया है।

कोई भी साहित्यिक रचना अगर, वह निरूद्देश्य हो तो उसकी सार्थकता संदिग्ध हो जाती है। 'आओ पेपे घर चलें' में य।पि प्रभा खेतान प्रत्यक्षतः कोई विशिष्ट उद्देश्य लेकर नहीं चली तथापि कथा पात्रों के साथ चलते–चलते उद्देश्यों के पट पाठक के सम्मुख खुलते जाते हैं। सत्य की तह में प्रभा खेतान ने यह भी समझाने का प्रयास किसी है कि स्त्री के लिए आर्थिक स्वतंत्रता आज के युग में निहायत ही आवश्यक है। स्वतंत्रता जैसी प्रिय वस्तु को पाने के लिए कई बार व्यक्ति को अपने मूल से भी उपर उठना पड़ता है। अजनबीपन के अहसासों से

घिरकर स्वयं को अपने देश में भरा–पूरा परिवार होते हुए भी विदेश में अकेलापन महसूस करना पड़ता है। अपने भर–भर आए आँसूओं को पी जाना पड़ता है। विशेषकर स्त्री को अपने अस्तित्व की स्थापना हेतु बहुत कीमत चुकानी पड़ती है। उसे बहुत लम्बा सफर तय करना पड़ता है इस आशा के साथ कि जब वे लौटकर फिर से अपने पास आयेगी तो उसे स्वनिर्मित अस्तित्व की गोद में असीम शांति मिलेगी।

उसकी जिजीविषा, उसके जीने की जिद उसे बार–बार नये सिरे से जीवन जीने के अवसर देती है। यदि प्रिया अपनी माँ के तिरस्कार और भाई के कुकृत्य से ही टूट जाती तो अन्ततः एक प्रमुख व्यवसायी की हैसियत से पाठकों के सम्मुख नहीं उभरती। यातना की कड़वी सच्चाईयों के साथ, स्वीकृति के साथ स्वयं को जिंदा रख पाना... अस्तित्व को अधिक मजबूत और स्थायी बनाता है। प्रिया जैसेंकुछ लोग जो जिंदगी की खरोंचों को पलट–पलट कर याद करते हैं वह कभी टूट नहीं पाते बल्कि विलक्षण होकर जीते हैं, खुले आकाश के नीचे पूरी संभावनाओं के साथ प्रिया का जीवन भारतीय स्त्री का दर्पण है जो स्थितियों से समझौते का भरसक प्रयत्न करती है। पुरुष का अहम् सदैव ही इस स्त्री को तोड़ने के प्रयत्न करता है। पति नरेन्द्र की भावनात्मक उपेक्षाओं और पत्नी के अस्तित्व को नकार देने के तमाम प्रयत्नों के कारण ही पत्नी प्रिया अपनी आइडेंटिटी बनाने के लिए अपने व्यवसाय में स्वयं को डुबों देना चाहती है।

प्रिया का चरित्र एक ऐसी भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करता है जो मूल रूप से प्रेम और सुरक्षा की ललक में रिश्तों को जोड़ने का भरसक प्रयत्न करती है। इसके लिए वह कभी अधिकार, तो कभी समर्पण के अस्त्र–शस्त्र प्रयोग में लाती है। छोटे–छोटे सुखों की लालसा में वह मूर्त, अमूर्त न जाने कितने ही बलिदान देती चली जाती है लेकिन जब इन बलिदानों के फलस्वरूप उसे मानसिक यातनाओं और उपेक्षाओं का विष पीने को मिलता रहता है तो वह अन्ततः इस विष को आत्मसात् करके अपना कायाकल्प कर लेती हैं।

इसके अतिरिक्त प्रिया की बहनें, भाभियाँ, सास, सौतेली सास सभी नारियाँ अपनी परंपराओं की परिधि में 'कैद' हैं, विरोध इनका अधिकार नहीं है। समाज की खोखली प्रथाओं के समक्ष नतमस्तक होकर उन्हें स्वीकारना ही इनकी पहचान है। गले में मंगलसूत्र और माँग में सिंदूर भरकर भी प्रिया की सौतेली सास जैसी शालीन स्त्रियाँ स्वयं के लिए रखैल का विशेषण एक कड़वी दवा की तरह पी ही जाती है। अस्तित्व इनकी समस्या नहीं है। एक वस्तु समझी जाने वाली यह स्त्रियाँ अपनी इसी नियति में संतुष्ट है। यही संतुष्टि इनकी इच्छा है।

प्रभा खेतान की विशिष्टता इस बात में है कि अपने संपूर्ण साहित्य में उन्होंने अस्तित्व की गरिमा के जिस स्वर को पकड़ा है 'छिन्नमसता' तक आते–आते उनकी यह पकड़ अधिक गहरी हो गई है। बहुत बड़े मूल्य चुकाकर वह इस गरिमा को प्राप्त कर पायी है। 'अहल्या' में स्त्री जाति के जिस अस्तित्व की बात को लेकर वह चली थी। 'छिन्नमस्ता' में वही अस्तित्व पूर्ण बारीकियों के साथ, सारे पहलुओं को छूता हुआ एक व्यक्ति–एक स्त्रीके माध्यम से कहीं–न–कहीं फिर समष्टि पर केन्द्रित होता हुआ समस्त स्त्री जाति को संदेश देता है कि आरंभ कहीं से भी किया जा सकता है। स्वयं को साबुत बचाये रखने के लिए कुण्ठाओं की बर्फ को पिघलाकर संभावनाओं का मार्ग तलाशने की आवश्यकता होती है और यही आशा प्रभा खेतान की हिन्दी साहित्य को एक बहुत बड़ी देन है। समस्त विवादों से परे एक बात तो निर्विवाद कही जा सकती हैकि एक लेखिका के तौर पर प्रभा खेतान हिन्दी साहित्य में स्थापित हो चुकी हैं।

संदर्भ सूची–

1. ओम प्रकाश शर्मा : समकालीन लेखन, पृष्ठ संख्या–80–81
2. हंस, दलित विशेषांक 2003, पृष्ठ संख्या–165
3. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक आलोचना के बीज शब्द, पृष्ठ संख्या–14
4. हंस मासिक, नवम्बर 2009, पृष्ठ संख्या–11
5. बेबल रू द सेकंड सेक्स पृष्ठ संख्या –36
6. प्रभा खेतान रू स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली, संस्करण–2002 पृष्ठ संख्या –65
7. ताप्ती लोक, अंतरजाल, पृष्ठ संख्या –3
8. मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य स्त्री विमर्श, पृष्ठ संख्या–35
9. सीमोन द बोउवार : द सेकंड सेक्स, पृष्ठ संख्या – 51
10. मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य, स्त्री विमर्श, पृष्ठ संख्या–21
11. सीमोन द बोउवार : द सेकंड सेक्स, पृष्ठ संख्या –52
12. जगदीश्वर चतुर्वेदीरू स्त्रीवादी साहित्य विमर्श , पृष्ठ सं–206
13. प्रभा खेतान : स्त्री उपेक्षिता, पृष्ठ संख्या –21
14. अनामिका : समन्वित स्त्रीवाद और भारतीय देवियाँ, पृष्ठ संख्या –179
15. श्रृंखला की कड़ियाँ , महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या–74
16. मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य, स्त्री विमर्श, पृष्ठ संख्या–40
17. प्रेमचंद, गोदान, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली।
18. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्री –अस्मिताः स्त्री –साहित्येतिहास की समस्याएँ, आनंद प्रकाशन कोलकाता, पृष्ठ संख्या– 128,
19. वही पृष्ठ संख्या–128
20. जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्री और पराधीनता, अनुवाद एवं प्रस्तुति युगांक धीर, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ संख्या–17
21. वही, पृष्ठ संख्या– 23
22. वही, पृष्ठ संख्या– 25
23. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, हंस मासिक पत्रिका में प्रकाशित, संपादक–राजेन्द्र यादव, पृष्ठ संख्या– 60
24. प्रभा खेतान, एक और लिखा गया पत्र, दिनांक 01.10.–1991

25. प्रभा खेतान, एक और पहचान, 1986, पृष्ठ संख्या –6
26. प्रभा खेतान–छिन्नमस्ता, पृष्ठ संख्या– 61
27. प्रभा खेतान, एक और लिखा गया पत्रा, दिनांक 22.10.1991
28. हंस, संपादकः राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान द्वारा लिखी गई समीक्षा दूसरी औरत, पृष्ठ संख्या– 85
29. प्रभा खेतान अन्या से अनन्या, पृष्ठ संख्या–14
30. प्रभा खेतान, तालाबंदी, पृष्ठ संख्या–55,
31. जगदीश्वर चतुर्वेदी, स्त्री –अस्मिता : स्त्री –साहित्येतिहास की समस्याएँ, पृष्ठ संख्या –148
32. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता ;हंस मासिक पत्रिाका में प्रकाशित, संपादक–राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, संस्ककरण 1991
33. प्रभा खेतानः अपरिचित उजाले, पृष्ठ संख्या–40
34. प्रभा खेतान, सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं, पृष्ठ संख्या–29
35. वही, पृष्ठ संख्या– 7
36. वही, पृष्ठ संख्या– 51
37. प्रभा खेतान, एक और आकाश की खोज में, पृष्ठ संख्या– 14
38. वही, पृष्ठ संख्या– 15
39. प्रभा खेतान, कृष्ण धर्मा मैं, पृष्ठ संख्या–24

द्वितीय अध्याय :

प्रभा खेतान की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री संवेदना

द्वितीय अध्याय

प्रभा खेतान की कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री संवेदना

''मेरी कविताएँ मेरे अपने अस्तित्व से शुरू होती है। मैं जो कुछ भी हूँ....मेरा सोचना या लिखना उससे बाहर नहीं जा सकता। अपने से बाहर जाने की मेरी रूचि भी नहीं। अस्तित्व से संबंधित सारे विरोधाभास सारे अनिश्चित आयाम, अस्पष्ट विचार, द्वैत भाव एवं अचेतन को शब्दों में बांधने का प्रयास कवि का रहता है, वह उसकी कविताओं में उभरता है, हंसता है, खिलखिलाता है, कभी–कभी बिल्कुल चुप हो जाता है। मौन में भीतर की आवाज रहती है। कविता मेरे लिए एक अंतः चेतना है एक भीतर की आवाज कई बार महज एक ध्वनि कभी पूरी कविता बन बहती हुई..... .मैं इसी एक भीतरी बिन्दु के लिए सजग सहज रहना चाहती हूँ। यही मेरी अपनी बात है।''[1]

प्रभा खेतान ने कविताओं के माध्यम से अपनी जीवन की भोगी हुई पीड़ा को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया है उनकी आत्मकथा के अंश उनके उपन्यास, कविताओं में दिखाई देते है उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार भी किया है कि उनकी आत्मकथा के अंश उनकी सभी रचनाओं में है।

प्रभा खेतान ने अपनी कविताओं के केन्द्र में स्त्री को रखा है एक स्त्री अपने जीवन ने क्या सोचती है, क्या उसके सपने है, इसे कविताओं अनिता के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

व्यापार जगत की ऊँचाईयों को छूने वाली प्रभा खेतान ने अपने जीवन में साहित्यिक क्षेत्र में अपना एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रभा खेतान ने व्यवसाय की व्यवस्ताओं के बीच 12 वर्ष की आयु में रहते हुए भी अनेक साहित्यिक कृतियों का निर्माण किया। उनकी साहित्यिक जीवन की पहली कविता सन् 1954 में 'सु–भात' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी उनकी पहली कविता का नाम 'ऊषा' आई..... ऊषा आई यह था। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा का प्रारंभ कविताओं से ही किया था। प्रभा खेतान ने आत्मकथा, उपन्यास के अतिरिक्त कविताओं के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्ति किये है उन्होंने सबसे पहले कविताएँ लिखना

आरंभ किया ही था। उन्होंने कविता को एक कवि के मन के विचारों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम माना है। एक कवि अपनी कविताओं के माध्यम से अपने मन की पीड़ा, अपने जीवन की आशा, निराशा, अभिव्यक्त करता है। कविता एक ऐसा माध्यम है जो कवि के मन को गढ़ती है। प्रभा खेतान इस संबंध में अपनी कृति 'एक ओर पहचान' में कहती है–''प्रभा जी के अनुसार कविता जिदंगी का वह प्रतिबिम्ब है जिसमें कवि अपना प्रतिबिम्ब देखता है कि इसमें जिदंगी के प्रति, उसके सिद्वांत के प्रति एक मासूम लगाव होता है। कोई भी अच्छी कविता केवल भीतर से उपजती नहीं बल्कि वह मेहनत मांगती है, तराश भी चाहती हैं।''[2]

प्रभा खेतान के छः कविता संग्रह है अपरिचित उजाले (1981) सीढ़ियॉ चढ़ती हुई मैं (1982) एक और आकाश की खोज में (1985) कृश्णधर्मा मैं (1986) हुस्नबानों अैर अन्य कविताएँ (1987), अहल्या (1988)

इन कविता संग्रहों के माध्यम से प्रभा खेतान ने प्रेम प्रेम की असफलता, प्रेम की वेदना, मिलन, एकाकीपन, मनुष्य के जीवन की विशनताएॅ, मजदूर वर्ग की जीवन की विषमताएँ, जीवन में कर्म का महत्व, स्त्री के अस्तित्व, उसके एक स्त्री होने का महत्व आदि विषयों पर कविताओं के माध्यम से चर्चा की है।

प्रभा खेतान का मानना है कि कविता वह माध्यम है जिसमें व्यक्ति अपनी मन की दबी आवाज को वाणी देता है, मन में दबे विचारों को बाहर निकालता है, मन की कुण्ठाओं, निराशा को व्यक्त करता हैं। अपने मन की उलझनों को दूर करने का प्रयत्न करता है। जो बात हम हम मुख से अभिव्यक्त ना कर पाये वह कविता के माध्यम से व्यक्त की जा सकती है। कविता व्यक्ति के मन के भावों के उद्गार का माध्यम है। कवि जब कविता करता है तब कविता के भीतर उसका प्रतिबिम्ब झलकता है। प्रभा खेतान की कविताओं में भी उनका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। उन्होंने अपने जीवन में जो महसूस किया उस अनुभव को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया। लेकिन आज की कविताओं पर दृष्टि डाले तोआज के युग में लिखी गई कविताओं में बनावटी बन दिखाई देने लगा है। प्रभा खेतान इस बात को स्वीकार करती हुई कहती है–

''आज की बहुत सारी कविताओं में सहजता का स्थान कृत्रिमता और बनावट ने ले लिया है। ओढ़े गये एहसास उधार विश्वास और संवेदनाओं की बासी प्रस्तुति कविता को विकासशील परम्परा से काटकर एक कृत्रिम अलगाव देते है।''[3]

प्रभा खेतान ने छः कविता संग्रहों का निर्माण किया।

कविता संग्रहः–

1. अपरिचित उजाले–1981
2. सीढ़ियॉ चढ़ती हुई मैं– 1982
3. एक और आकाश की खोज में–1985
4. कृष्ण धर्मा मैं–1986
5. हुस्नबानों और अन्य कविताएँ–1987
6. अहल्या–1988

अपरिचित उजाले

साहित्यिक क्षेत्र में प्रभा खेतान का प्रथम काव्य संग्रह अपरिचित उजाले सन् 1981 में प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में कुल 64 कविताएँ संग्रहित है। प्रभा खेतान कविता को अपने मन के भावों को प्रकट करने का माध्यम मानती है। प्रभा खेतान स्वयं इस बात को स्वीकार करती है और अपरिचित उजाले काव्य संग्रह की भूमिका में लिखती है–''कविता मेरी जरूरत है, एक रिलीज, मेरे व्यक्तित्व की एक अभिव्यक्ति। इसके प्रकाशन के पीछे मेरी केवल एक यही इच्छा है कि मैं उन सबके साथ जो मेरी ही तरह साधारण है, कुछ अपनी बातें कर सकूं। मैं किसी भी पीढ़ी से संबंधित नहीं। एक व्यक्ति की हैसियत से उसकी अपनी भावनात्मक जरूरतों के हिसाब से लिखी गयी ये कविताएं, उन सबके लिए है जो एक तरह से असाहित्यिक हैं, जो साहित्य की दुनिया में भय से कदम नहीं रखते पर जो जीवन के प्रति कवि दृष्टि रखे है और कविता से कभी–कभी संवाद भी कर लेते हैं। वैसे ही साधारण और असाहित्यिक लोग मेरे साथ रहे हैं, उसी खेमे को ये कविताएं समर्पित है।''[4]

'अपरिचित उजाले कविता संग्रह की मूल संवेदना 'प्रेम' पर आधारित है। प्रभा खेतान ने अपने इस काव्य संग्रह में मनुष्य के जीवन में प्रेम के महत्व को दिखाने

का प्रयत्न किया है। प्रेम विहिन जीवन मनुष्य के जीवन को नीरस एवं उदासीन बना देता है। प्रभा खेतान की इन कविताओं में प्रेम में संयोग की अपेक्षा वियोग की वेदना, प्रेम की असफलता तथा उससे मिली गहरी पीड़ा दिखाई देती है। प्रेम में असफल होने पर मनुष्य उदास हो जाता है अपने जीवन में निराश हो जाता है लेकिन कवयित्री अपने जीवन में हार नहीं मानती और उसी प्रेम के माध्यम से समाज में आगे बढ़ना चाहती है। वह प्रेम को अपनी ताकत बनाना चाहती है और समाज के उन लोगों को जवाब देना चाहती है कि जो प्रेम के रिष्तो खिलाफ है। कवयित्री एक ऐसे समाज में रहती है जहाँ 'प्रेम' संबंधों को सदैव शंका की दृष्टि से दृष्टि से देखा जाता है। ऐसे लोगों को कवयित्री मुँह जवाब देती है, उनका सामना करती है और अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करती हैं। कवयित्री को ऐसे लोगों का कोई भय नहीं हे वह अपने प्रेम के के सम्बन्ध में कहती है–

''तुम जानते हो,
मैने तुम्हे प्यार किया है,
साहस और निडरता से,
मैं उन सबके सामने खड़ी हूँ,
जिनकी आंखे हमारे संबंधों पर
प्रश्नवाचक मक्खियों की तरह मंडराती है।''[4]

ऐसे समाज में रहकर प्रेम के मार्ग पर चलनाअंगारों पर पैर रखने के समान होता है। लेकिन कवयित्री समाज के ऐसे लोगों की परबाह नहीं करती है। वह प्रेम को पवित्र मानती है और अपने जीवन में प्रेम करती है। लेकिन प्रेम में सफलता नहीं मिलने पर भी टूटती वह एवं निराश नहीं होती है। बल्कि अपने उसी प्रेम को जीवन में आगे बढ़ने का माध्यम बनाती है। कवयित्री ने प्रेम को रेगिस्तान में झुलसते हुए गुलाब की भांति बताया है क्योंकि रेगिस्तान समाज का प्रतीक है और झुलायता हुआ गुलाब यहां स्त्री है। एक ऐसी स्त्री जो अपने जीवन में प्रेम करती है। समाज उस स्त्री कें चरित्र पर शंका करता है और उसे चरित्रहीन कहता है–

''यो प्यार करना
कितना मुश्किल होता है,

अंधेरे रेगिस्तान में
गुलाब झुलसने के लिए
बस छोड़ दिये जाते है।''[5]

कवयित्री के मन में ऐसे लोगों के प्रति आक्रोश है जो प्रेम की पवित्रता पर आपत्ति व्यक्त करते है। प्रेम के नाम पर अपनी नाक–भौंह सिकोड़ते है ऐसे लोगों के प्रति कवियत्री आक्रोश व्यक्त करते हुए कहती है।

''वह प्यार
जो उजाले में पहचानने से डरता है
मुझे उससे घृणा हैं,
मैं उन तमाम लोगों से घृणा करती हूँ
जो प्यार को सांचों मे ंबदल देना चाहते है।''[6]

मनुष्य अपने जीवन में सुख और दुःख से गुजरता है जब मनुष्य खुश होता है तो उसे संसार में सब कुछ अच्छा लगता है। सारा परिवेश मनोरम लाता है प्रभा खेतान 'बास स्टाप' कविता में प्रेमिका को प्रेमी द्वारा गुलाब दिये जाने के पश्चात् जो कुछपल आनंद की अनुभूति होती है। उस आनंद के पल को अपने शब्दों में बयां करती है–

''सुनो! आज रास्ता न बोझिल था,
न लम्बा
भीड की गर्मी,
पसीने की बदबू
पास बैठे आदमी का बेहूदा दबाव
कहीं कुछ भी नहीं था।''[7]

किन्तु इसी प्रेम में जब प्रेमिका अपने प्रेमी की प्रतिक्षा करती है और अधिक समय होने पर भी प्रेमी के नहीं आने पर जो वेदना, बैचेनी का अनुभव करती है वह उसके मन मस्तिश्क को झकझोर देती है ओर उसके मन में एक निराशा छा जाती है। उसी मनः स्थिति को कवियत्री व्यक्त करते हुए कहती हैः–

''आखिर कब तक लटकी रहूँ
सारी–सारी शाम
सूखते कपड़ों सी बरामदे में
प्रतीक्षा करूं तुम्हारे आने की
एक क्षण से
दूसरे क्षण तक।''[8]

प्रभा खेतान ने अपने काव्य संग्रह में प्रेम के साथ–साथ भारतीय समाज की पुरूषवादी मानसिकता एवं इसी पितृसत्तात्मक समाज में एक स्त्री के जीवन की विडम्बना को भी प्रस्तुत किया है। एक हमारे भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था रही है। और इसी के परिणामस्वरूप पुरूष समाज में अपना वर्चस्व स्थापित करने का प्रयत्न करता है। वह सदैव स्त्री को अपने समक्ष एक[1] वस्तु समझने की कोशिश करता है। स्त्री की इस स्थिति के संबंध में प्रभा खेतान कविता में कहती है–

''तुम चाहते हो
मैं तुम्हारे गमले का फल बनूं
उगूँ तुम्हारे बरौनियों के सूरज को देख
तुम चाहते हो
मैं बनूं तुम्हारे ड्राइंग रूम का कालीन
पर्दे, सोफा
या बैड कवर
फैली रहूँ बिस्तर पर ...।''[9]

वही भारतीय स्त्री जो सदियों से चूल्हे–चौके में उलझी हुई स्त्री पति एवं अपने पविार में ही अपनी दुनिया ढूंढती है, अपनी तो उसे सुध ही नहीं रहती है वह अपने घर के दैनिक कार्यो में इतनी व्यस्त रहती है कि वह प्रकृति का आनंद नहीं उठा पाती। ऐसी स्त्री की वेदना को बयान करती हुए कवयित्री कहती है।

''मुझे तो घर का बहुत काम है
कपड़े सुखाने है
मेरे चूल्हे की लकड़ियाँ गीली है।
बच्चा सर्दी से खॉसता है,
तुम्हारे साथ–साथ
कैसे बनूँ पारवी
या मेघ मल्हार गाऊँ।''[10]

प्रभा खेतान ने अपनी कविताओं में नौकरी पेशा स्त्रियों की मन स्थिति को भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है एक तरफ स्त्रियाँ जहॉ अपना घर परिवार संभालती है वही दूसरी ओर कामकाज स्त्रियाँ ऑफिस मे अपनी फाईलों में काम को खत्म करने में व्यस्त होती है। उनकी स्थिति का वर्णन करते हुए कवियत्री कहती है–

''मैं मुंह घुमाकर
फाईलों में डूब जाती हूँ
मुझे करने है बहुत से काम
लेकिन चिड़ियॉ चुप नहीं होती
तेज धूप में उसकी आंखे कातर है।
सूरज आधा रास्ता तय कर चुका है
चिड़ियाँ चुप नहीं होती।''[11]

प्रभा खेतान का जीवन माँ के प्यार से वंचित रहा। उन्हें बचपन से ही माँ का प्यार बहुत अधिक नसीब नहीं हुआ जिसकी टीस सदैव उनके मन में बनी रही और यही टीस उन्हें बार–बार दुःखी करती रही। उनका यही दुःख उनकी रचनाओं में दिखाई देता है। उन्हें अपनी माँ से कोई शिकायत नहीं हुई। वे जब भी अपनी माँ के पास बैठती है तो माँ पुरानी बातों को लेकर दुःखी हो जाती है। कवयित्री चाहती है कि माँ पुरानी बातों को भूलकर केवल उनके पास बैठी रहे। माँ के संबंध में प्रभा खेतान कहती है –

''माँ, याद मत करो
कुछ भी,
बस, मेरे साथ रहो।''[12]
पुरानी बातों को भूलने के लिए कहती है
''अधूरे सपने को
मत देखों बार–बार
उन बच्चों कीमत करो बात
जो आखिरी पतंग से कट गये
तुम्हारी जिदंगी से।''[13]

कवयित्री ने एक तरफ जहाँ प्यार जैसे नाजुक विशय को उठाया है, वहीं दूसरी तरफ दुनिया को दहला देने वाले आतंकवाद जैसें विषय को भी कविता में गंभीरता से प्रस्तुत किया है। कवयित्री ने आतंकवाद को दूषित राजनीति का परिणाम माना है। इसी के कारण हिंसा भड़कती है, दंगे होते है और निरपराध लोगों को सजा मिलती है। इस स्थिति के संबंध में कवयित्री कहती है–

''वे लोग बड़ी दूर तक
भागते चले गये
उनकी भौहे तनी थी
मुठ्ठियाँ भिची थी
अगल–बगल सब मकानों पर
बारूद के गोले
फेंकते जा रहे थे।''[14]

समाज में फैले इस प्रकार के तनावग्रस्त माहौल में मनुष्य अनेक समस्याओं से घिरा रहता है इसी कारण वह अपनी मन की आंकाक्षाओं को पूरा नहीं कर पाता। जीवन की इन्हीं जटिलताओं में उलझे व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहती है–

''चलो, किसी पार्क के कोने में बैठकर
मूंगफली खायें
बातें करें

हरे पहाड़ो ंकी
नीली–झील की।''[15]

इस कविता संग्रह की कविताओं में प्रेम, में प्रतीक्षा, प्रतीशा से उत्पन्न बैचेनी, आम आदमी, नगरीय समस्या एवं कवयित्री का मानसिक द्वंद्व उभरा है। प्रभा खेतान ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि उनके एक नहीं बल्कि तीन–तीन मन है।

''मेरे है एक नहीं, तीन मन
एक कविता लिखता है
एक प्यार करता है
और एक केवल
अपने लिये जीता है।''[16]

सीढियाँ चढ़ती हुई मैं

सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं प्रभा खेतान का दूसरा काव्य संग्रह है जो सन् 1982 में प्रकाशित हुआ था। इस काव्य संग्रह में कुल 61 कविताएँ संग्रहित है। प्रभा खेतान ने अपने इस काव्य संग्रह में किसी एक बिन्दु पर न लिखकर कई बिन्दुओं का समावेश किया है अर्थात् उन्होंने किसी एक विशय पर कविताएं नहीं लिखी अपितु उन्होंने मनुष्य के जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं को कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

प्रभा खेतान काव्य सृजन को मनुष्य के मन की मुक्ति और जीवन दृष्टि मानती है। सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं कविता की भूमिका में प्रभा खेतान स्वयं कहती है–''मैं जो कुछ भी लिख रही हूँ वह बहुत महत् न भी हो तब भी अपने आप मैं मेरे लिए उसका महत्त्व है। जब मैं लिखती हूँ तब अपने–आप को पेश करती हूँ...जैसी भी हूँ उसी तरह....कविता लिखती हूँ क्योंकि मन को एक राहत मिलती है। जीने की एक समझ, दृष्टि को एक तरलता मिलती है....कविता मेरे लिए एक अंतः चेतना है– एक भीतर की आवाज कई बार महज एक ध्वनि...कभी पूरी कविता बन बहती हुई ...मैं इसी एक भीतरी बिन्दु के लिए सजग रहना चाहती हूँ।''[17]

प्रभा खेतान के इस कविता संग्रह में प्रेम की परिपक्वता के साथ गरीब तबके की वेदना भी दिखाई देती है। इस कविता संग्रह में प्रेम, वेदना, आम आदमी की वेदना एवं पारिवारिक संवेदनशीलता दृष्टिगत होती है। प्रेम–विशयक कविताओं में 'एक उदास सुबह' से जब तुम, 'प्रतीक्षा' 'तुम आये'काली दीवार, 'हमारे बीच', दरवाजा खुलता है जैसी महत्वपूर्ण कविताएं है।

प्रभा खेतान ने अपने इस कविता संग्रह में प्रेम, आम आदमी के अतिरिक्त एक स्त्री के जीवन को बखूबी प्रस्तुत करने क प्रयत्न किया है। आग का होना, नियति कविता में आज स्त्री की यथार्थ स्थिति को दिखाया गया है। जहाँस्त्री विज्ञापन की एक वस्तु मात्र बनकर रह गई है। एक स्त्री के अकेले पन की पीड़ा को अभिव्यक्त करती कविताएँ 'तुम नहीं समझोगे', सपने, हौसला, प्रमुख है। बोलो माँ, कविता में कवयित्री की मां की ममताके संबंध में बात की गई है।

कवयित्री आम आदमी के प्रति सहानुभूति रखती है। जो अपना जीवन जीने के लिए अविराम संघर्ष करता रहता है। उनकी कविता का स्वर भूख और रोटी से संबंधित है। अमीनुल्ला तुम! कविता के माध्यम मजदूरों की कार्य क्षमता व्यक्त हुई है।

कवयित्री इस काव्य संग्रह के माध्यम से अपने प्रेम की वेदना को उजागर करती है। वे मानती है कि जब प्रेम में वेदना मिलती है तो मनुष्य अकेला हो जाता है और उस अकेलेपन में प्रकृति उसका साथ देती है। कवयित्री के मन में अपने प्रेमी के प्रति प्रेम है। वह आज भी उन्हें याद करती है। और उनका मन बार–बार उनसे प्रश्न पूछता है कि प्यार में तुने क्या पाया, तब उसका दूसरा मन उसे जवाब देता है कि–

''प्रेम करने की शक्ति
क्या अपने आप में काफी नहीं
यानी आज भी जब तुहें चाह पाती हूँ।
लगता है कि मैं जिन्दा हूँ।''[18]

जब कवयित्री अपने प्रेमी के साथ रहती है तो प्रेमी का सामीप्य उन्हें सुखद अनुभूति प्रदान करता है। उन्हें सुखद आनंद की अनुभूति होती है प्रत्येक क्षण उन्हें

गुलजार सा लगता है। 'एहसास' कविता में इस अनुभूति को कवयित्री ने व्यक्त किया है।

''तुम हो
तुम साथ चल रहे हो
यह एहसास
जब तक बना रहे
तब तक हर क्षण
पके हुए फल जैसा
बीज को समेटे
अपने आप में
पूरा का पूरा रहे।''[19]

कवयित्री का मानना है कि प्रेम ही जीवन है और जीवन ही प्रेम है यह ऐसी भावना है जो मानसिक शांति और संतोष प्रदान करती है। कवयित्री ऐसे शांति से पूर्ण मन की भावना को भावुक होते मन से कवयित्री प्रेमी कहती है–

''तुम्हारा प्रेम
मुझे एक छाँह भरी
पगडण्डी की याद दिलाता है।.....
एक रंगीन महक
भीगी मिट्टी से निकलकर
फूलों में
हवाओं में
भर गयी है...।''[20].

प्रेम ने जब वियोग की अवस्था आती है तो वेदना का आभास होता है और यही वेदना मन को गहराई तक झकझोर देती है। व्यक्ति अकेलापन महसूस करने लगता है। लेकिन कवयित्री ऐसे समय में प्रकृति को अपना दोस्त मानती है। वह स्वयं को अकेला नहीं मानती। प्रकृति को अपना हमसफर मानती हुई कहती है–

''कौन कहता है कि?
मैं इस पेड़
और घाटियों के असीम विस्तार के
बीच भी
अकेली हूँ.....
कि मेरा कोई हमसफर नही।''[21]

प्रभा खेतान ने अपनी कविताओं में प्रेम की वेदना, प्रकृति के साहचर्य के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किये वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी कविताओं में ''मॉ'' को केन्द्र बिन्दु बनाकर उनकी संवेदनशीलता को अभिव्यक्त किया। कवयित्री को अपनी मां की ममता सुख बहुत अधिक नहीं मिल पाने के कारण वह सदैव मां को याद करती है। जब उनकी मां उनके पास होती है तो वे अपनी मां को कही नहीं जाने देना चाहती क्योंकि कवयित्री अपने जीवन का सुख–दुःख मां से बॉंटना चाहती है। अपने जीवन में जिस मां की ममता से वे वंचित रही वह प्यार पाना चाहती है। कवयित्री सोचती है कि जब कभी वे स्वयं मां बनेगी तब उनकी मां का प्रेम और आत्मीय भाव वैसा ही बना रहेगा जैसा आज बना हुआ है–

''जब मैं माँ बनूँगी.....
तब भी तुम
परसी हुई थाली लिए
मेरा इंतजार कर रही होगी?''[22]

'माँ' अपने परिवार में सभी से निःस्वार्थ प्रेम करती है। वह अपने परिवार के लोगों के बीच रहकर उनके प्रति चितिंत रहती है। उनकी सम्पूर्ण संवेदना, चिंता अपनी संतान के प्रति होती है। कवयित्री जब संध्या के समय अपने घर लौटती है तो एक माँ ही बड़ी आत्मीयता से पूछती है 'कैसे हो बेटा? अपनी माँ की इसी आत्मीयता को देखकर कवयित्री का मन भर आता है और वे अपनी माँ के संबंध में कहती है–

''माँ यह कैसा चत्कार है कि
कहीं भी जाऊँ

लौट आती हूँ तुम्हारे पास
तुम्हारी परसी हुई थाली से
मेरी भूख मिटती है।''[23]

माँ सदैव अपने संतानों के लिए उम्र भर तरक्की और कुशल मंगल रहने की कामना करती है। माँ के हृदय में किसी प्रकार का कोई द्वेश नहीं होता है। वे सदैव अपनी संतानों के लिए अपने मुख से आशीश वचन बोलती है यही आशीर्वाद उनके संतानों के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा होती है।

''पोपले मुंह में
तुम्हारी जीभ घुमती है
केवल अपने बच्चों को
आशीर्वाद देने।''[24]

आज के दौर में स्त्री की जो स्थिति है उसे 'नियति' कविता के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उत्तर आधुनिककाल में जहां बाजारवाद का बोल बाला है। जहाँ स्त्री एक विज्ञापन बनकर रह गयी है और विज्ञापन के क्षेत्र में महज एक वस्तु बन गयी है। उसका अंग प्रदर्शन एवं मादक अदाएँ विज्ञापन के लिए आवष्यक है। अतः स्त्री की लज्जा, संकोच सभी नश्ट होते जा रही है। इस वास्तविक स्थिति को कवयित्री इस शब्दों में अभिव्यक्त करती है।

''उसकी जिदंगी
नियोन लाइट में
जगमगाता हुआ विज्ञापन
कुछ बनने के दौर में
वह जो बनकर सामने आई
महज एक चीज...।''[25].

इस प्रभाव से आज के दौर में एक स्त्री का विज्ञापन में दौर में मात्र एक वस्तु बनकर रह जाना कवयित्री के मन को अन्दर ही अन्दर बहुत दुःखी करता है। उनकी इस स्थिति से दुःखी होकर कवयित्री कहती है–

''इतिहास और पम्परा से मुक्त
बिल्कुल ताजा

नई–नई रेशमी साड़ी पहन
वह टंग गयी
आधुनिकता के हैंगर पर।''[26]

एक ओर सर्वहारा वर्ग की स्त्रियों का जीवन होता है वहीं दूसरी ओर धन सम्पन्न स्त्रियों का जीवन पूरी तरह दिखावे में व्यतीत होता है। वे अपने सभी शौक पूरा करना चाहती है। 'नीली का दिन' कविता ऐसी ही धन सम्पन्न स्त्रियों को चित्रित करती है उनके विलासी जीवन को अभिव्यक्त करती है–

''एक औरत ताश फेंकती है
दूसरी ताश बांटती है
तीसरी तिनके से
दाँतों में कसा
कबाब निकालती है।''[27]

प्रभा खेतान ने निम्न वर्गीय समाज के समाचारों को भी अपनी कविताओं में स्थान दिया है। एक मजदूर दिन भर मेहनत करने के बाद भी वह अपने और अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी का भी प्रबंध नहीं कर पाता है। चारों तरफ आम आदमी, मजदूर वर्ग दिन–रात मेहनत करते हुए दिखाई देते है ताकि अपनी व अपने परिवार की भूख शांत कर सकें–

''सबके सब लगे हैं जीने की तैयारी में
अविराम युद्ध चल रहा है
भूख और रोटी।''[28]

प्रभा खेतान की कविताओं में जो सर्व हारा वर्ग है वह कभी निराश नहीं होता है। वह सदैव प्रयत्नशील एवं आशावादी रहा है। समाज में ऐसे लोगों की जीजिविशा देखकर ही कवयित्री को ऊर्जा मिलती है और आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है–

''आंसू
सबके निकलते हैं।
पतझड़ के बाद बसंत की आस
एक पूरी तैयारी

हम सबकी है।
इसलिए सफेद कागजों पर
स्याह लकीरों में उभरती कविता
सिर्फ मेरी नहीं।
सबकी है।''[29]

इस प्रकार संघष के थपेड़ों को झेलते हुए इस निम्नवर्गीय तबके लिए कवयित्री के हृदय में सम्मान की भावना है। प्रभा खेतान उन सभी निम्नवर्गीय लोगों के संबंध में कहती है–

''न कहीं
तुम्हारे नाम के
पत्थर खुदे, न कोई शहर बना
न तुम्हे कोई,
विरासत में तुम रंग–रूप और गंध बन घुले हुए हो।''[30]

प्रभा जी ने प्रेम, समर्पण, आस्तित्व की पहचान, जीवन के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण, महत्वकांक्षा आदि को विशय बनाकर काव्य रचना की है।

अहल्या

प्रभा खेतान का यह काव्य संग्रह गौतम ऋशि की (उनका यह संग्रह 1988 में प्रकाशित हुआ था) पत्नी अहल्या के मिथक के आधार पर रचा गया है। यह एक लम्बी कविता है जो प्रभा खेतान की बौद्धिकता एवं संवेदना के व्यक्त करती हुई स्त्री जाग्रति की महत्वपूर्ण भूमिका को भी बताती है।

कवयित्री इस कविता के माध्यम से बताना चाहती है कि सदियों से सम्पूर्ण स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व अहल्या करती आई है। स्त्री आज भी मुक्त नहीं हो पायी है। वह सदैव पुरूषों के द्वारा छली गई, और आज भी वह पुरूष की नियति के आगे कमजोर बना दी जाती है। वह आज भी अपनी मुक्ति की आशा पुरूषों से लगाए बैठी है, वह मुक्ति हेतु सब कुछ पत्थर की भांति सहती है। इस स्थिति को देखकर कवयित्री बहुत चिंतित होती है और वह सोचती है कि स्त्री की मुक्ति

आखिर पुरूषों से ही क्यों हो सकती है। समाज में जो व्यवस्था, नियम परम्पराऐं बनायी गयी है वे सभीपुरूषों के द्वारा बनायी गयी है। इन सभी बंधनों से मुक्त होने के लिए स्त्री को स्वयं को लड़ना होगा। उसे अपनी मुक्ति के द्वार स्वयं खोलने होगें। कवयित्री स्पष्टतः कहना चाहती है कि आज की स्त्री को मुक्ति के लिए किसी राम या गौतम का सहारा न लेकर स्वयं मुक्ति के लिए तत्पर रहना होगा।

प्रभा खेतान के 'अहल्या' कविता संग्रह में 'अहल्या' का मिथक स्त्री जीवन की नियति एवं त्रासदी और उसके विद्रोह को अभिव्यंजित करता है। उन्होंने एक परिव्यक्ता स्त्री के जीवन की विडम्बनाओं को बताया है कि हमारे समाज में एक परिव्यक्ता स्त्री को किस हय दृष्टि से देखा जाता हैं, उसे किस तरह से एक कठिन जीवन जीने के लिए विवश किया जाता है। आप भी हमारा समाज गिसित होने के बाद भी पुरानी परम्पराओं को नहीं छोड़े पाया हैं।

हमारे भारतीय समाज में आज भी स्त्री की स्थिति में बहुत अधिक सुधार नहीं हुआ है। आज भीपरिव्यक्ता स्त्री के प्रति लोगों की विचारधारा एवं उनका नजरियां बहुत अच्छा नहीं होता है। समाज सही कारणों को जानने की अप्रेशा स्त्रियों का तिरस्कार करते है। उन्हें अपमानित करते हुए उनके साथ अभद्रता का व्यवहार करते है। आज भी समाज में परिव्यक्ता स्त्री का जीवन अहल्या के समान ही है जो अपने जीवन में अपने ही पति द्वारा अपमानित की गयी। कवयित्री ने अहल्या के माध्यम से एक परिव्यक्ता स्त्री के दुःखी जीवन को प्रस्तुत किया है–

''मुक्ति प्रकार से भयभीत
परित्यक्त
शिलाखण्डसी
पड़ी राह के किनारे
चाहती रही परम प्रेम का भराव।''[31]

समाज में एक परिव्यक्ता स्त्री के दुःख को समझने की अपेक्षा उस पर अनेकों गलत आरोप लगा दिये जाते है। वास्तविकता जानने की बजाए उसे नकर जैसा जीवन जीने के लिए विवश किया जाता है उसके दुःख को कोई कहीं समझता समाज में उसे भिन्न–भिन्नदृष्टि से देखा जाता है ऐसी स्थिति के संबंध कवयित्री कहती है–

''तुम्हे बचाकर
निकल जाता हर पांव
अजनबी बन जाती
हर आंख
कभी न उग पाई
हरित संवेदना की घास।''[32]

सनातन काल से ही पुरूष स्त्री के वर्चास्व को दबाए रखा है। वह स्त्री को अपने अधीन बनाए रखना चाहता है। पुरूष अपने अहम्, अपने वर्चस्व, अपनी वासना की दृष्टि के लिए स्त्रीको भोग्य मानता रहा है। स्त्री ने जब भी अपनी मुक्ति चाही उसकी मुक्ति के सभी रास्ते बंद कर दिये गये। इन्द्र के द्वारा वेश बदलकर अहल्या को धोखे से छला गया जिसमें अहल्या का किसी भी प्रकार का कोई दोश नहीं था उसके पष्चात् भी गौतम ऋशि अपनी पत्नी परविश्वास नाहीं करके उसे दण्डित करते है और दण्ड स्वरूप उसे श्राप देते है। बिना कोई अपराध किये अहल्या परित्यक्त का जीवन जीने के लिएविश्वासहो जाती है। कवयित्री अहल्या के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए कहतीहै–

''कौन था वह पुरूष अहल्या
जो लांघकर सतीत्व की सीमा
कर गया नातीत्व का अपमान
क्या था तुम्हारी आंखों में
उनके लिए
जो डोल गया इन्द्रासन
बदल गया शरीर
नहीं पहचान सकी तुम
क्या दोश तुम्हारा था केवल?''[33]

इन्द्र के द्वारा मायावी जाल बिछाकर अहल्या को धोखा से छले जाने पर भी इन्द्र के प्रतिकिसी भी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं गयी। इन्द्र के प्रति लोगों का दृष्टिकोण बदला, इन्द्र के लिए लोगों के मन में बही श्रद्धा थी, लेकिन अहल्या पर

चरित्रहीन होने का आरोप लगा दिया गया। उसे उस अपराध की सजा दी गई जो अहल्या ने किया ही नहीं था। इस सम्बन्ध में कवयित्री कहती है–

''निष्पाप होती हुई भी तुम
कर दी गई प्रवंचित
भोक्ता के पलायन के बाद
समझ गयी तुम
पुरूष का मायावी रूप।''[34]

'अहल्या' कविता संग्रह में स्त्रीका बरसों से किये गये शोशण के प्रति विद्रोह की भावना दिखाई देती है। कविता का प्रत्येक शस्द चीख–चीख यह कहता है कि स्त्री तुम कैसे जी पायी उस अंधेरे भू–गर्भ में, क्या अब भी उस अंधेरे में ही जकड़ी रहोगी। कवयित्री स्त्री को जाग्रत करते हुए कहती है–

''पत्थरों के ऊपर पत्थर
कहाँ रूकी रह गई
तुम्हारी सांसे।
क्या अब भी
करोगी प्रतीक्षा
राम के चरणों की।''[35]

सदियों से स्त्री शोषित होती रही है, उसकी त्रस्त आत्मा पीड़ा का गहन अनुभव करती रही, किन्तु अपने हृदय में रखे अपने दर्द को वह किसी के समय नहीं कह सकी। कभी अपने मन की इच्छाओं को नहीं बता सकी। बस उसकाजीवन अपने जीवन की त्रासदियों को झेलते हुए ही बीत गया, लेकिन अपने मुझ से अपनी पीड़ा को अपने दर्द को बयां नहीं कर सकी और वही दर्द कवयित्री की कविता के शब्दों में गूंजता हुआ दिखाई देता है–

''सदियों से पड़ी हुई
सीपियों के अंधेरे जगत में तुम,
कभी नहीं समझा सकी किसी को
अपने अंतर का त्रास।''[36]

पुरूष अपने स्वार्थ, अपने अहम के समक्ष स्त्री जीवन को महत्व नहीं देता। पुरूषका स्वार्थ होता है तब तक वह स्त्री को जब तक पुरूष का भ्रमित करते हुए अलौकिक जगत की सैर कराता है। किन्तु अपने स्वार्थ की पूर्ति होते ही वह स्त्री को यथार्थ के पर लाकर छोड़ देता है उस स्थिति में एक स्त्री, की जो मनोदशा होती है उसी मनोदशा को कवयित्री कविता के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयात्न करती है–

''तुम्हे क्या पता
कब कौन–सा रूप धरेगा पुरूष?
कब बनेगा प्रेमी से पति
सहायक होगा सृजन में
और कब बन जायेगा
हृदय हीन दण्ड विधायक?''[37]

स्त्री अपने जीवन में एक के बाद प्रताड़ना सहन करती रहती है जिसके कारण उसका जीवन ही नीरसहो जाता है। प्रेमिका से पत्नी और पत्नी से परिव्यक्ता तक का सफर उसके जीवन को जड़ता की ओर ले जाता है। उसके जीवन की यही जड़ता सदियों से उसके जीवन को जकड़ती चली आयी–

''हाय! शाप ग्रस्ता ऋषि–पत्नी
फिर भी खोजनी पड़ी तुम्हें मुक्ति
पुरूष के ही चरणों में
जाग्रती रही अकेली
जागते रहे तारा–मंडल, लेकिन कब मिल पाई
स्त्री को मुक्ति
तुम्हारे पथराए–मन से?''[38]

युग–युग से स्थितिग्रस्त, अभिशप्त स्त्री से उसकी इस दशा का कारण पूछने के लिए कवयित्री का मन व्याकुल हो उठता है वह बार–बार यही सोचती है कि स्त्री अपने आस्तित्व को क्यों भूल जाती है? क्यों वह इस समाज की दकिया नुसी स्त्री नियमों, विचारधाराओं को सहती है?क्यों अपने आत्म सम्मान के लिए खड़ी नहीं

होती। यदि स्त्री ही अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो जाए तो उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं हैं।

कवयित्री जहां एक ओर सदियोंसे झेलती आ रही स्त्री की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है वहीं दूसरी ओर स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत करने के लिए कोशिश करती है। कवयित्री स्त्रियों की दशा को देकर अत्यंत व्याकुल हो जाती है और पूछती है–

''भूल बैठी उर्वरता अस्तित्व की
हीन क्यों हो गई
प्रतिवाद के स्वत्व से?
मुक्त नयन देखो तुम
क्षितीज पर
उगते हुए
हरे मेघों के जंगल को।
मुमकिन है
बौराया हो
तुम्हारा ही आतुर मन
धरती पर बरसने को।''[39]

सदैव पुरूष की सत्ता को स्वीकार करते हुए अपने जीवन का दमन करने वाली स्त्रियों के प्रति कवयित्री का मन बैचेन हो जाता है वे उन्हें जाग्रत करना चाहती है, वे उन्हें अपने अधिकारों के प्रति लडने के लिए प्रेरित करती है, अपना अस्तित्व को स्थापित करने के लिए प्रेरित करती है कवयित्री ऐसी स्त्रियों को मौन रहने के लिए मना करती है–

''ओ गहो सागर की हलचल!
हर क्षण
बनती–मिटती
चंचलता
तंतुओं की
हरित–श्यामल उर्वरा

कैसे स्वीकारोगी
शब्दों का शाप?
स्थावर व्यवस्था का पाप?''[40]

अहल्या को संबोधित करती हुई कवयित्री स्त्री को अंधेरे जगत से निकाल कर रोशनी में आने के लिए पुकारती है–

''एक अनंत एहसास
समर्पिता में
पुकार रही
ओ, मेरी अस्मिता
मेरी आत्मजा
कहां भटक गयी तुम
अंधेरी अवचेतन गुफाओं में?''[41]

स्त्री उत्पीडन में अहल्या से लेकर आज की स्त्री तक उनकी स्थिति में बहुत अधिक बदलाव नहीं आये हैं। उन्हें स्वयं अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न करना होगा। उनकी मुक्ति के लिए कोई अन्य प्रयत्न नहीं करेगा। स्त्री स्वयं अपनी मुक्ति पाने में समर्थ है। प्रभा खेतान इस संबंध में कहती है–

''उठो
मेरे साथ
मेरी बहन
छोड़ दो
किसी और से मिली मुक्ति का मोह।
तोड़ दो, श्राप ग्रसता की कारा।
तुम अपना उत्तर स्वयं हो अहल्या।
ग्रहण करो,
वरण की स्वतंत्रता।''[42]

मुक्ति कभी किसी के द्वारा नहीं दी जाती है मुक्ति के लिए स्वयं को ही प्रयत्न करना पड़ता है। प्रभा खेतान इस संबंध में मानती है कि स्वयं के प्रयासों से मिली मुक्ति ही सुखदायक होती है।

''मुक्ति मिली कहाँ मुझे? या किसी और के देने से मुक्ति मिल जाती है। मैं आज भी अपने को खोज रही हूँ। आज भी अपनी पत्थर होती चेतना से पूछती हूँ अपना अपराध। तेरे जैसीं हजारों–लाखों को क्यों आज भी इसी त्रासदी से बार–बार गुजरना पड़ता है। क्या है वह स्थितिग्रस्ता, राह किनारे के पत्थर की अपने आप में बन्दिनी प्रतीक्षा करती हुई, शायद कभी कोई राम आए और उसके चरणों को छू कर लेने से जीवन कृत कृत्य हो जाए। ये सारे विधान पुरूष ने क्यों बनाये? किसी ने कभी हमसे क्यों नहीं पूछा कि हम क्या चाहती है?''[43]

काव्य में अहल्या के जीवन को त्रासदी बताते हुए आज की स्त्री को जाग्रत करना चाहती है कि जब स्त्री अपने अस्तित्व एवं अपनी अभिव्यक्ति के प्रति जाग्रत होगी, तभी एक नई संस्कृति का प्रारंभ होगा जिसमें स्त्री रूढ़ियों अयोग्य परम्पराओं से मुक्त होकर एक जीवन संस्कृति का निर्माण करेंगी–

''जब
जब तुम
आंख खोलोगी, अहल्या।
सच मानो, मेरी बहन।
उसी वक्त खुलकर
खिलने लगेगी
नई संस्कृति की पंखुडियाँ।''[44]

एक ओर आकाश की खोज में

सन् 1985 में प्रकाशित इस काव्य संग्रह में कुल 53 कविताएँ संकलित है। इस काव्य संग्रह की अधिकांश कविताएँ उनके वैचारिक एवं दर्शनिक चितंन को अभिव्यंजित करती है। पारिवारिक संवेदनाओं को उभारने वाली कविताओं मे 'माँ' ने कहा 'पंख उछालती तितलियॉ फूलों पर पत्तों पर' उल्लेखनीय हैं। इस कविता संग्रह में सर्वाधिक प्रेम की भावना अभिव्यंजित हुई है। इस प्रेम में कसक, टीस से उत्पन्न वेदना अन्तर्निहित है। उनकी प्रेम विशयक कविताओं में 'तुम्हारी प्रेम भरी आंखों' मैंने अपने को तुम आये, तुम गये आदि कविताएँ उल्लेखनीय है। प्रकृति के साथ अपने भावनात्मक संबंधों को प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही नगरीय बोध का यथार्थ भी प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

व्यक्ति के जीवन में प्रेम का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है स्त्री और पुरूष का पारस्परिक आकर्शण ही प्रेम है प्रेमिका अपने प्रेम के प्रति गंभीर है और आत्म निवेदन करती है कि–

''तुम्हारी प्रेम भरी आँखें
मुझे खोजती हुई
मेरी आंखों में विश्राम लेती है।
और हम दोनों के बीच ठहरा हुआ वक्त
बस एक तिनके की दूरी सा
पर प्यारा उठता है।''[45]

प्रेमिका को अपने अपने प्रेमी का सामीप्य तब आवष्यक प्रतीत होता है जबवह उदास हो। उस की उदासी को बांटने के लिए अपने प्रिय के अलावा कौन हो सकता है? अंतरंग मित्र तो वही है, जो दुःख का संगी–साथी हो। अतः वह अपने प्रिय से यही अपेक्षा करती है कि तुम अभी मेरे पास मत आना क्योंकि अभी तो जीवन में सतरंगी किरणें नृत्य कर रही है, जीवन पथ फूलों से महक रहा है, अभी तो मित्र है गज़ल है ठहाकें है, परन्तु जब यह कुछ भी नहीं रहेगा और मैं उदास हो जाऊंगी तब तुम्हारा –

''आना मेरे लिए सुख प्रद होगा–
एक आदमी....रात के भोजन के साथ
कोई परोस दे मेरी प्लेट में
तब मेरे प्यार तुम आना
मेरे साथ रोठी बांटकर खाना।''[46]

एक प्रेमिका अपने प्रिय के साथ के लिए सदैव लालायित रहती है। उसने इस प्रेम भाव में अकेलेपन की मुक्ति की कामना होती है। कवयित्री ने 'जब मैं छोटी थी' कविता मैं प्रेम में निहित मोहक भाव की और संकेत किया है। वे मानती हैं कि प्रेम चट्टान के समान दृढ़ होता है प्रेम एक मौन स्वीकृति है–

''तुम्हारी हर बात
छोटी या बड़ी
प्रेम भरी, दुलार भरी
एक दृष्टि कोई हल्का सा स्पर्श...
सब कुछ मुझे, मेरे अकेलेपन को
विस्मित किए रहता है।''[47]

प्रेम भाव से प्राप्त होने वाले मानसिक आनंद को बताती हुई प्रेमिका को प्रेमी की उपस्थिति एक मानसिक संतुश्टि प्रदान करता है। उसके मन को शांति और सुकुन प्रदान करता है।

''तुम कहीं भी रहो
शहर के किसी भी कोने में
बस हमारा प्रेम
एक मौन स्वीकृति बन रहता है।''[48]

प्रेम की उदात्तता यही है कि प्रिय की हर बात प्रेम भरी, हर दृष्टि दुलारभरी और उसके हल्के से स्पर्श की स्मृति अकेलेपन को भर देती है।

एक तरफ कवयित्री ने जहॉ स्त्री के मन की उसके प्रेम की भावना को अभिव्यक्त किया है वहीं दूसरी और उन्होंने पुरूष की मानसिकता को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्त्री की महानता एवं उदात्तता उसके समर्पण भाव से ही

परिलक्षित होती है। वह भावनाशील है। दूसरी और पुरूष अपना वर्चस्व स्थापित करता हुआ है उसे दासी और भोग्या के रूप में देखता है। स्त्री जीवन की इस त्रासदी को कवयित्री ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–

''मैंने अपने को
पहनाया तुम्हारे पाँवों में
जूती बन
बिछी बिस्तरे पर चादर बन,
कभी टंगी खूंटी पर
तुम्हारा मुखौटा बन
मैं बनी वस्तु
तुम रहे भोक्ता''[49]

कवयित्री की 'पंख उछालती तितलियाँ फूल पर पत्तों पर' कविता में एक वृद्धा की मानसिकता का चित्रण किया है। राम–नाम की माला जपती हुई उसने यह उम्मीद छोड़ दी है कि उसका पुत्र लौटकर उसके पास आयेगा। उसने नियति के विधान को समझ लिया है। यह यथार्थ है कि वर्शा की पहली बूंदों के साथ बीज अंकुरित होते हैं। कालांतर में वृद्धा का रूप धारण कर लेते है। समय के साथ उनकी भी टहनियाँ टूटती है। पत्ते झड़ते हैं। यही स्थिति परिवार की होती है। वह वृद्धा इस निश्कर्श पर पहुॅचती है कि स्त्री के लिए राम–राम जपने से अधिक महत्त्व रोटी'–पानी का होता हैं उसके लिए पारिवारिक जीवन ही सर्वोपरि है–

''राम–नाम रटने से
क्या कोई मतलब है।
इस माला को जपने से
जिसके एक–एक मणियें में
बस औरत का वहीं–वहीं जीवन
चौका–चूल्हा, रोटी–पानी... ।''[50]

कवयित्री अपनी मां से बहुत अधिक प्रेम करती है उनकी माँ अपनी संतान के प्रति स्नेह मयी है। इसी कारण उनकी मां चिंतित रहती है। वह अपनी संतान के स्वास्थ्य को लेकर सजग रहती है–

''माँ ने कहा
बेटा बाहर मत जाओं
कल रात, पहाड़ों पर बर्फ गिरी है,
ठण्ड लगेगी।''[51]

प्रभा खेतान ने अपने इस कविता संग्रह में कविताओं के माध्यम से प्रेम की अभिव्यक्ति की है, उसी भांति उन्होंने मनुष्य को अपने जीवन में सदैव कर्मरत रहने के लिए कहा है जीवन में सभी वे साथ मधुर संबंध बनाते हुए अपने जीवन में सदैव कर्म करते रहने की बात कही है।

व्यक्ति अपने जीवन में भविश्य के स्वर्णिम स्वप्न बुनता है, परन्तु वे ढह जाते हैं। इसी सच्चाई को कवयित्री ''मैंने हवाओं से कहा' में चिड़ियों के माध्यम से व्यक्त किया है। एक चिड़ियाँ लताओं के जाल में वृक्ष पर बैठी घर विहिन चाँद को टक–टकी बांधे देख रही हैं। वह यही बता रही है कि–

''कैसे प्यार आहिस्ते–आहिस्ते
अंधेरे में बदल जाता हैं
कैसे रचा–बसा घोंसला
घना जंगल हो जाता है।''[52]

मनुष्य को अपने जीवन में सदैव अपने नाते–रिष्तों को सहेज कर रखना चाहिए यदि आपसी मतभेद होता है तो उन्हें दूर करना चाहिए। यही एक मनुष्य के जीवन का श्रेय होना चाहिए। ताकि जीवन सरल और सहन बन सके–

''तह किये रिश्तों को
अलमारी से निकाल
धूप दिखानी है,
मनमुटाव की सलवटों पर
फिर से लोहा करना है।''[53]

हमारी भारतीय संस्कृति मनुष्य को नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को अपनाने के लिए एवं अपने जीवन में सत्य के मार्ग पर चलते हुए निरन्तर कर्म करते रहने का संदेश देती है–

''जीवन के जंगल में
काल वह कुल्हाड़ी
जिसकी ध्वनि
स्पंदित होती
लकड़ी के रेशे–रेशे में।''[54]

भारतीय मनीषियों ने कर्मवाद के सिद्धांत को जीवन का श्रेय माना है। अपने व्यक्तित्व के विकास के साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय उन्नयन में मर्म के सिद्धांत की अहम् भूमिका होती है। व्यक्ति प्रयत्नवादी होता है। कर्म ही उसकी प्रेरणा है। कर्म ही धर्म है, के आदर्श का निर्वाह करते हुए वह जीवन व्यतीत करता है। उसके अथक श्रम को दृष्टिपथ में रखते हुए कवयित्री लिखती है कि–

''अपने ही पसीने की
गंध में नहाई हुई
धूप भरी चिपचिपी
आदमी की देह
थकी हुई भी
घिसटती रहती.....
कुछ न कुछ करने को।''[55]

प्रभा खेतान केवल व्यक्ति के परिश्रम और प्रयत्न का गुणगान नहीं करती हैं अपितु स्वयं भी कर्मवाद को अपने जीवन में आत्मसात करती है। जैसा कि उन्होंने लिखा है–''मैं उनके कर्मो की साथी नहीं उनमें से एक हूँ।''[56]

कर्म की प्रेरणा व्यक्ति के आशावाद पर निर्भर है। उसमें कर्म के प्रति विश्वसनीयता होनी चाहिए तभी वह चरैवेति चरैवेति के संदेश को अपनाते हुए जीवन–यापन कर सकता है–

''आज भी फैला है आस्था ओर विश्वास
आज भी चलते है आदमी के
अभिमानी दो पांव।''[57]

हुस्न बानों और अन्य कविताएँ

प्रभा खेतान के इस कविता संग्रह का प्रकाशन सन् 1987 में हुआ था जिसमें 29 कविताएँ है। यह कविता हुस्ना नामक लड़की के जीवन की आशा आकांक्षाओं पर आधारित हैं। हुस्नों के पिता एक गरीब व्यक्ति हैं जो कारीगर है। दूसरों के मकान बनाने वाला स्वयं बेघरहै यही उसकी सबसे बड़ी त्रासदी है। हुस्ना हमेशा यही सोचती है कि कभी उसका अपना घर भी होगा।

नगरीय जीवन की यह नियति है कि यहाँ भीड़ में रहते हुए भी मनुष्य अकेला है इस कविता संग्रह में एक गरीब लड़की हुस्ना की आकांक्षाओं को बखूबी प्रस्तुत किया है। साथ ही जेनी के नगरीय जीवन के अकेलेपन को भी दिखाया है। इस कविता संग्रह के संबंध में डॉ. उषा कीर्ति राणाावत लिखती हैंः–

''रसोई रोटी, भूख की आग परियों की कहानी, मां की गोंद उसकी आत्मीयता, घर की तलाश, प्रेम से उत्पन्न विसंगतियाँ अजनबीपन जंगल, समुद्र इत्यादि सारी समस्याओं की संवेदनाओं को लेकर रचित इन कविताओं की शीर्शक वाली हुस्ना अपनी गरीबी, अभावों में घर ढूँढ रही है तो दूसरी तरफ श्रीमती गुप्ता वैभव पूर्ण जीवन में अकेलेपन की त्रासदी में तिल–तिल कर जी रही है।''[58]

कवयित्री नगरीय बोध का यथार्थ उनकी कविता 'आकाश में उड़ान भरता हुआ, मेरे शहर में स्थानाभाव के कारण में प्रतिबिम्बत हुआ है।

यदि गरीब, मजदूर परिवार की स्थिति को देखा जाए तो उन्हें दो वक्त का भोजन भी नसीब नहीं हो पाता है। दिन–रात मेहनत मजदूरी करने के पश्चात अपना एवं अपने परिवार का पालन–पोशण कर पाते है। इसके अतिरिक्त इन्हें मजदूरी बस दूसरे देशों में जाकर करनी पड़ती है। क्योंकि अन्य देशों में काम का वेतन अधिक मिल पाता है। इसी वजह से लोग एक स्थान से पलायन करके दूसरे देशों में चले जाते हैं। हुस्ना भी एक गरीब परिवार की बेटी है और उसके पिता भी अपने परिवार के लिए दुबई चले गये है। हुस्ना इस बात को जानती है अपनी बात इन शब्दों मे कहते हैं–

''हाँ नानी
जानती हो तुम

अब्बा गये हैं दुबई
शाहों का घर बनाने
अब्बा गए है मोटी तनखा पर
गारा चूना ढ़ोने
अब्बा गए है हवाई जहाज से।''[59]

हमारे भारतीय समाज के गरीब मजदूरी की त्रासदी यह है कि वे दूसरों के घरों का निर्माण करते है किन्तु उनके पास स्वयं का घर नहीं होता है। उनके पास रहने के लिए स्वयं का कोई पक्का घर नहीं होता है। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो जाती है और उनकी इस स्थिति पर कोई ध्यान नहीं देता है। हुस्ना भी अपना एक घर चाहती है जिसमें वह अपने परिवार के साथ रह सकें। वह बालिका अपनी मां से प्रश्न करती है–

''अम्मी तुम क्यों नहीं बना देती
एक ऐसा छोटा सा घर
जिसमें मोहसिन
हम और तुम रह सकेंगे।''[60]

इस संसार में मनुष्य को सबसे अधिक सुकुन अपने घर में ही मिलता है। वह अपने घर में रहकर अपने परिवार के साथ रहता है और सुकुन महसूस करता है। हुस्ना भी एक ऐसे ही छोटे से घर का सपना देखती है। और कहती है–

''अपना घर
थकता हुआ आदमी
बैठना चाहेगा कहीं
दुःखती हुई पीठ
टेक चाहेगी कहीं।''[61]

प्रभा खेतान ने अपने इस काव्य संग्रह में गरीब मजदूर की वेदना को अभिव्यक्त करते हुए एक ऐसी स्त्री की संवेदना को भी अभिव्यक्त किया है जो दूसरों के घरों में नौकरानी के रूप में काम करती है और छोटी–छोटी गलतियाँ होने पर अपना अपमान होने पर भी मजबूरी में चुप रहती है। रत्ना एक ऐसा पात्र है जिसके माध्यम से प्रभा खेतान ने एक स्त्री की संवेदना को अभिव्यक्ति दी है।

रत्ना जो आर्थिक स्थिति से मजबूत नहीं होने के कारण दूसरों के घरों में काम करती है एवं अपने परिवार का भरण–पोशण करती है। काफी समय से रत्ना को कोई काम ना मिलने से वह बहुत दुःखी हो जाती है और अंत में एक घर में काम मिलने पर वह बहुत खुश हो जाती है और अपनी खुशी अभिव्यक्त करते हुए कहती है–

''रत्ना खुशहै नौकारी पाकर
डेढ़ सौ रूपये की तनखा पाकर
बहुत दिन बाद मिली है नौकरी
पूरे साढ़े तीन महिने भटकते–भटकते
न जाने कितने घर खोजते–खोजते
मिली है ऐसी नौकरी।''[62]

रत्ना आर्थिक रूप से मजबूत नही ंके कारण अपने मालकिन की डाँट–डपट सुनती रहती है। इसके पश्चात भी वह पूरा प्रयत्न करती है कि घर के मालिक मालकिन खुश रहे और उसे नौकरी से ना निकाले। अपनी मालकिन को सदैव शांत रखने के लिए रत्ना बहुत अधिक मेहनत करती है और अपनी मालकिन से कहती है।

''देर हो गयी मेम साहब
अभी सलटाती हूँ काम
बनाती हूँ चाय
उठाती हूँ बिस्तर
बाबा को भी संम्भाल लूंगी मेम साब
आप न करें फिकर।''[63]

प्रभा खेतान ने अपने काव्य संग्रह की एक कविता 'बड़ी अच्छी मेम साबह' के माध्यम से एक ओर पूँजीपति वर्ग का महिलाओं की संवेदनाओं को व्यक्त किया है वहीं दूसरी ओर आर्थिक रूप से कमजोर स्त्री की संवेदना को प्रस्तुत किया है। पूंजीपति वर्ग की महिलाऐं आर्थिक रूप से सम्पन्न होती है इसी कारण वे अपने घर में आराम की जिदंगी जीना चाहती है और अपने घर में काम के लिए नौकरानियाँ रखती है। किन्तु आर्थिक रूप से कमजोर महिलाएँ ये सब नहीं कर पाती हैं और

विवश होकर उन्हें दूसरों के घरों में काम करना पड़ता है और अनेक प्रकार की डाँट–फटकार सुननी पड़ती है। रत्ना जहाँ काम करती है वहां अपनी मालकिन सेबार–बार उसे डाँट सुननी पड़ती है। एक काँच का फूलदान रत्ना के हाथों से टूट जाने पर मालकिन द्वारा अपमानित होना पड़ता है–

''तेरा तो नहीं लगा पैसा नहीं।
मेरे यहाँ तेरा निभाव नहीं
पता नहीं कैसी मनहूस तू
कोई सऊर नहीं
किया न नुकसान सुबह–सुबह ?
कितनी भी करूँ गाली–गलौज
क्या वापस जुड़ जायेगा फूलदान?''[64]

यह स्थिति केवल रत्ना की नहीं है अपितु ऐसी हजारों महिलाएँ है। जो अपने आर्थिक रूप से दुर्बल होने के कारण अपमान सहती है। आर्थिक रूप से दुर्बल होने के कारण उनका शोशण किया जाता है। रत्ना भी दिन–रात मेहनत करती है लेकिन अपनी मालकिन को खुश नहीं कर पाती और कहती है–

''ऐसा क्यों
मालकिन का बाघिन गुस्सा
मुझे क्यों बना जाता है बकरी।''[65]

प्रभा खेतान ने अपने काव्य संग्रह में एक ओर आर्थिक रूप से कमजोर स्त्री की वेदना को प्रस्तुत किया है वही दूसरी ओर उन्होंने एक स्त्री के मां के रूप को भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने एक मां की संवेदना को प्रस्तुत करते हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि एक मां अपने बच्चों के भरण–पोशण के लिए दिन–रात मेहनत कर सकती है। वह सदैव अपनी संतान को खुश देखना चाहती है। हुस्ना की मां जो अपने पति के दुबई–चले जने के बाद अकेले अपने परिवार की जिम्मेदारी निभाती है। अपनी मां की इस विवशता को हुस्ना अपने शब्दों में व्यक्त करती है–

''खाली सपनों के सहारे
अम्मी घासीटती दिन

सो लेती रात
सह लेती इतना बोझ।''[66]

एक स्त्री अपने जीवन में अनेक रूपों में अपनी जिम्मेदारियाँ निभाती हैं, रिष्ते निभाती है। लेकिन इन सभी के बीच वह यह भूल जाती है कि वह स्वयं कौन है?

''वह बनना चाहती है।
अच्छी प्रेमिका
वह बनना चाहती
आज्ञाकारिणी पत्नी
वह बनना चाहती
हमेशा प्यार करती मां
वह बनी रहना चाहती
पापा की सबसे प्यारी बिटिया
लेकिन राह चलते
अचानक कोई पूछता तुम कौन?
अपने बारे में उत्तर देती हुई सोचती
मैं कौन?''[67]

एक स्त्री अपने जीवन में भिन्न–भिन्न रूप में अपनी सभी भूमिकाएं बखूबी निभाती है लेकिन इन सभी के बीच वह स्वयं अपना वजूद भूल जाती है कि वह स्वयं कौन है? प्रभा खेतान ने इस काव्य संग्रह में 'हुस्ना' जो एक छोटी बालिका है और एक छोटे से घर का सपना देखती है जिसमें वह अपने परिवार के साथ रह सकें। वह जानती है कि उसके पिता बाहर दुबई पैसा कमाने के लिए गये है और मां आर्थिक तंगी में भी परिवार संभाल रही है। हुस्ना अपनी सभी परिस्थितियों को भली–भांति जानती है इसके बावजूद भी वह अपने जीवन में हताश नहीं है। वह सपने देखती है और जीवन जीना–चाहती है। प्रभा खेतान हुस्ना के माध्यम से इसी सत्य को उजागर करने का प्रयत्न करती है कि दुःख के बाद सुख जरूर आता है और मनुष्य को अपने जीवन में कभी निराश–हताश नहीं होना चाहिए।

सुख–दुःख प्रकृति का नियम है और यह क्रम सदैव चलता रहेगा। मनुष्य को सुख के साथ दुःख में कभी निराश नहीं होना चाहिए। कवयित्री सही संदेश देना चाहती है–

''उधर देखो
लाल चमकता हुआ घर
उगा हुआ पूरब में
चला आ रहा पंख पसारे।''

कृष्ण धर्मा मैं

सन् 1986 में प्रकाशित काव्य कृति 'कृष्णधर्मा मैं' प्रभा खेतान की लंबी कविता है। यह कविता मानसिक परिपक्वता को दर्शाती है। उनका मानना था कि कविता किसी इच्छा के साथ नहीं लिखी जाती है और न ही उत्पन्न की जाती है, उसके बीज तो ह्रदय के किसी कोने में स्वतः निर्मित होते हैं और वही अंकुरित होकर बाहर आने को आतुर रहते हैं। अपनी इस कविता की भूमिका में प्रभा खेतान लिखती है–"यह कविता खुद–ब–खुद टुकड़े–टुकड़े में कलम के सहारे कागज पर उतरती चली गई। किसी मेहती प्रेरणा के रूप में नहीं, यह कोई अमूर्त धारणा भी नहीं थी यह तो अपने समूचे अस्तित्व के साथ सफेद कागज पर उभरती हुई एक बिल्कुल ठोस कविता थी।''[68]

प्रभा खेतान ने अपने इस काव्य संग्रह में कृष्ण के मिथक को ग्रहण किया है और स्वयं कृष्णमय होकर कविता के पन्नों पर उभरी है। उन्होंने कृष्ण को आधार बनाकर समसामयिक जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत किया है। कृष्ण ने इतिहास पुरुष बनने के लिए साम– दाम –दंड–भेद की नीति को अपनाकर महाभारत के युद्ध के स्वरूप को बदल दिया था उसी भांति प्रभा खेतान मनुष्य के जीवन को महाभारत का युद्ध क्षेत्र मानती है और जीवन में सफलता प्राप्ति के लिए कृष्ण की नीतियों को अपनाने के पक्ष में दिखाई देती हैं। कविता की भूमिका में लेखिका इस बात को स्पश्ट रूप में कहती हैं –"पूरी रचना के दौरान मैं आज की चुनौतियों के बीच अपने को कृष्ण की साझीदार पाती रही हूं। हास–अल्लाह के

क्षणों से लेकर महाभारत के महासंहार तक के प्रकरणों के बीच, केली– कुंजो से लेकर प्रभास– तीर्थ तक की रचना यात्रा के बीच। शायद साझेदारी के इस एहसास ने ही कथा सूत्रों से बचाकर चेतना के स्तर पर इसमें से जोड़ा है, कृष्ण धर्मा बनाया है।''[69]

कवयित्री स्वयं को कृष्ण का साझेदार मानती है। कवयित्री इतिहास निर्माण में अपनी साझेदारी कृष्ण के बराबर मानते हुए कहती हैं–

''तुम कौन कृष्ण
और मैं कौन
तुम्हारी विराट् चेतना
और मेरी व्यक्ति चेतना
इतिहास तो हमारे साझे का क्षेत्र है।''[70]

कवयित्री कृष्ण से बार–बार आग्रह करती है कि तुम युगों–युगों तक अवतार लेते रहो ताकि इस संसार में आम आदमी अपना जीवन जी सके। जिस भांति महाभारत का युद्ध शत्रुओं के घात–प्रतिघातों का साक्षी है। उसी भांति आज का व्यवसायी युग भी व्यवसायिक शत्रुओं के ईर्ष्या–द्वेष से उत्पीड़ित है। उसकी स्थिति उस अभिमन्यु के समान ही है जो चक्रव्यूह के जाल में फंस जाने पर निकल नहीं पाता। आज के आम आदमी की स्थिति भी उसी अभिमन्यु के समान है क्योंकि आम आदमी भी अपने जीवन में सर्वोच्च होने की आकांक्षा रखता है और इस युग के व्यवसाय के मोह के जाल में फंस जाता है और उसे मुक्त नहीं हो पाता । स्वयं कवयित्री भी व्यवसायिक शत्रुओं के जाल से नहीं बच पाई । वह भी समाज में व्याप्त ईर्ष्या–द्वेष की शिकार हुई है और अपने जीवन इस जाल से बाहर निकलने के लिए लगातार प्रयत्न भी करती रही है । इस संबंध में स्वयं कवयित्री कहती हैं–

"लगातार छटपटाती रही
अभिमन्यु की तरह
बिन्धती हुई
ईर्ष्या–द्वेष के बाणों से

हत्या व्यवसायी शत्रुओं के
घातों –प्रतिघातों से
मारी जाती रही युद्ध–रत।''[71]

'कृष्ण धर्मा मैं' काव्य संग्रह में महाभारतकालीन स्थितियों के सापेक्ष में वर्तमान परिस्थितियों को रखते हुए कवयित्री ने कृष्ण की नीतियों को अपना कर सभी यंत्रणाओं से मुक्ति पाते हुए मनुष्य की स्थिति का वर्णन किया है। इस लंबी कविता में कवयित्री वर्तमान स्थितियों में कृष्ण की लीला में स्वयं की साझेदारी महसूस करती है। उसे स्वयं पर गर्व महसूस होता है क्योंकि वह मानती है कि इतिहास निर्माण में कृष्ण के साथ–साथ उसकी भी साझेदारी रही है। उसे अपने स्त्रीत्व पर गर्व है। वह अपने अंतर्मन में कृष्ण का अस्तित्व महसूस करती है उसे कृष्ण में अपने व्यक्तित्व का आभास होता है। उसका अस्तित्व नगण्य नहीं है बल्कि इतिहास निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है। कृष्ण की भांति ऊंचाइयों को छूना चाहती है। समाज में ईर्ष्या–द्वेष समाप्त करते हुए प्रेम, विश्वास पैदा करना चाहती है। वह एक ऐसी सृष्टि के निर्माण के पक्ष में है जहां किसी प्रकार का कोई द्वेश नहीं हो, सभी जगह प्रेम हो। उसे विश्वास है कि वह बिना कृष्ण के सहयोग के भी उनके बराबर ऊंचाइयों को छू सकती है–

"न मैं तुम
न मैं तत्व मसि
न मैं इतनी नगण्य
कि रोक दूं
तुम्हारी ऊंचाइयों की ओर अपनी यात्रा।''[72]

इस कविता में कवयित्री स्त्री अस्तित्व के प्रति सचेत है । वह अपने अस्तित्व को भी कभी नहीं भूलती और स्वयं को कृष्ण के समानांतर खड़ा करती है । वह स्वयं को कृष्ण से किसी भी स्थिति में कम नहीं आंकती। संसार की सभी वस्तुएं नश्वर है कवयित्री भी इस बात को जानती है इसीलिए वह स्वयं के शरीर को नश्वर समझती है और कृष्ण के शरीर को भी नश्वर समझती है। कवयित्री का मानना है कि इतिहास निर्माण के लिए कृष्ण को भी मानव देह धारण करनी पड़ी

थी। मानव शरीर की अपनी एक सीमा होती है। हमारा यह शरीर नश्वर है इसीलिए मृत्यु की गहन पीड़ा से भी गुजारना पड़ता है। इस संबंध में कवयित्री कहती हैं –

" देव ! बार बार पहुंची मैं
तुम्हारे पास पूजा
अर्घ्य समर्पण के साथ
लौटती रही
असमर्पिता
बार– बार पीती रही
अपनी ही तरह एक नश्वर आदमी को
अपने पास।"'[73]

स्त्री अपने अस्तित्व के लिए स्वयं को सक्षम बनाना चाहती है। वह पुरुष के अधीन किसी भी भांति निर्भर नहीं रहना चाहती है। महाभारत युग में द्रौपदी के चीरहरण करने वाला भी एक पुरुष ही था और रक्षा करने वाले भी कृष्ण एक पुरुष ही थे। पुरुष की यह वृत्ति कैसी है?कि एक तरफ पुरुषस्त्री के स्त्रीस्त्रीत्व को नग्न करने पर उतारू है तो वही दूसरी तरफ स्त्री के स्त्रीत्व की रक्षा करने वाला भी पुरुष ही है। यह पुरुष की वृत्ति समझना आसान नहीं है जबकि पुरुष जिसकी सृजक स्वयं स्त्री है। इस कविता में कवयित्री यह बताना चाहती है कि स्त्री स्वयं की अस्मिता बचाने, अपने अस्तित्व को बनाए रखने में स्वयं सक्षम है। अपने आत्मसम्मान के प्रति सजग स्त्रीकृष्ण की सहायता नहीं लेना चाहती है, इस संदर्भ में वह कहती हैं–

''शायद तुमने भी तो यही सोचा था, कृष्ण
भरकर स्वर में द्रौपदी की आर्तता
शर्म से छुपा लूंगी मुँह
पौरुषहीन आततायियों के सामने
नहीं किया मैंने ऐसा कुछ भी
झेलती रही क्रमशःनिवारण होने की यातना

चबाती रही दुरूख और अपमान का दर्द
बनती रही वासनाओं के खूनी स्वाद की खुराक
नहीं अनुभव कर सकी ,कृष्ण ।
यातनाओं के क्रूर सिलसिले के
खिलाफ कहीं भी
न करती हुई तुम्हारे नाम का उपयोग
जीवित हूं मैं
अपने आंसुओं के साथ
नग्नताओं के बीच
जी रही हूं मैं–एक नया क्रम।''[74]

स्त्री को स्वयं के ऊपर इतना विश्वास है कि वह अपने आत्मसम्मान, स्वाभिमान की रक्षा कर सकती है। मैं किसी की दया की मोहताज नहीं बनना चाहती वह अपने जीवन में सदैव आगे बढ़ना चाहती है। कभी रुकना नहीं चाहती और अपनी पहचान किसी की सहायता से नहीं बनाना चाहती, बल्कि अपनी पहचान स्वयं बनाना चाहती है। अपने अस्तित्व के प्रति सचेत होकर कवयित्री कहती हैं–

"अपनी पहचान
मैं स्वयं हूं
अपना आंतर
अपने एकल को पहचानती हूं मैं
चीरती हुई विशिष्टताओं का घटाटोप
दिक्काल के अनंत फैलाव में
पाती हूं आदमी की संज्ञा
दूसरे एकलो से जुड़कर ।"'[75]

प्रभा खेतान अपने इस काव्य संग्रह में महाभारत कालीन समय को मिथक के रूप में लेकर आज के युग की समस्याओं को उठाया है। उन्होंने स्त्री की यथास्थिति बताते हुए उसके दृढ़ विश्वास, आत्म–विश्वास को बताया है। इसके साथ ही कवयित्री यह भी बताना चाहती है कि मनुष्य को अपने जीवन में कभी भी

अपने मन के भीतर अहम की भावना को नहीं पालना चाहिए जिस व्यक्ति के मन में अहम 'मैं' की भावना होगी वह व्यक्ति अपनी स्वार्थ–सिद्धि के कारण कभी सफल नहीं हो सकता। साथ ही मनुष्य को ईश्वर के प्रति आस्था भी रखनी चाहिए क्योंकि आस्था रखने पर व्यक्ति को सकारात्मक ऊर्जा के साथ–साथ जीवन में आगे बढ़ने की शक्ति भी मिलती है ।

कवयित्री इस काव्यसंग्रह के माध्यम से जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करना चाहती है कि ईश्वर इस धरती के कण–कण में व्याप्त है और वह भी आम आदमी की भांति दुःख सहता है। श्री कृष्ण ने भी धरती पर सामान्य मनुष्य की भांति जन्म लेकर सारे दुःख सहे थे –

"बार–बार बनकर
एक अदना आदमी
तुम्हें ही भोगना पड़ता
आदमी होने का दर्द।"[76]

धर्म का आध्यात्मिक पक्ष है कि मनुष्य अपने अंतर्मन में निहित 'मैं' (अहम्) का त्याग करें। मानव के कल्याण हेतु ईश्वर मनुष्य के रूप में अवतार लेता है और अपने जीवन में आने वाली सभी विपत्तियों से स्वयं संघष करता है। यही आचरण मनुष्य को शक्ति प्रदान करता है। जब तक मानव अपने जीवन में संघष करता रहेगा तब तक ईश्वर मनुष्य रूप में अवतार लेकर मनुष्यों को प्रोत्साहित करते रहेंगे। कवयित्री कृष्ण से निवेदन करती हुई कहती हैं–

"तुम जानते हो कृष्ण
न कभी रुका है
इतिहास का संघर्ष
न खत्म हुई कभी
नारायण की भूमिका ।"[77]

कवयित्री का मानना है कि मानव को सदैव अहम का त्याग करते हुए जीवन में आने वाली तमाम विपत्तियों से संघष करते हुए ऊंचाइयों की ओर अग्रसर होते रहना चाहिए मनुष्य को अपने जीवन में धैर्य से काम करते हुए अपने जीवन में निर्धारित किए हुए लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना चाहिए। प्रभा खेतान के काव्य में धार्मिक आयाम बहुत कम रूप में चित्रित हुए हैं लेकिन उन्होंने अवतारवाद की

परिकल्पना को स्वीकार करते हुए मनुष्य को एक संदेश दिया है कि ईश्वर भी धरती पर मानव रूप में जन्म लेता है और सुख–दुःख भोगता है। इसीलिए मनुष्य को अपने जीवन में आने वाले संकटों से निराश नहीं होना चाहिए।

कवयित्री ने इस काव्य संग्रह में स्त्री जीवन की विडंबनाओं को भी बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। कवयित्री ने स्त्री को कमजोर रूप में नहीं अपितु एक आत्म सम्मान, दृढ़–विश्वासी वाली छवि के रूप में प्रस्तुत किया है जो जीवन के हर मोड़ पर संघष करते हुए अपने जीवन में आगे बढ़ना चाहती है। अपने स्वतंत्र जीवन में पुरुष के बराबर कदम से कदम मिलाकर चलना चाहती है। तभी तो वह कह पाती है कि इतिहास हमारे और कृष्ण के साझे का है। जितनी सृजना तुम्हारी है उससे कहीं अधिक मेरी है । यह आत्मबोध का प्रकट होना ही वास्तविक रुप में स्त्री विमर्श के सार्थक होने का प्रतीक है और इस कविता में स्त्री पथराए हुए मन से मुक्त होकर कहती हैं–

" स्वतंत्र हूं मैं प्रेम के चरम क्षणों में
नकार देने के लिए तुम्हें भी।"'[78]

संदर्भ सूची–

1. प्रभा खेतान सीढ़ियॉ चढ़ती हुई मैं की भूमिका से–पृष्ठ संख्या–8
2. 'एक ओर पहचान की भूमिका, पृ.सं–2
3. एक और पहचान– पृष्ठ संख्या–40
4. अपरिचित उजालें–भूमिका पृ.–8
5. अपरिचित उजालेः प्रभा खेतान–पृ.–10
6. अपरिचित– पृष्ठ संख्या 10
7. वही, पृ.सं –16
8. अपरिचित–पृ सं–20
9. वही, पृ.सं –21
10. वही, पृ.सं–25
11. वही, पृ.सं.–28
12. वही, पृ.सं–29
13. वही, पृ.सं–55
14. वही, पृ.सं–55
15. वही, पृ.सं–30
16. वही, पृ.सं.–32
17. वही, पृ.सं–40
18. सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं की भूमिका से पृ.सं–8
19. वही, पृ.सं – 59
20. वही, पृ.सं –15
21. वही, पृ.सं –35
22. वही, पृ.सं –52
23. वही, पृ.सं –51
24. वही, पृ.सं–50

25. वही, पृ.सं –51
26. वही, पृ.सं – 26
27. वही, पृ.स –10
28. वही, पृ.सं –11
29. वही, पृ.सं–16
30. वही, पृ.सं.–16
31. वही, पृ.सं–25
32. वही, पृ.सं–22
33. वही, पृ.सं–24
34. वही, पृ.सं–39
35. वही, पृ.सं–39
36. वही, पृ.सं –29
37. वही, पृ.सं–47
38. वही, पृ.सं –40
39. वही, पृ.सं–40
40. वही, पृ.सं–71
41. वही, पृ.सं–59
42. वही, पृ.सं ˙ –23
43. वही, पृ.सं –27
44. वही, पृ.सं .–7
45. वही, पृ.सं –72
46. एक और आकाष की खोज में–पृ.सं 05
47. एक ओर आकाष की खोज–पृ.सं–6
48. वही, पृ.सं– 42
49. वही, पृ.सं – 42

50. वही, पृ.सं –05
51. वही, पृ.सं –56
52. वही, पृ.सं – 55
53. वही, पृ.सं –26
54. वही, पृ.सं –15
55. वही, पृ.सं –2
56. वही, पृ.सं .–37
57. वही, पृ.सं –37
58. प्रभा खेतान का औपचारिक संसार–डॉ. ऊषा कीर्ति राणावत ,पृ.22–23
59. हुस्न बानो और अन्य कविताएँ, प्रभा खेतान, पृ.सं–14
60. वही, पृ.सं.–17
61. वही, पृ.सं.–17
62. वही, पृ.सं.–59
63. वही, पृ.सं.–66
64. वही, पृ.सं.–67
65. वही, पृ.सं.–19
66. वही, पृ.सं–26
67. वही, पृ.सं.–20
68. कृष्णधर्मा मैं – पृष्ठ संख्या–4
69. वही, पृ.सं–3
70. वही, पृ.सं–5
71. वही, पृ.सं–14
72. वही, पृ.सं–43
73. वही, पृ.सं–16
74. वही, पृ.सं–27

75. वही, पृ.सं–20

76. वही, पृ.सं–14

77. वही, पृ.सं–16

78. वही, पृ.सं –39

तृतीय अध्याय :

प्रभा खेतान की आत्मकथा में अभिव्यक्त स्त्री जीवन

तृतीय अध्याय

प्रभा खेतान की आत्मकथा में अभिव्यक्त स्त्री जीवन

हिंदी का आत्मकथात्मक साहित्य आधुनिक युग की देन माना जाता है। आधुनिक युग में अनेक हिंदी की गद्य विधाओं का विकास हुआ है। आत्मकथा साहित्य की अन्य गद्य विधाओं से थोड़ी भिन्न विधा है। आत्मकथा केवल आत्म प्रदर्शन की विधा नहीं है अपितु आत्मकथा आत्मनिरीक्षण, आत्मविश्लेषण तथा आत्मविकास के लिए लिखी जाती है। आत्मकथा कोई उपन्यास नहीं होती। यह उपन्यास से भिन्न होती हैं। उपन्यास में लेखक उपन्यास की कथा एवं पात्रों को कभी भी किसी भी रुप में बदल सकता है लेकिन आत्मकथा में यह संभव नहीं है। आत्मकथा हमारे जीवन का वह लेखा–जोखा होता है जो हम अपने वास्तविक जीवन में जीते हैं। आत्मकथा लिखते समय लेखक यह महसूस करता है कि रास्ता भी वह स्वयं है और मंजिल भी उसी के भीतर से गुजरती हुई पहुंचती है। आत्मकथा में कल्पना का सहारा नहीं लिया जाता। आत्मकथा यथार्थ के धरातल पर टिक कर लिखी जाती है।उपन्यास की रचना करते समय लेखक इतिहास, ऐतिहासिक तथ्य आदि तत्वों का सहारा ले सकता है किंतु आत्मकथा में लेखक किसी भी प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों का सहारा नहीं ले सकता। आत्मकथा में लेखक किसी भी प्रकार की काल्पनिक घटनाओं को शामिल नहीं कर सकता क्योंकि आत्मकथा लेखक के भोगे हुए जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करती है।आत्मकथा अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न है इस संबंध में रमणिका गुप्ता का मानना है कि "आत्मकथा दूसरी विधाओं से भिन्न है चूंकि यह सत्य अनुभवों पर आधारित होती है। इसमें परिस्थितियां बनाई नहीं जाती बल्कि परिस्थितियों का दस्तावेजीकरण होता है जिनसे स्वतः निष्कर्ष निकलते हैं, आत्मकथाओं में प्रायःनिष्कर्ष दर्ज नहीं होते ।''[1]

आत्मकथा एक ऐसी विधा है जिसमें लेखक अपने जीवन के यथार्थ को बिना किसी कल्पना का सहारा लिए बयां करता है। आत्मकथा लिखना अपने आप में एक बहुत साहसिक कार्य है प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के सच को बयां नहीं कर सकता। आत्मकथा के माध्यम से लेखक अपने जीवन के यथार्थ को लिपिबद्ध कर साहित्यिक विधा के रुप में प्रस्तुत करता है इस संबंध में पंकज चतुर्वेदी का मानना

है कि "साहित्य में आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जिसे हर हाल में जीवन वास्तव के अधीन रहना होता है। जिस तरह एक नैसर्गिक जिंदगी का पहले से सोचा समझा कोई शिल्प नहीं हो सकता उसी तरह उसको जीने की कोई सुनिश्चित कला भी नहीं हो सकती।वहां अप्रत्याशित परिस्थितियों से सीधी मुठभेड़ होती है, जिसमें सीखे हुए दांव–पेंच बराबर बेकार जा सकते है।'"[2]

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार आत्मकथा–"आत्मकथा के अपने जीवन से सम्बद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव है।'"[3]

हिंदी में मूलतः आत्मकथा का प्रारंभ 1641 बनारसी दास जैन की आत्मकथा 'अर्धकथानक' से माना जाता है। जो पद्य में लिखी गयी आत्मकथा थी। गद्य में आत्मकथा का प्रारंभ भारतेन्दु की आत्मकथा 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' से माना जाता है।उनके पश्चात् 1901 में अम्बिकादत्त व्यास की 'निजवृतांत', हरिवंश राय बच्चन की 'क्या भूँलू क्या याद करूं' (1969), महात्मा गाँधी,जवाहरलाल नेहरु आदि पुरूषों की आत्मकथाएं मुख्य थी। 19वीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक महिला लेखिकाओं की आत्मकथायें बहुत ही सीमित संख्या में उपलब्ध होती है क्योंकि इस दौर में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1947 के पश्चात् भारतीय समाज में बदलाव आया। महिलायें शिक्षित होने के साथ–साथ अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूक दिखाई देने लगी।उन्हें अपने अधिकारों एवं अस्तित्व का बोध हुआ। इस दौर में महिला लेखिकाओं ने साहित्य में आत्मकथाओं का लेखन प्रचुर मात्रा में किया।उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से समाज में स्त्रियों की बदलती हुई छवि को प्रस्तुत किया।

महिला लेखिकाओं द्वारा आत्मकथा लेखन का प्रारंभ बंगाल की रास सुन्दरी और दुःखिनी बाला से माना जाता है।इन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने निजी जीवन के साथ–साथ उस समय के समाज की परिस्थितियाँ एवं उस समय में महिलाओं की स्थिति का वर्णन किया है।स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अनेक महिला लेखिकाओं ने आत्मकथाएं लिखी। इस समय हिंदी क्षेत्र में ही नहीं बल्कि उर्दू, पंजाबी,बंगाली और मराठी भाषाओं में भी आत्मकथाएं लिखी गयी।

महिला लेखिकाओं में अमृता प्रीतम की 'रसीदी टिकट'(1977), कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा' (1997), मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुंडल बसै' (2002), रमणिका गुप्ता की 'हादसे'(2005), मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' (2007), प्रभा खेतान की 'अन्या से अनन्या'(2007), ममता कालिया की 'कितने शहरों में कितनी बार' (2011) आदि महिला लेखिकाएं प्रमुख है जिन्होंने अपनी आत्मकथाओं में भारतीय महिलाओं के जीवन संघर्ष को प्रस्तुत करने के साथ–साथ समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध भी किया है।

हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन में दलित महिला लेखिकाओं ने भी आत्मकथाएं लिखी है। जिनमें कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप'(1999), सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' (2011) प्रमुख है। कौशल्या बैसंत्री अपनी आत्मकथा के माध्यम से अपने जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने के साथ–साथ समाज में स्त्रियों के शोषण की मार्मिक पीड़ा को भी अभिव्यक्त करती है। वे अपनी आत्मकथा में अपनी भोगी हुई पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं कि "पुत्र, भाई, पति सब मुझसे नाराज हो सकते हैं, परंतु मुझे भी तो स्वतंत्रता चाहिए कि मैं अपनी बात समाज के सामने रख सकूं। मेरे जैसें अनुभव और भी महिलाओं को आए होंगे परंतु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती और जीवनभर घुटन में जीती है। समाज की आंखें खोलने के लिए ऐसे अनुभव सामने आने की जरूरत है।"'[4]

समकालीन महिला लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से समाज में स्त्रियों की यथास्थिति को दिखाने का प्रयत्न किया है। जिनमें प्रभा खेतान भी एक प्रमुख महिला रचनाकार हैं जिन की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन के कटु अनुभवों,संघर्षों को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में भारतीय समाज के स्त्रियों के साथ–साथ पाश्चात्य देशों की महिलाओं की स्थिति को भी अपनी आत्मकथा में बताया है। प्रभा खेतान ने अनुभव किया कि जब तक स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं होगी तब तक उस का शोषण समाप्त नहीं होगा। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद ही स्त्री अपना स्वतंत्र जीवन जी सकती है। सदियों से स्त्रियों का शोषण आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण किया

जाता रहा। उन्हें कमजोर बनाता रहा। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों को कभी महत्व नहीं दिया गया। समाज में उनका स्थान सदैव नगण्य रखा गया। स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित रखा गया, उन्हें शिक्षा प्राप्त करने से रोका गया ताकि पुरुष अपना वर्चस्व हमेशा बनाए रख सके।

प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्त्री समाज को जागृत करने का प्रयास भी करती है।उनका मानना है कि जब तक स्त्रियां स्वयं अपने अधिकारों के प्रतिजागृत नहीं होंगी, अपने शोषण का विरोध नहीं करेंगी तब तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरुषवादी मानसिकता के अधीन उनका शोषण होता रहेगा। जब तक स्त्रियां अपने अधिकारों की मांग नहीं करेंगी, अपने अस्तित्व के महत्व को नहीं पहचानेंगी तब तक स्त्रियां स्वतंत्र नहीं हो सकती। इसलिए महिलाओं का शिक्षित होना, नारी चेतना से जागृत होना बहुत आवश्यक है ताकि स्त्रियां पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ताने–बाने को तोड़ सके और अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर सके।

प्रभा खेतान ने आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर विवाह एवं परिवार जैसी संस्थाओं का विरोध किया है।वे किसी भी बंधन में बंध कर नहीं रहना चाहती। वे पतिव्रत पर प्रश्नचिन्ह लगाती हैं।प्रभा खेतान अपने जीवन में एक पत्नी के रुप में नहीं अपितु एक प्रेमिका के रूप में रहना चाहती है। प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के साथ जीवन भर बिना विवाह के रहती है यह जानते हुए भी की वह एक विवाहित पुरुष है एवं उनके बच्चें भी है।

समकालीन महिला लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से समाज में स्त्रियों की यथास्थिति को दिखाने का प्रयत्न किया है। जिनमें प्रभा खेतान भी एक प्रमुख महिला रचनाकार हैं जिन की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन के कटु अनुभवों, संघर्षों को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में भारतीय समाज की स्त्रियों के साथ–साथ पाश्चात्य देशों की महिलाओं की स्थिति को भी अपनी आत्मकथा में बताया है। प्रभा खेतान ने अनुभव किया कि जब तक स्त्री आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं होगी तब तक उस का शोषण समाप्त नहीं होगा। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद ही स्त्री अपना स्वतंत्र जीवन जी सकती है। सदियों से स्त्रियों का शोषण आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण किया

जाता रहा। उन्हें कमजोर बनाता रहा। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों को कभी महत्व नहीं दिया गया। समाज में उनका स्थान सदैव नगण्य रखा गया। स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित रखा गया, उन्हें शिक्षा प्राप्त करने से रोका गया ताकि पुरुष अपना वर्चस्व हमेशा बनाए रख सके।

प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा के माध्यम से स्त्री समाज को जागृत करने का प्रयास भी करती है। उनका मानना है कि जब तक स्त्रियां स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागृत नहीं होंगी, अपने शोषण का विरोध नहीं करेंगी तब तक पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरुषवादी मानसिकता के अधीन उनका शोषण होता रहेगा। जब तक स्त्रियां अपने अधिकारों की मांग नहीं करेंगी, अपने अस्तित्व के महत्व को नहीं पहचानेंगी तब तक स्त्रियां स्वतंत्र नहीं हो सकती। इसलिए महिलाओं का शिक्षित होना, नारी चेतना से जाग्रत होना बहुत आवश्यक है ताकि स्त्रियां पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ताने–बाने को तोड़ सके और अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर सके।

प्रभा खेतान जिस मारवाड़ी समाज में रहती थी उस समाज में स्त्रियों को कोई सम्मानजनक स्थान नहीं दिया जाता था। प्रभा खेतान स्वयं मारवाड़ी समाज से होने पर अपने परिवार एवं समाज द्वारा शोषित होती है। सदियों से स्त्रियों का शोषण पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा किया जाता रहा है । इस व्यवस्था के द्वारा स्त्रियों को समाज ने कभी पुरूषों के बराबर अधिकार नहीं दिए। उन्हें सदैव आर्थिक रूप से कमजोर बनाये रखा। आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं होने एवं स्त्री चेतना का आभाव होने के कारण स्त्रियां कभी विरोध नहीं कर पाई। स्त्री–पुरुष के लिए समाज में अलग–अलग प्रतिमान निर्धारित किये गए थे। स्त्रियों को किसी प्रकार का कोई मानवीय स्थान नहीं दिया गया था। स्त्रियों को मात्र भोग–विलास की वस्तु समझा जाता था। लेकिन 1960 के बाद समाज में बदलाव आने शुरू हुए। स्त्रियाँ स्त्री चेतना से धीरे–धीरे जागरूक होने लगी, अपने अस्तित्त्व के महत्त्व को समझने लगी। स्त्रियों ने अपने अधिकारों के प्रति विद्रोह का साहस किया और साहित्य और समाज में अपने अस्तित्व को स्थापित किया। स्त्रियों के विद्रोह के स्वर हमें उनके उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देते है। अपनी आत्मकथा में प्रभा खेतान स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता को महत्त्व देते हुए अपने शोषण का विद्रोह करने की बात कहती है।

स्वतंत्रता के बाद समकालीन महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों, कहानियों और आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्रियों की समस्याओं को उजागर किया है जो समाज में आज भी व्याप्त है। प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्त्रियों को किसी भी रूप में पुरूषों से कम नहीं आंकती। वे स्त्रियों को समाज में पुरूषों के समान अधिकार दिलाना चाहती है। वे स्त्री की उस छवि का विरोध करती है जो समाज में 'सती होने वाली स्त्री' के रूप में देखी जाती हैं। उस छवि का विरोध करती हुई कहती है कि–''सती को प्रणाम! सती माँ! तेरा आदर्श मेरे सामने हमेशा रहा मैंने खुद को उसी परंपरा में ढ़ालने की कोशिश की। मेरे लिए सती का अर्थ था, पति की एकनिष्ठ भक्ति, सूचना समर्पण किसी पराए मर्द की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखना। लेकिन आज मेरे भीतर की बची हुई स्त्री को प्रणाम। बहुतेरे रूपों में बहुत दिन जी चुकी हूँ और आज साठ की हो चुकी हूँ आधी शताब्दी से ऊपर। कल ही तो न्यूयार्क आई हूँ बहुत सालों बाद सब कुछ कितना बदला–बदला लग रहा है, क्या वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की अनुपस्थिति को उसके अभाव को महसूसने मैं यहाँ चली आई।''[5]

प्रभा खेतान समाज में स्त्रियों के शोषण के विरोध में खड़ी नजर आती है। समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था को नकारती है उन रुढ़ियों का विरोध करती है जो स्त्री की स्वतंत्रता में बाधक होती है। वे समाज में स्त्रियों की मुक्ति एवं स्त्रियों के स्वतंत्र अस्तित्त्व को स्थापित करना चाहती हैं।

प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा के संबंध में कहती है कि "वैसें आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीप्टीस का नाच है।आप चौराहे पर एक–एक कपड़े उतारते जाते हैं।लिखनेवाले के मन में आत्मप्रदर्शन का भाव किसी न किसी रूप में मौजूद रहता है, मन के किसी कोने में हल्की सी चाहत रहती है कि लोग उसे गलत नहीं समझें कि जो कुछ भी वह लिख रहा है उसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जाए ,पर दर्शक वृन्द अपना–अपना निर्णय लेने में स्वतंत्र हैं उनका मन, वे इस नाच को देखें या फिर पलटकर चले जाएँ।"[6]

प्रभा खेतान ने आत्मकथा में जीवन संघर्ष की व्यथा, अपमान और शोषण की पीड़ा, वेदना को बहुत ही मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने जीवन में जो देखा, अनुभव किया उसे यथार्थ रूप में अपनी आत्मकथा में बयाँ किया है।अपनी

आत्मकथा के माध्यम से उन्होंने अपनी मन की संवेदनाओ को अभिव्यक्त किया है।

प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा के प्रारंभ में अपने बचपन के दिनों को याद करती हुई खुशी का अनुभव करती है।वे सोचती है कि बचपन में वह फुटपाथ पर खेला करती थी, कैसे उनका नौकर हरिया उन्हें लेक के किनारे घुमा लाता। जब घूमने नहीं जाना होता तो मकान के सामने ही खेलती रहती थीं।"फुटपाथ खेल का मैदान था जब हरिया नौकर का मन करता है हमें कभी–कभी लेक के किनारे घुमा लाता नहीं तो वहीं खेलों मकान के सामने। दौड़ लगाओ सड़क पर, आस पड़ौस के और दस पाँच बच्चे, खाली सड़क उन दिनों कौन इतनी गाडियाँ आती थी।''[7]

प्रभा खेतान अपने बचपन के दिनों को याद करते हुए जहाँ खुशी का अनुभव करती है वहीं दुःखी भी होती है क्योंकि उन्हें बचपन में अपनी मां का प्यार नहीं मिलता है।उनका पालन–पोषण उनकी दाई मां के द्वारा किया जाता है। अपनी माँ का प्यार पाने के लिए प्रभा खेतान तड़पती है। एक लड़की होने के कारण उन्हें उनकी माँ का प्यार नहीं मिल पाता।उनके मन में हमेशा यही प्रश्न उठता है कि उनकी माँ उनसे प्यार क्यों नहीं करती ? उनकी किसी बात को क्यों नहीं समझती है।अपनी माँ का प्यार नहीं मिलने पर दुःखी होते हुई प्रभा खेतान कहती है कि " कैसा अनाथ बचपन था। अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद। हाँ! शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं एक शाश्वत दूरी बनी रही। हमेशा हम दोनों के बीच। अम्मा मेरी बातों को समझ नहीं पाती थी।''[8]

प्रभा खेतान को माँ का प्यार नहीं मिलने पर वे स्वयं को उपेक्षित और कमजोर समझती थी। अपने परिवार में सभी सदस्यों का रंग गौरा होने के कारण और प्रभा का सांवला रंग होने के कारण सभी लोग उन्हें चिढ़ाते थे। इन सभी बातों से दुःखी होते हुए प्रभा खेतान सोचती है कि "मैं उपेक्षित थी, आत्मसम्मान की कमी ने मेरा जिन्दगी भर पीछा किया। भला नीची हैसियत के लोगों की प्यार भरी तारीफों का, उनकी कमजोर राय का मेरी जिन्दगी में क्या मायने था। माँ ने प्यार नहीं किया, यह तो समझ रही थी, क्योंकि मैं ठहरी काली। माँ की तरह गोरी नहीं। मैं बहुत शीत, गीता की तरह स्मार्ट नहीं, मुँह पर फटाफट जवाब नहीं दे पाती, लेकिन मैं पढ़ने में तो अच्छी थी, क्या यह काफी नहीं था?''[9]

प्रभा खेतान अपने बचपन को जितना अधिक याद करते हुए आगे बढ़ रही थी उतना ही दुःखी होती हुई दिखाई देती है और दुःखी होते हुए कहती है "मैं स्मृतियों की पगडंडी पर संभाल–संभाल कर कदम रख रही हूँ।कभी आँचल झाड़ियों में उलझता है,कभी पैरों में नुकीले पत्थर चुभते हैं। कभी सामने कोहरे के बादलतो सामने कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। और कभी पैरों के नीचे ठंडी ओस की बूंदे, मुझे मेरे आंसुओं की याद दिलाती हुई।"'[10]

अपनी अतीत की स्मृतियों को याद करते हुए प्रभा खेतान यह महसूस करती है कि उनके जीवन में अकेलापन हमेशा उनके साथ रहा और अपने अकेलेपन में उन्होंने जीवन के अर्थ को समझा। प्रभा खेतान कहती है ''मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेशा रहा है, पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ भी समझाता रहा है। मैंने अपने आपको बचाया है अपने मूल्यों को जीवन में संजोया। हाँ टूटी हूँ, बार–बार टूँटी हूँ पर कहीं तो चोट के निशान नहीं। दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी की पूरी साबूत औरत हूँ, जो जिन्दगी को झेल नहीं रही बल्कि हँसते हुए जी रही है, जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज है। दोस्ती का हाथ बढ़ाकर जिसकी गर्म हथेलियाँ हर किसी को अपने करीब खींच लेती है।''[11]

प्रभा खेतान जिस परिवार में रहती थी उस परिवार में पैसों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। वे बताती है कि पिता जी घर में माँ को रूपये देते थे तो घर में खुशी मनायी जाती थी।सभी कोअच्छा भोजन दिया जाता था। प्रभा खेतान उस समय घर के परिवेश को बताते हुए कहती है''हमारे परिवार का परम सुख था रुपया! अधिक से अधिक रुपया । बाबूजी, अम्मा को जब रुपया सबसे पहले फल दूध का बजट बढ़ा देतीं। हमें तब रोज एक गिलास भरकर मौसम्बी या संतरे का रस पिलाया जाता । टिकारिए में मक्खन ज्यादा होता। वे सर ऊँचा किए नाते रिश्तेदारों के घर जाया करती। मजाल है कोई उन्हें कुछ बोल दे। छुट्टियों में हम कलकत्ता से बाहर जाते मगर एक रात के रेल सफर तक ही हम सीमित थे। कभी राँची, कभी हजारीबाग तो कभी जसीडीह या देवघर बस । बिहार की वह लाल जीमन, साँय–साँय करती ठंडी सूखी हवा, उबाऊ दुपहरिया और कभी न खत्म होने वाली रातें।''[12]

प्रभा खेतान के घर में उनके पिता गाँधी की विचारधारा को अपनाते थे। वे गाँधी जी खिलाफ एक शब्द भी नहीं सुन सकते थे। वे स्पष्ट शब्दों में गाँधी जी का समर्थन करते हुए कहते थे कि "गाँधी जी के खिलाफ एक शब्द मैं नहीं सुनूँगा'"[13]

लेखिका के माता–पिता दोनों की विचारधारा में बहुत अंतर था। लेखिका के पिता गाँधी जी की विचार धारा को मानते थे लेकिन लेखिका की माँ गाँधी जी के विचारों से सहमत नहीं थी। प्रभा खेतान के पिता जी लडकियों की उच्च शिक्षा के पक्ष में थे। वे अपनी लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलवाना चाहते थे लेकिन प्रभा खेतान की माँ उनके विचारों से सहमत नहीं थी। उनका मानना था की लडकियां पढ़ लिख कर क्या करेंगी ? उन्हें घर में रहकर घर के काम काज सीखने चाहिए। लेखिका की माँ कहती है –''नहीं ...मुझे अपनी बेटियों को कोई नौकरी नहीं करानी है ? इन्हें कोई मेम बनाना है, घर में रहें, घर का काम सीखे।"[14]

प्रभा खेतान की माँ अपनी लडकियों का विवाह कम उम्र में ही कर देना चाहती थी इसलिए वे बाल विवाह के पक्ष में दिखाई देती है। अपनी बेटियों के विवाह के संबंध में बात करने पर में लेखिका के पिता इसका विरोध करते हुए कहते है ''शादी ? क्या कह रही हो धन्नू की माँ बाबू जी ने चौंकर पूछा। इस उम्र में इन छोरियों की शादी? पता है गाँधीजी बाल–विवाह के कितने खिलाफ हैं।''[15]

लेखिका के पिता गाँधी जी के विचारों का समर्थन करते थे लेकिन उनकी पत्नी गाँधी जी के विचारों से सहमत नहीं होते हुए अपने पति की बातों का जवाब देते हुए कहती हैं "बोलते रहे गाँधीजी, गाँधीजी के तो लड़किया हैं नहीं।"[16]

माता–पिता की विचारधारा एक नहीं होने के परिणामस्वरूप लेखिका का स्कूल छुड़वा दिया गया, उन्हें घर में रहकर घर के काम सिखने के लिए कहा गया।उन्हें घर में साड़ी पहनने के लिए कहा गया।"अम्मा ने कहा...'अब यह फ्राक व्रॉक नहीं चलेगा। साड़ी पहनो।''[17]

प्रभा खेतान के परिवार से ही उन्हें शिक्षा से वंचित रखने की कोशिश की गई।विद्यालय से नाम कटवाकर घर तक ही उनका दायरा सीमित कर दिया गया। अपने ही परिवार के लोगों के द्वारा प्रभा खेतान शोषित होती है। विद्यालय जाने की लालसा उनके मन ही मन दुःखी करती है। अपनी बहन के बच्चों को स्कूल जाते हुए देख लेखिका का मन बहुत दुःखी होता है लेकिन माँ लडकियों के स्कूल जाने

के लिए तैयार नहीं होती है। यहाँ प्रभा खेतान की माँ पुरानी परम्परागत मानसिकता का निर्वाह करती हुई नजर आती है। अपने माता–पिता के विचारों के संबंध में लेखिका कहती है "सुधारवादी, आदर्शवादी, गाँधीवादी पिता, सदा द्वन्द में घिरी हुई माँ, कभी परम्परा, कभी आधुनिकता के बीच झूलते हुए हम बच्चे ।'"[18]

प्रभा खेतान अपने बचपन में अपनी माँ की ममता, उनके स्नेह, उनके वात्सल्य के लिए तरसी है।उन्हें बचपन से ही अपनी माँ का दुलार नहीं मिला। लेखिका अपनी माँ का प्यार अपनी दाई माँ में पाती थी। लेखिका की दाई माँ और माँ के विचारों में भी बहुत अंतर दिखाई देता था।खेल–कूद के दौरान प्रभा के चोट लगने पर उनकी माँ उन्हें दुलार करने की अपेक्षा उन्हें जोर–जोर से डांटती है।"कई दिनों तक मेरे घुटने सूजे रहे। कटी हुई जीभ फूली रही। पर मेरी ओर ध्यान देने का किसी के पास वक्त नहीं था। क्योंकि घर में दो–दो शादियाँ होने वाली थी। छोटी दीदी की और उसके बाद बड़े भैया की। सारे मुहल्ले में लड्डू बँटे, फल मिठाई के थाल सजे ओह कितने लोग । धपी बाई, गालों पर हाथ रखकर गीत गाती...'म्हारो बनडो ह सुकुमार।'[19]"

प्रभा खेतान अपनी आत्म कथा में राजनीति की भी बात करते हुए यह बताने का प्रयास करती है कि राजनीति स्त्री जीवन को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करती है। लेखिका के बचपन का यह दौर 1945 के आस–पास का था। जब कुछ व्यवस्थाएं टूट रही थी कुछ नई व्यवस्थाएं बन रही थी। उसी दौरान गाँधी जी आते है लेकिन परिवार में पिता जी के अलावा गाँधी जी की विचारधारा से कोई सहमत दिखाई नहीं देता है। गाँधी जी के विचार प्रभा खेतान तक भी पहुँचते थे तब वे अपनी दीदी से कहती है " हम हिन्दू है, भला राम के साथ अल्लाह का नाम क्यों बोलें ?'"[20]

तब मंझली दीदी समझाते हुए कहती है " अल्लाह मुसलमानों के देवता हैं और हनुमान जी हमारे देवता।अल्लाह की पत्नी को किस नाम से पुकारा जाता है,जैसें देवता की पत्नी देवी वैसें अल्लाह की पत्नी को क्या कहेंगे ? बहुत दिनों बाद समझ में आया कि स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में पति –पत्नी का संबंध होता, पर उस दिन किसी ने कुछ नहीं समझाया।'"[21]

प्रभा खेतान किसी धर्म के खिलाफ नहीं थी।वे धर्म की उन मान्यताओं के

खिलाफ थी जो स्त्रियों के शोषण के लिए जिम्मेदार थी। जिनके आधार पर स्त्री–पुरुष के मध्य भेदभाव किया जाता है।प्रभा खेतान धर्म की अच्छी बातों को ग्रहण करती है। वे कहती है कि "अरे मैं धरम के खिलाफ नहीं अपना–अपना धरम तो निभाना चाहिए।"[22]

प्रभा खेतान जिस समाज में रहती थी वह मारवाड़ी समाज था। मारवाड़ी समाज की लड़कियां जब कॉलेज जाती तो वहां की अध्यापिका और बंगाली समाज की लड़कियां उनसे नफरत करती है। कॉलेज में बंगाली दोस्त प्रभा खेतान को मारवाड़ी समाज की होने के कारण उसे घृणा की नजरों से देखती थे। प्रभा खेतान स्वयं को बंगाली समाज की लडकियों की भांति दिखाने का प्रयास करती थी लेकिन अपनी मारवाड़ी समाज की पहचान को चाहकर भी नहीं छुपा पा रही थी।कालेज के दिनों में उनके प्रति बंगाली दोस्तों के रवैए ठीक नहीं थे। उनके प्रति ईर्ष्या भाव था। दोस्तों का अपने प्रति ईर्ष्या का भाव देखकर लेखिका दुःखी होती हुई कहती है''वैसे कॉलेज में मेरे अपने बंगाली दोस्तों की आँखों में मेरे प्रति छुपी ईर्ष्या मिश्रित सम्मान था क्योंकि मैं खेतान हाउस की लड़की थी । नहीं, मैं मारवाडी नहीं मेड़ो थी। उन लोगों जैसी बिल्कुल नहीं थी। मैं भरसक चेष्टा करती कि मैं मारवाड़ी नहीं बंगाली दिखूँ। अपनी मारवाड़ी पहचान को मैं रगड़ – रगड़ कर मिटाने लगी थी । पर पेंसिल से खींची गई लकीरों, अक्षरों एवं तस्वीरों को ठीक से मिटाना संभव नहीं था । उन दिनों तो रबर की क्वालिटी भी अच्छी नहीं हुआ करती थी, धीरे–धीरे से मिटाओ तो दाग रह जाता, जोर से मिटाओ तो कागज फट जाता । पर मुझे अपने आपको मारवाड़ी कहने पर शरम आती थी । मुझे तो क्लास की अन्य लड़कियों जैसा होना था।''[23]

बंगाली समाज का मारवाड़ी समाज के लोगों से ईर्ष्या करने के पीछे बहुत सारे कारण थे किन्तु उनमें एक प्रमुख कारण यह था कि बंगाली समाज का मानना था कि गुलामी के दिनों में जिस प्रकार अंग्रेजों ने हमें लूटा, हमारा शोषण किया ठीक उसी प्रकार अब मारवाड़ी समाज के लोग हमें लूट रहे हैं । इस तथ्य के संबंध में प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में लिखती है –''दूसरी ओर बगाली समाज की निरंतर शिकायत थी कि हमारे सोनार बांग्ला को पहले अंग्रेजों ने लूटा और अब मारवाड़ी लूट रहे हैं । तब क्या मैं लुटेरों की संतान हूँ? लेकिन मैंने तो अपने पिता

को भाईयों को रात–दिन मेहनत करते देखा है। मारवाड़ियों का कहना था कि भात–मछली खाने वाले आलसी बंगाली भला इनसे बंगाल का व्यवसाय चलेगा? हाँ यह अलग बात है कि क्लास में बंगाली माहौल में मैं अकेली पड़ जाती हूँ और मैं अपनी मारवाड़ी पहचान को झेलने में बिल्कुल असमर्थ हो जाती । अच्छा होगा कि मैं औरों की तरह दिखूँ,उनके जैसी बन जाऊँ।''[24]

प्रभा खेतान अपने कॉलेज के दिनों के दौरान उन्होंने यह महसूस किया कि कॉलेज आने के पश्चात् इनकी दुनिया खुलती जा रही थी। उनके मन के भीतर एक बड़ी गहरी बात बैठी थी कि वे अपने जीवन में अपनी माँ की तरह नहीं बनना चाहती थी। अपनी भाभी की घुटन भरी जिंदगी भी वह नहीं जीना चाहती थी। उन्होंने अपने जीवन के संबंध में यह निश्चय किया कि वे अपने जीवन की सार्थकता को अपने आँसुओं में नहीं बहाना चाहती है। एक बूँद आँसू में स्त्री का पूरा ब्रह्मांड समाया है। केवल रोना और रोना किसके लिए। प्रभा खेतान के जीवन पर मन्नू भंडारी की विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है। मन्नू भंडारी के जीवन के अनुभवों से प्रभा खेतान ने बहुत कुछ सिखा था। उन्होंने मन्नू भंडारी की यातनाओं का जिक्र करते हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि एक स्त्री का जीवन किस प्रकार शोषित होता है। इस संबंध में प्रभा खेतान कहती है कि ''मन्नू भंडारी जिन्होंने मुझे चौथी से ग्यारहवीं तक पढ़ाया, साहित्य की दुनिया में जिनके कदमों की छाप पर मैंने चलना चाहा वे भी कहाँ इन आँसुओं की नियति से मुक्त हो पा रही थी? राजेन्द्र यादव को उन्होंने जीवन साथी के रूप में स्वीकारा था लेकिन शादी के बाद एक दिन मन्नूजी ने रोते–रोते अपने पति परमेश्वर के कारनामें सुनाएँ। ऐसे दगाबाज आदमी पर मुझे बेहद गुस्सा आया था। अपनी इस माँ जैसी शिक्षिका को मैंने पहली बार रोते हुए देखा था। गलत पुरुष के हाथ में पड़कर औरत कितनी असहाय हो जाती है, यह भी उस दिन समझा था।''[25]

प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से अपने परिवार और समाज की स्त्रियों के शोषण की पीड़ा को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया हैं।प्रभा खेतान स्वयं अपने परिवार में अपने ही बड़े भाई द्वारा शोषित की जाती है। जिसकी पीड़ा उन्होंने अपनी आत्मकथा में अभिव्यक्त की है। लेखिका अपने जीवन में अपनी माँ के प्यार के लिए तरसी है। उन्हें कभी माँ का प्यार नहीं मिला वे अपनी माँ की गोद में कभी

भी सर रखकर नहीं सोई है। वह माँ के प्यार के लिए बराबर तरसती रही। वह यह जानना चाहती थी। कि उनकी माता उनके इतना ज्यादा नफरत क्यों करती है? प्रभा खेतान इन सभी बातों को बचपन के दिनों में नहीं समझ पाई थी लेकिन आज लेखिका अपनी माँ के दुःख,दर्द को समझ सकती थी । इन सभी का उत्तर देती हुई वह कहती है ''लेकिन आज अपनी माँ का दर्द समझती हूँ। बहुत दुःख झेला था मेरी माँ ने। चालीस की उम्र में विधवा हो जाना सपफेद साड़ी में जिंदगी बिताना क्या रुचिकर था? अम्मा के वह गहने, वे बनारसी साडियाँ बाबूजी के बिना तमाम सामाजिक दबावों को झेलती हुई अम्मा। वे तो खुद विद्रोही थी, औरत होने की नियति को अस्वीकार हुई। बहुत याद आती हैं वे।''[26]

प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में अपने प्रेम संबंध के बारे में भी बताया है। लेखिका अपने जीवन में एक ऐसे पुरुष से प्रेम करती है जो पहले से विवाहित होते है और पांच बच्चों के पिता भी होते है। प्रभा खेतान यह सब जानते हुए भी डॉ. सर्राफ जो पेशे से एक डॉक्टर होते है के साथ आजीवन बिना विवाह किये रहती है। लेखिका डॉ. सर्राफ के परिवार को भी अपनाती है और उनके प्रति अपनी सभी जिम्मेदरियों को निभाती है लेकिन डॉ. सर्राफ का परिवार प्रभा खेतान को कभी स्वीकार नहीं करता। उन्हें सदैव दूसरी औरत का दर्जा दिया जाता था। प्रभा खेतान अपने जीवन में दूसरी औरत होने की पीड़ा, वेदना को सहती है। डॉ.सर्राफ की पत्नी को जब अपने पति और प्रभा खेतान के संबंधों के बारे में पता चलता है तो वे टूट जाती है, उन्हें लगता है कि उनका परिवार टूट कर बिखर जाएगा । प्रभा खेतान डॉ.सर्राफ से बहुत प्रेम करती है लेकिन उन्हें इस बात का डर भी लगता है कि वे किसी और के पति को प्रेम कर रही है। वे खुलकर विरोध भी नहीं कर पति है और दोहराए की स्थिति पर खड़ी होती हैं।यदि डॉ. सर्राफ ने मिसेज सर्राफ को तलाक दे दिया या मिसेज सर्राफ ने आत्महत्या कर ली तो वे कभी स्वयं को माफ नहीं कर पायेंगी। वे कहती हैं –''लेकिन मैं क्यों डॉ. साहब को इतना चाहती हूँ? और यदि उन्होंने मिसेज सर्राफ को तलाक दे दिया या मिसेस सर्राफ ने गोलियाँ खा लीं तो क्या मैं अपने आपको माफ कर पाऊंगी।''[27]

अपने पति द्वारा दूसरी औरत के साथ संबंध रखने की बात को सहन नहीं कर पाने पर मिसेज सर्राफ जहर की गोलियां खाकर आत्महत्या का प्रयत्न करती

है। प्रभा खेतान इन सभी बातों से बहुत दुःखी होती है । वे डॉ.सर्राफ और अपने रिश्तें को लेकर बहुत चिंतित भी होती है। वे डॉ.सर्राफ से अलग होने के बारे में भी सोचती है लेकिन ऐसा कर नहीं पाती और आजीवन उनके साथ रहती है।प्रभा खेतान कहती है''मुझे डॉ.साहब को छोड़ देना चाहिए। लेकिन निर्णय की तमाम स्वतंत्रता के बावजूद डॉ. साहब को छोड़ने के नाम से मैं कातर हो जाती। आँखें बरसने लगती, वापस उसी मुकाम पर डटे रहने के लिए मेरा मन नए–नए नुस्खे तलाशने लगता। कितने ज्योतिषी, कितने साधु महात्मा न जाने कितने काउंसलर एवं विद्वजनों के पास गई हूँ। अपने जीवन के हर पहलू पर मैंने उनकी राय माँगी है, उनकी नेक सलाहों पर अमल भी किया है, हाँ इस एक प्रसंग के संदर्भ में मैं कमजोर पड़ जाती।''[28]

प्रभा खेतान विवाह जैसी व्यवस्था का विरोध करती हैं। वह विवाह संस्था की त्रासदी को प्रभा खेतान निरंतर झेलती हैं। प्रभा खेतान को कोई शारीरिक सजा नहीं मिली किन्तु एक मानसिक यन्त्रणा निरंतर बनी रही । प्रभा खेतान इस मानसिक यन्त्रणा से दुःखी हो चुकी थी। प्रभा खेतान जिस समाज में रहती वह समाज किसी विवाहित पुरुष के साथ अविवाहित स्त्री के संबंध को स्वीकार नहीं करता और प्रभा खेतान एक विवाहित पुरुष के साथ जुडी हुई थी। एक स्त्री–पुरुष के मध्य पति–पत्नी का जो रिश्ता होता है उस रिश्ते का सुख प्रभा खेतान को नहीं मिला था क्योंकि समाज की नजरों में मिसेज सर्राफ ही डॉ. सर्राफ की पत्नी थी और एक पत्नीत्व के सुख से प्रभा खेतान बहुत दूर थी वे केवल डॉ. सर्राफ की प्रेमिका ही बनकर रह गई थी। एक पत्नी का सुख नहीं मिलने की अपनी पीड़ा को वे व्यक्त करते हुए कहती है ''मैं वह अन्या थी जिसे निरंतर निर्मित किया जा रहा था। क्योंकि महज मेरा होना पत्नीत्व नामक संस्था को चुनौती दे रहा था। सहमति की खोज में मैं बुरी तरह थकने लगी थी। मैं बस पति–पत्नी के बीच 'एक वह' थी एक बाहरी तत्व, अनचाही स्वीकृति....हमारा अपराध था कि हम प्यार करते थे, वैसे ही जैसें हजारों स्त्री–पुरुष करते हैं लेकिन इन हजारों स्त्री पुरुषों की शादी हो जाती है और यदि शादी नहीं होती तो वे अलग–अलग हो जाते हैं। त्रासदी तो यह थी कि न हमारी शादी हो सकती थी और न हम अलग हो पा रहे थे। क्या इन सामाजिक मान्यताओं से पहले कोई समाज नहीं था? क्या उस समाज में स्त्री पुरुष

के विवाहेत्तर संबंध नहीं हुआ करते थे?''[29]

प्रभा खेतान की आत्मकथा की पात्र श्रीमती केडिया द्वारा प्रभा खेतान से डॉ. सर्राफ के साथ संबंधों पर बात करने पर प्रभा खेतान के अस्तित्व पर सवाल उठाये जाते है। प्रभा खेतान के पास कोई जवाब नहीं होने पर स्वयं से प्रश्न करती है कि आखिर वह कौन है ?डॉ.के साथ क्या रिश्ता है उनका ? अपने मन के मानसिक द्वन्द को अभिव्यक्त करते हुए कहती है "मैं भीतर ही भीतर सलाद की तरह ,कटती जा रही थी...कबाब की तरह भुनती जा रही थी।मैं जल रही थी आग की तरह,वह दाल में घी का तड़का लगा रही थी...मैं प्रभा खेतान मैं कौन हूँ ? मैं सधवा नहीं, क्योंकि मेरी शादी नहीं हुई, मैं विधवा नहीं...क्योंकि कोई दिंवगत पति नहीं, मैं कोठे पर बैठी हुई रंडी भी नहीं....क्योंकि मैं अपनी देह का व्यापार नहीं करती, मैं किसी पर निर्भर नहीं करती,स्वावलंबी हूँ, अपना भरण –पोषण खुद करती हूँ। स्वेच्छा से एक जीवन का वरण किया है। तब मैं क्या हूँ ? मैं अबोध हूँ....अबोध माने मुर्ख।दीन–दुनिया से बेखबर , समाज की सच्चाइयों से दूर। मैं विवाहित होकर किसी से अफेयर चलाए रखती, कुछ दिनों तक... तब ठीक था।लोग स्वीकार लेते, आवारगी को समाज स्वीकार लेता है।मगर अविवाहित रहकर एक विवाहित पुरुष, पांच बच्चों के पिता के साथ टंगे रहना, भला यह भी कोई बात हुई ?'"[30]

अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपने जीवन भोगे हुए यथार्थ को और अपनी संवेदनाओं को ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपने जीवन की उन सभी त्रासदियों के बारे में खुलकर बात की है जिनके बारे किसी महिला लेखिका की आत्मकथा में मिलता हो। विवाह से पूर्व प्रेम संबंध, गर्भवती एवं गर्भपात करवाने जैसी व्यथा को उन्होंने स्वीकार करते हुए अपनी आत्मकथा में इसकी पीड़ा को अभिव्यक्त किया है ।

प्रभा खेतान ने अपने स्त्रियों के लिए आत्मनिर्भर होना बहुत आवश्यक माना है क्योंकि जब तक स्त्री स्वयं आत्म निर्भर नहीं होगी तब तक समाज में शोषित होती रहेगी और समाज में अपना अस्तित्त्व स्थापित नहीं कर पायेगी। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्रियों को धर्म के नाम पर शोषित किया, उनकी आर्थिक स्थिति को इतना कमजोर बनाया गया जिससे स्त्रियां कभी स्वतंत्र नहीं हो सके। स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार नहीं दिए गए।स्त्रियों का क्षेत्र केवल घर की चारदीवारी

तक ही सीमित कर दिया गया। उन्हें उतनी ही स्वतंत्रता दी गई गई जितनी पुरूषों ने चाही । स्त्रियों ने जब तक अपने शोषण का विरोध नहीं किया, अपने अधिकारों की मांग नहीं की जब तक उनमे स्त्री चेतना का अभाव था।जैसें–जैसें स्त्री चेतना की लहर समाज में फैली वैसें–वैसें स्त्रियों को अपने अधिकारों,अपने अस्तित्त्व का बोध हुआ और स्त्रियां आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के लिए जागरूक होने लगी। आत्मनिर्भर स्त्री को कोई कुछ भी कहने से पहले सोचना होता है ।

प्रभा खेतान अपनी पहचान एक आर्थिक रूप से स्वतंत्र,आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में बनाती है। आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर रहने पर किन–किन कठिनाइयों का सामना करना होता है यह प्रभा खेतान अपने बचपन के दिनों से महसूस कर रही थी। बचपन में प्रभा खेतान अपने माता–पिता एवं बड़े भाई पर निर्भर होती है उसके पश्चात् डॉ. सर्राफ उनकी मदद करते थे। डॉ. सर्राफ द्वारा मदद करने के बाद बात–बात पर उनका अपने पैसों पर हक जताना प्रभा खेतान को बहुत ठेस पहुँचाता है। प्रभा खेतान स्वयं आत्म निर्भर बनने का फैसला लेती है। प्रभा खेतान कैलीफोर्निया बेवरली हिल हेल्थ क्लब से 'ब्यूटी थेरापी' में डिप्लोमा करके अपने देश में 'फिगरेट हेल्थ क्लब' खोला था जहाँ से उन्हें 25–30 रुपए हजार महीने की आय हो जाती थी जो उनके लिए बहुत बड़ी उपलब्धि थी। तब प्रभा खेतान कहती हैं " 1970, इसी हेल्थ क्लब से मुझे पच्चीससे तीस हजार रुपये महीने की आय हो जाती थी। अपने आप में यह एक बड़ी आर्थिक उपलब्धि थी।"'[31]

उपलब्धि चाहे छोटी हो या चाहे बड़ी, लेकिन हर उपलधि के बाद आत्मबल मजबूत होता है और मन कहता है कि एक कदम और बढ़ाओ । बस, ऐसे ही चलता जाता है। इंसान अपनी कामयाबियों का रसास्वादन करते हुए आगे और आगे संतुष्ट होना जिसने सीख लिया उसका जीवन एक पड़ाव पर आकर ठहर–सा जाता है। नदी जमीन के एक टुकड़े से संतुष्ट नहीं होती इसलिए वह बढ़ती जाती है, अनेक पड़ाव पार कर पर्वत से रेगिस्तान तक।

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के साथ–साथ प्रभा खेतान अनेक व्यक्तिगत उलझनों के होने के बाद भी एक सुन्दर भविष्य का सपना देख रही थी।वे कहती है "तमाम उलझनों के बीच मैंने एक बेहतर भविष्य का सपना देखना नहीं छोड़ा।"'[32]

प्रभा खेतान अपने मारवाड़ी समाज में जहाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था का वर्चस्व

था उस समाज में उन्होंने आर्थिक रूप स्वतंत्र होकर अपना अस्तित्त्व स्थापित किया। वे अपनी आत्मकथा में लिखती हैं "मैं एक सपना देख रही थी। उस सपने में एक सबल और सशक्त महिला थी। इस समाज में मेरी एक ऊँची हैसियत थी।"'[33]

प्रभा खेतान आर्थिक रूप स्वतंत्र होने बाद अपने जीवन में आगे बढ़ना चाहती थी। उनके जीवन का लक्ष्य केवल एक ही मकान तक सीमित रहकर पैसा कमाना ही नहीं था,उनका मन ऊँची उड़ान भरना चाहता था वे दुनिया देखना चाहती थी,अपना वजूद स्थापित करना चाहती थी। इसलिए प्रभा खेतान ने दूसरा व्यवसाय करने का मन बनाते हुए चमड़े का व्यवसाय करने की ठानी। वे कहती है "मैं अपना व्यापार खड़ा कर लूँ और वह भी निर्यात का,कम से कम देश–विदेश घूम तो सकूंगी,लोगों की नजरों में इज्जत मिलेगी वह अलग। स्वाभाविक था कि निर्यातक बनने की,अपना स्वतंत्र व्यापार करने की मेरी इच्छा दिन पर दिन बलवती होती।'"[34]

प्रभा खेतान के सामने सबसे बड़ी समस्या आर्थिक थी जो खत्म हो चुकी थी अब वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र थी। उन्होंने चमड़े से चीजें निर्मित करने के लिए एक कारखाना स्थापित किया उसमें चमड़े से बनी चीजों का निर्यात करती। अपने चमड़े के कारखाने में नयी–नयी वस्तुएं बनाने के बारे में सोचते हुए और आर्थिक समस्याएँ खत्म होने पर प्रभा खेतान कहती है ''महीनों का तनाव दूर हुआ, सुरक्षा की नमकीन गुनगुनी लहरों ने थके हुए मन को ताजगी पहुँचायी। मैंने भी सोचा चलो काम में लगा जाए। मुझे निर्यात के व्यापार में एक नया आइटम जोड़ना है, चमड़े से केवल औद्योगिक दस्ताने और जूते ही क्यों बनाए जाएँ बैग क्यों नहीं? भारत से कितनी बड़ी संख्या में बैग का निर्यात किया जाता है।''[35]

प्रभा खेतान अपने चमड़े के व्यसाय को आगे बढ़ाना चाहती थी इसलिए चमड़े के बैग बनाने का निश्चय करती है। इसके लिए प्रभा खेतान 'नॉर्थन साऊथ' वाला बैग ढाई सौ डॉलर में ले आती है। डॉ.सर्राफ प्रभा खेतान के इस तरह से ढाई सौ डॉलर में बैग लाने पर गुस्सा करते हुए कहते है ''प्रभा ! तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया। खाकी कैनवास के इस थैले का ढाई सौ डॉलर दे आई... पागल हुई हो? चलो वापस करो... नहीं मुझे हू–बहू इसकी नकल उतारनी है। और मेरी व्यापारिक बुद्धि कहती है... व्यापारिक बुद्धि? तुम्हारे पास बुद्धि नाम की चीज भी

है? गुस्से में उनका गोल चेहरा लाल होता जा रहा था तुम अपने आपको समझती क्या हो?''[36]

प्रभा खेतान के व्यार करती है लेकिन उनके पैसों का हिसाब डॉ.सर्राफ रखते थे। प्रभा खेतान के स्वतंत्र रूप से व्यवसाय करने पर डॉ. सर्राफ के पुरुषत्व को चोट पहुँचाती है। जब–जब प्रभा खेतान आर्थिक रूप से अपने आपको स्वावलम्बी घोषित करना चाहती हैं तब–तब डॉ. सर्राफ उन्हें इस बात का अहसाह करवाने की कोशिश करते हैं कि उनके पास बुद्धि नहीं है। ''डॉ.साहब मेरे पास पैसें है, अपनी खरचा के लिए जो हैं उसमें से दे दूँगी। ...तुम्हारा यह मालिकाना तेवर मैं सहन नहीं कर सकता .... औरों के लिए भी तो इतना सामान खरीदा गया है। वे चीजें उनकी जरूरत हैं। तो यह बैग मेरी जरूरत है। बहस जो वहाँ से उठी तो जैकसन हाइट पर ही आकर खत्म हुई, डॉ.साहब ने मेरे हाथ का पैकेट छीनकर फुटपाथ पर दे मारा था और कहा था तुम यहीं पड़ी रहो।''[37]

प्रभा खेतान डॉ.सर्राफ के इस तरह के व्यवहार से दुःखी होती है। उन्हें डॉ. सर्राफ के इस तरह से मालिकाना हक जताना अच्छा नहीं लगता। अपनी आत्मकथा में प्रभा स्त्रियों के आर्थिक पक्ष के सन्दर्भ में कहती है "लेकिन नहीं, मैं एक औरत थी... औरत के आर्थिक अवदान को नकारने की परम्परा रही है। पहले गृहस्थी में उसके श्रम को नकारा जाता है, फिर मुख्यधारा में उसे स्थान दिया जाता है तब उस स्त्री को या तो अपवाद मानकर पुरुष वर्ग अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है,या फिर उसे परे ढ़केल दिया जाता है। पर आने वाले वक्त में औरत की सबसे बड़ी लड़ाई इस मुख्यधारा में बने रहने की होगी।''[38]

प्रभा खेतान और डॉ. सर्राफ एक–दूसरे से बहुत प्रेम करते थे और प्रभा खेतान इस बात को भी भली–भांति जानती थी कि डॉ. सर्राफ शादीशुदा व्यक्ति है फिर भी वे डॉ.साहब का इंतजार करती हैं। चमचमाती धूप में वह एक पुराने मकान की पाँचवीं सीढ़ी पर अकेले बैठी हुई थीं। वह वहाँ न्यूयार्क जैसे शहर में सुबक रही थी। डॉ.साहब प्रभा खेतान को छोड़कर जा चुके थे। बात सिर्फ इतनी थी कि 250 डॉलर बिना डॉ.साहब की मर्जी से एक बैग के लिए प्रभा जी ने दे दिया था। यह सब होने के बाद प्रभा खेतान बार–बार अपने अतीत को कोसतीहुई नजर आती है। वे सोचती है कि वह क्या लगती थी डॉ.साहब की ? वह उनके साथ क्यों चली

आई? वह प्रियतमा थीं या पत्नी ? शायद वह प्रियतमा ही थी। शायद आधी पत्नी,पूरी पत्नी तो कभी थी ही नहीं। पूरी पत्नी वह कभी भी नहीं बन सकी। इन्हीं सब बातों पर विचार करने लगी ''उस चमकती हुई दोपहरिया में एक पुराने मकान की पाँचवी सीढ़ी पर अकेली बैठी–बैठी न्यूयार्क जैसे शहर में सुबक रही थी। डॉ. साहब मुझे छोड़कर जा चुके थे। भला ढाई सौ डॉलर की बर्बादी को कैसे सहन किया जा सकता था। डॉ.साहब को मेरे व्यापार की हवस जरा कम समझ में आती है। लेकिन हम लोग न्यूयॉर्क कोई घूमने तो आए नहीं थे। मैं क्या लगती थी डॉ. साहब की मैं क्यों ऐसे उनके साथ चली गई। प्रियतमा मिस्ट्रेस शायद अधिक पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती क्योंकि एक पत्नी पहले से मौजूद थी। वे बाल बच्चों वाले व्यक्ति थे। पिछले बीस सालों से मैं उनके साथ थी मगर किस रूप में... ? इस रिश्ते को...नाम नहीं दे पाऊँगी । भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई, प्रेम तो सभी करते हैं प्रेम करने वाली स्त्री, माँ, बहन, पत्नी वह कुछ भी हो सकी है या फिर सीधे–सीधे उसे रखैल कहो ना। रखैल का क्या अर्थ हुआ? वही जिसे रखा जाता है। जिसका भरण–पोषण पुरुष करता हो। लेकिन डॉ.साहब तो मेरा भरण–पोषण नहीं करते, उनसे मैंने कभी कोई आर्थिक सहायता नहीं ली मैं तो खुद कमाती थी, स्वावलम्बी थी, एक आत्मनिर्भर संघर्षशील महिला थी। हाँ डॉ. साहब से प्यार जरूर करती थी। मैंने स्वेच्छा से अपने इस अकेले जीवन का वरण किया था। मुझे मालूम था कि वे एक शादी–शुदा व्यक्ति हैं।''[39]

यहाँ प्रभा खेतान समाज की उस धारणा को तोड़ती हुई नजर आती हैं जहाँ जिस समाज में स्त्री केवल विवाह करने के बाद ही प्यार कर सकती है। वेइस बात को जानती थी कि वे जिस पुरुष से प्रेम करती है वह उन्हें कभी नहीं अपनाएगा अर्थात् उनसे शादी नहीं करेगा। उन्होंने साथ–साथ जीवन निभाने का वादा तो किया किन्तु बिना शादी के साथ–साथ रहने का प्रण भी लिया। प्रभा खेतान की यहाँ कुछ क्षणों की एक कमजोरी भी कही जा सकती थी। प्रभा खेतान में समाज को बदलने का एक नया जज्बा यहाँ दिखाई देता है। प्रभा खेतान समाज में बनाई गई पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करते हुए कहती है कि "भला एक शादी–शुदा व्यक्ति से दूसरी स्त्री को पत्नीत्व का अधिकार कैसे मिल सकता है, लेकिन उस पुरुष से प्यार तो किया ही जा सकता है, प्यार में भला कैसी बाधा ?मुझे भी मालूम

है कि वह पुरुष मुझसे शादी नहीं करेगा।मगर कौन कहता है वे मुझसे शादी करें? मैं ऐसे ही ठीक हूँ, अकेले जिन्दगी जी लूंगी, बस जिसे अपना मान लिया ,मान लिया वैसे डॉ.साहब के प्रति शुरू में इतना लगाव नहीं था, मैं तो आँखों का इलाज कराने एक रोगी के रूप में उनके पास आई थी और वे मेरे आँखों में ही खो गए।माना वह क्षणों की कमजोरी थी,एक भूल थी मगर अपनी इस भूल को अपराध कैसे मान लूँ ? क्या ऐसा कभी घटता नहीं ? विवाहित व्यक्ति से कुंआरी लड़की कभी प्रेम नहीं करती।हमने आखिर ऐसा अनोखा क्या किया था? जिस दिन हम मिले थे, उस क्षण भी न जाने कितने–कितने लोग इस दुनिया में आपस में मिल रहे थे, वादा कर रहे थे, साथ–साथ जीवन निभाने का वादा।"'

प्रभा खेतान को अकेले रोता हुआ देख कर एक बूढ़ी स्त्री उनके पास आती है और प्रभा खेतान से उनके रोने का कारण पूछती है–

''तुम रो रही हो?... मैंने वहाँ से उठने की कोशिश की, उसने कहा बैठी रहो ना, क्या परेशानी है? किसने मारा तुम्हें ? और वह आदमी कहाँ गया, जो सुबह तुम्हारे साथ था,तुम्हारा पति है ना ?... नहीं... मेरा दोस्त है।'"[40]

प्रभा खेतान का जवाब सुनने के पश्चात् वह बूढ़ी स्त्री प्रभा से बात करती हैं। बूढ़ी स्त्री की बातों से यह स्पष्ट था कि वह पुरूष जाति से नफरत करती थी। उसका मानना था कि पुरुष हमेशा स्त्री को केवल देह की दृष्टि से देखता है उसका उपभोग करता है। स्त्री को पुरुष अपना गुलाम मानता है। उन्हें लहता था कि पुरुष केवल स्त्री की देह से प्रेम करता है। वह प्रभा से कहती है –'' ठीक है... ठीक है... क्या फर्क पड़ता है, वह चाहे पति हो या तुम्हारा दोस्त तुम्हें छोड़कर चला गया ना! वैसे जानती हो मर्द हमेशा औरत को रुलाता है, आल मैन आर बास्टर्ड। वैसे इन मर्दों को पैदा हम औरतों ने ही किया है, नौ मिनट का सुख...और नौ महीने का पेट...ही...ही...''[41]

बूढ़ी स्त्री की बातों को सुनने के पश्चात् प्रभा खेतान विचार करती है कि यह देह का आकर्षण था। वह देह के रूप में प्यार था देह के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। शायद प्रभा खेतान ने भी किया था मगर प्रभा खेतान ने इस दैहिक आकर्षण को एक स्तर पर आकर नकार दिया वह देह की कीमत नहीं लगाना चाहती थी। उनका मानना था कि देह तो हर जगह उपलब्ध है किन्तु प्रेम

हर जगह उपलब्ध नहीं है। वह डॉ.साहब को अपनी सुरक्षा का प्रतीक मानती थी। वह केवल ऐसा लगता था कि उनके लिए ही जिंदा थी। वह कभी भी नहीं सोचती थी कि डॉ.साहब उससे दूर जाएँ। ''क्या यह देह का आकर्षण था। नहीं, देह के लिए भला इतनी कीमत देने की क्या जरूरत ? देह तो हर जगह उपलब्ध है, कहीं भी किसी भी कोने में। तब मन का लगाव था? इसे प्रेम कहा जाए, हाँ... नहीं... वैसे सब कुछ देह से शुरू होता है। फिर पर्त दर पर्त धूल मन पर जमती चली जाती है और फिर एक दिन प्रेम के मीठे से भी मन भर जाता है। बची रहती है एक रुग्ण निर्भरता, डॉ.साहब मेरे लिए सुरक्षा के प्रतीक थे। मानो उनके लिए मैं जिंदा थी, उनको कुछ हो जाए ऐसा मैं सोच भी नहीं पाती। डॉ.साहब मेरे लिए बरगद की छाँव थे। मेरी जिन्दगी का पड़ाव मेरा सब कुछ रुपए पैसें की मुझे कोई चिंता नहीं, मैं आत्मनिर्भर थी मुझे रुपया कमाना आता है, बेईमानी से नहीं बल्कि ईमानदारी से मेरा अपने आप पर भरोसा है। कोई भी काम कर लूँगी और कुछ नहीं तो एक रेस्टोरेंट ही खोल लूंगी। बस चार टेबलें होगी... जो मन होगा वही बनाऊँगी, ग्राहकों की कमी नहीं। रोज के हजार पाँच सौ रुपए आराम से बच जाएँगे। अकेली जान के लिए काफी है। पर मन? इस मन के सूनेपन का क्या करती?''[42]

प्रभा खेतान डॉ.सर्राफ से प्रेम करती है और अपने प्रेम के दायित्त्व को भी निभाती है। लेकिन प्रभा खेतान अपने अस्तित्त्व को नहीं भूलती है।उनका मानना है कि स्त्रियां प्रेम को बहुत गंभीरता से लेती है लेकिन स्त्रियां इतनी ही गंभीरता से अपने काम को करे तो समाज में अपना वर्चस्व कायम कर सकती है। अपना अस्तित्त्व स्थापित कर सकती है। प्रभा खेतान कहती है ''और मैं गीता के पास मांट्रियल चली गई थी। मुझे व्यवसाय करना है, कुछ करके दिखाना है, हम औरतें प्रेम को जितनी गंभीरता से लेती हैं, उतनी ही गंभीरता से यदि अपना काम लेती तो अच्छा रहता, जिनते आँसू डॉ.साहब के लिए गिरते हैं उससे बहुत कम पसीना भी यदि बहा सकूँ तो पूरी दुनिया जीत लूंगी। मगर समस्या तो यही है कि अपनी तमाम समझ के बावजूद डॉ.साहब के अलावा अन्य किसी से भी मुझे लगाव नहीं था। कुछ भी तो मुझे बाँध नहीं पाता। सब कुछ आधा–अधूरा रह जाता मगर क्यों? क्या मैं यह विश्वास करूँ कि प्रेम का विकल्प तर्क–वितर्क नहीं, कि प्रेम और जीवन और मृत्यु... कुछ ऐसे स्थायीत्व है जिनके बीच कहीं कोई स्पेस नहीं कोई तीसरा

विकल्प है ही नहीं है।''[43]

प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में भारतीय समाज की स्त्रियों के साथ–साथ पाश्चत्य समाज की स्त्रियों की पीड़ा को भी उजागर करती है। अपने ब्यूटी थेरेपी के कोर्स के दौरान और अपने चमड़े के व्यवसाय के सिलसिले में प्रभा खेतान जब विदेश जाती है। वहाँ जाने के पश्चात् प्रभा खेतान विदेशों में रहने वाली स्त्रियों के जीवन को बहुत ही करीब से देखती है।उनके जीवन की सच्चाईयों को गहराई से महसूस करती है। प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में वहाँ की स्त्रियों की शोषण की पीड़ा, उनकी वेदना की अनुभूति को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं। प्रभा खेतान का मानना है कि विदेशो में स्त्रियां आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के बाद भी अकेलेपन की पीड़ा को सहती हुई दिखाई देती है।उनका जीवन भौतिक सुख–सुविधाओं की लालसा पूरी करने में ही व्यतीत होता है ।

प्रभा खेतान अपने ब्यूटी थेरेपी के कोर्स के लिए जब अमेरिका जाती है तो वहां उनकी मुलाकात आइलीन, मरील, मिसेज डी, कैथी, आइवी आदि स्त्रियों से होती है। प्रभा खेतान इन स्त्रियों से मिलने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि यहाँ की स्त्रियां भी भारतीय स्त्रियों की तरह शोषित है।स्त्रियों का शोषण सभी जगह होता है। स्त्रियां कहीं सुरक्षित नहीं है। आर्थिक रूप से मजबूत होने के बाद भी स्त्रियां अपने जीवन में सुखी नहीं है। भोग–विलास की वस्तुओं के पीछे भागते रहना वहाँ की स्त्रियों की जीवन की विड़म्बना है। वहां की स्त्रियों की भोगवादी वृत्ति, पारिवारिक संबंधों में तनाव, पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते संबंधों में पिसते बच्चे, जीवन में संघर्ष करती स्त्रियों की त्रासदी का यथार्थ चित्रण प्रभा की आत्मकथा में मिलता है।

प्रभा खेतान यह महसूस करती है कि स्त्रियां कहाँ नहीं रोती स्त्रियां सभी जगह रोती है। अपने स्त्री पात्र आइलीन के द्वारा इस बात को सामने भी लाती है कि "दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ, जहाँ औरत के आंसू नहीं गिरे ? औरत जिनता रोती है उतना ही औरत होती जाती है।'"[44]

सभी सुख–सुविधाओं से सपन्न स्त्री भी वहाँ सुखी नहीं थी क्योंकि स्त्रियां अपने पति का किसी दूसरी स्त्री से प्रेम संबंध होने के कारण अकेलेपन की जिन्दगी जीने को मजबूर होती थी। वहाँ की स्त्रियों की दशा देखने के बाद प्रभा खेतान

स्वयं को अकेला महसूस करती हैं।क्योंकि प्रभा खेतान स्वयं भी किसी और के पति से ही प्रेम करती थी। विदेश में प्रभा खेतान और डॉ. सर्राफ के संबंधों को किसी को पता नहीं था। प्रभा खेतान इस संबंध में कहती है "अचानक मैं बहुत अकेली हो गई। मेरी भी तो यही जिन्दगी है। मैं भी तो एक विवाहित पुरुष से प्रेम करती हूँ पता नहीं उस पुरुष के साथ आखिर कितनी दूर तक जा पाऊँगी? आइलिन को यदि मेरे बारे में पता चल जाए तो क्या वह मुझसे चिढ़ेगी, क्या उतना ही मुझसे नहीं चिढ़ेगी, किसी और के पति को झपटने का अपराध तो मैंने भी किया है। आईलिन, मिसेज डी, मरील सभी तो मुझसे नाराज हो जाएंगी। मैं तो इनके दल की नहीं, मुझे तो क्लारा ब्राउन के गुट में होना चाहिए था। कैसे बीतेंगे यह तीन–चार महीने।''[45]

प्रभा खेतान अपने जीवन में डॉ.सर्राफ को बहुत प्रेम करती थी उनके जीवन में परिस्थितियाँ तब बदलती है जन उन्हें यह पता चलता है कि डॉ. साहब को कैंसर हो गया है। प्रभा खेतान पचास साल की थीं। जब डॉ.साहब की मृत्यु हुई थी। डॉ.साहब की मृत्यु के बाद प्रभा खेतान के जीवन में भी अकेलापन छा जाता है। उन्होंने इस बात को भी स्वीकार किया है कि वे जिस व्यक्ति से प्रेम करती थी उनमे प्रेम को स्वीकार करने का साहस नहीं था।वे बहुत कायर प्रवृत्ति के इंसान थे। उन्होंने कभी समाज के समक्ष प्रभा खेतान और स्वयं के रिश्तों को स्वीकार नहीं किया। एक पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मानने वाले एवं पुरुषवादी मानसिकता के व्यक्ति थे।इस प्रकार उनका जीवन संघर्ष की एक गाथा रही है। उनकी आत्मकथा उनके जीवन संघर्ष को, उनकी संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाला प्रमाणिक दस्तावेज है।

संदर्भ सूची–

1. संपादक राजेंद्र यादव, हंस, शर्म की परतें खुलती है आत्मकथाओं में, सितंबर 2005, पृष्ठ संख्या–50
2. पंकज चतुर्वेदी ,आत्मकथा की संस्कृति ,पृष्ठ संख्या–7
3. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा ,हिंदी साहित्य कोश,भाग–1 पृष्ट संख्या–98
4. दोहरा अभिशाप, कौशल्या बैसंत्री, आत्मकथा की भूमिका
5. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन, पृ। 5
6. वही, पृष्ठ संख्या– 17
7. वही, पृष्ठ संख्या– 17
8. वही, पृष्ठ संख्या– 31
9. वही, पृष्ठ संख्या– 26
10. वही, पृष्ठ संख्या–28
11. वही, पृष्ठ संख्या–29
12. वही, पृष्ठ संख्या–21
13. वही, पृष्ठ संख्या–17
14. वही, पृष्ठ संख्या–17
15. वही, पृष्ठ संख्या–17
16. वही, पृष्ठ संख्या–17
17. वही, पृष्ठ संख्या–18
18. वही, पृष्ठ संख्या–17
19. वही, पृष्ठ संख्या–19
20. वही, पृष्ठ संख्या–16
21. वही, पृष्ठ संख्या–17
22. वही, पृष्ठ संख्या–8
23. वही, पृष्ठ संख्या–44

24. वही, पृष्ठ संख्या–45
25. वही, पृष्ठ संख्या–45
26. वही, पृष्ठ संख्या–41
27. वही, पृष्ठ संख्या–158
28. वही, पृष्ठ संख्या– 250
29. वही, पृष्ठ संख्या– 175
30. वही, पृष्ठ संख्या– 12
31. वही, पृष्ठ संख्या–170
32. वही, पृष्ठ संख्या–196
33. वही, पृष्ठ संख्या–196
34. वही,पृष्ठ संख्या–199
35. वही, पृष्ठ संख्या–6
36. वही, पृष्ठ संख्या–6
37. वही, पृष्ठ संख्या–6
38. वही, पृष्ठ संख्या–212
39. वही, पृष्ठ संख्या–9
40. वही, पृष्ठ संख्या–9
41. वही, पृष्ठ संख्या–9
42. वही, पृष्ठ संख्या–14
43. वही, पृष्ठ संख्या–15
44. वही, पृष्ठ संख्या–130
45. वही, पृष्ठ संख्या–130

चतुर्थ अध्यायः

प्रभा खेतान के कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री संघर्ष

चतुर्थ अध्याय

प्रभा खेतान के कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री संघर्ष

स्वतंत्रयोत्तर हिंदी साहित्य जगत में समकालीन उपन्यासों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। समकालीन उपन्यासों में हमें अनेक वैचारिक धाराओं के प्रवाह देखने को मिलते है। जिसमें एक धारा स्त्री विमर्श की भी रही है। आजादी से पूर्व के उपन्यासों को देखा जाए तो उन उपन्यासों में स्त्रियों का स्थान नगण्य था। आजादी के बाद और भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात् साहित्य में स्त्री विमर्श की एक लहर दिखाई देने लगी। धीरे–धीरे स्वयं स्त्रियों ने अपने जीवन की संवेदनाओं को खुलकर लिखना प्रारम्भ किया।

समकालीन महिला लेखिकाओं का एक बहुत बड़ा दल उभरकर सामने आया।जिन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से समकालीन परिवेश में स्त्रियों की शोषित स्थिति,उनके अपमान की पीड़ा, उनकी सामाजिक एवं आर्थिक पराधीनता, सदियों से चली आ रही सामन्ती मूल्यों की पीड़ा, रूढ़िगत परम्पराओं और मान्यताओं से जुड़े प्रश्नों को खुलकर उपन्यासों के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया।

समकालीन महिला लेखिकाओं ने समकालीन हिंदी उपन्यास लेखन के माध्यम से स्त्री जीवन के विविध प्रश्नों, उनकी उत्पीडन की पीड़ा के साथ–साथ उनकी अस्मिता के महत्व को भी रेखांकित किया है। आज के युग में स्त्री की छवि मध्य युग की मोह–माया अथवा रीतिकाल की भोग–विलास की वस्तु के रूप में नहीं रही है अपितु आज की नारी शिक्षित होने के साथ अपने अधिकारों एवं अपने अस्तित्व के प्रति सचेत भी है वह इस पुरुषप्रधान समाज में अपनी स्वायत्ता स्वयं स्थापित करना चाहती है और समाज में व्याप्तपितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरुषवादी मानसिकता को जड़ से मिटाना चाहती है। पुरुष प्रधान समाज में सदियों से स्त्रियों का शोषण,उत्पीड़न होता आया है जिनका स्त्रियां विरोध भी नहीं कर पाती थी क्योंकि उस समय स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं थी इसी कारण समाज में उनका स्थान नगण्य था। उन्हें घर की चारदीवारी से बाहर जाकर शिक्षा प्राप्त करनी की अनुमति नहीं दी जाती थी। उन्हें बार–बार इस बात का एहसास

करवाया जाता था कि वह एक स्त्री है और उसका दायरा केवल घर तक सीमित है। लेकिन आज स्त्रियां अपने मुलभूत अधिकारों एवं स्त्रीत्त्व की ओर सचेत हुई है और इसी नारी चेतना का निरूपण समकालीन महिला लेखिकाएं अपने उपन्यासों के माध्यम से कर रही है। जिनमें मैत्रेयी पुष्पा के 'इद्न्न्मम', 'चाक', नासिरा शर्मा का 'शाल्मली', मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप', 'चित्तकोबरा', 'कठगुलाब', मन्नू भण्डारी का 'आपका बँटी', कृष्ण सोबती का 'जिंदगीनामा', 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो–मरजानी', उषा प्रियम्वदा का 'पचपन खंबे लाल दीवारे', 'रुकेगी नहीं राधिका', ममता कालिया का 'बेघर, रानी सेठ का 'तत्सम', गीतांजलि श्री का 'माई', क्षमा शर्मा का 'परछाई', चित्रा मुदगल का आवां, अनामिका का 'दस द्वारे का पिंजरा', ऐसे अनेकों उपन्यास महिलाओं द्वारा लिखे गए है जिनमें स्त्री समस्याओं का स्वर मुखरित होता है। समकालीन महिला लेखिकाओं ने स्त्री पक्ष से जुडी उन तमाम समस्याओं और उनसे जुड़े सवालों के विरोध में खुलकर आक्रोश व्यक्त किया है। समकालीन महिला लेखिकाओं में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्वदा, मृदुला गर्ग, नासिर शर्मा, मृणाल पाण्डेय, अनामिका, मैत्रेयी पुष्पा आदि ने अपने उपन्यासों के द्वारा हिंदी साहित्य के जगत में स्त्री विमर्श की लहर को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।इन्हीं समकालीन महिला लेखिकाओं में प्रभा खेतान का नाम भी लिया जाता है जिन्होंने स्त्री विमर्श के क्षेत्र में अपने प्रभावी स्त्री विमर्श लेखन के कारण अपना शीर्ष स्थान बनाया।प्रभा खेतान ने अपने समस्त लेखन में सामाजिक–धार्मिक रूढ़ियों, कुप्रथाओं एवं विसंगतियों के प्रति विद्रोहात्मक अभिव्यक्ति की है। सामाजिक, नैतिक मूल्यों को चुनौति दी है तथा व्यक्तिगत स्तर पर स्वतंत्रता पूर्वक जीवन जीने का समर्थन करते हुए स्त्री को स्वावलंबी बनाना चाहा है ।उन्हें समाज में फैली सड़ी–गली मान्यताओं से मुक्त कराना चाहा है। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में स्त्रियों को स्त्री चेतना से जाग्रत करने का प्रयास किया है जिसमे वें सफल भी रही हैं ।

प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में अपने जीवन में भोगी हुई पीड़ा, एक स्त्री होने की पीड़ा, अपने ही समाज और परिवार द्वारा अपमानित एवं शोषित होने की पीड़ा को सहन किया उस दर्द को उन्होंने बहुत ही मार्मिक रूप से यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है । इसके साथ दृसाथ उन्होंने अपने उपन्यासों में यह भी बताने

का प्रयास किया है कि स्त्री अपने ही समाज में किन–किन स्तरों पर शोषित होती है। अपने लेखन में चाहे वह कविताएँ हो या उपन्यास हो उन्होंने अपने विचार, भाव अपनी मन की संवेदनाओं को बिना किसी भय के अभिव्यक्त किये है ।लेकिन उनका मानना है कि अपने मन की बात दूसरों तक कविता, कहानी के माध्यम से विस्तृत रूप में नहीं पहुँचाई जा सकती क्योंकि उनकी एक सीमा होती है ।इसीलिए उपन्यास विधा का सहारा लेकर प्रभा खेतान ने स्त्री जगत की तमाम समस्याओं और उनसे जुड़े सवालों पर स्वतंत्र रूप से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया । प्रभा खेतान उपन्यास के संदर्भ में स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए कहती हैं "मगर बड़ी जल्दी मुझे समझ में आ गया कि कविता के माध्यम से मैं अपनी बात नहीं कह पाउंगी। इस विधा की अपनी सीमा है। अतरू मुझे कविता नहीं बल्कि उपन्यास का सहारा लेना चाहिए । यहाँ तक कि कहानी भी मुझे अपनी परिधि में छोटी लगी।'"[1]

प्रभा खेतान ने अपने लेखन में 6 उपन्यासों की रचना की। उन्होंने अपने उपन्यासों के केंद्र में स्त्री एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को रखा गया है। प्रभा खेतान के पांच उपन्यासों के केंद्र में स्त्री को रखा गया है एवं उनके 1 उपन्यास में व्यापर जगत की उठा–पठक को केंद्र में रखा है। प्रभा खेतान ने आओ पेपे घर चले, अग्निसम्भवा, छिन्नमस्ता, अपने दृअपने चेहरे , पीली आंधी आदि उपन्यासों में स्त्री की पीड़ा उसकी संवेदना को प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान ने अपने जीवन में जो अनुभव किया उसी अनुभव को यथार्थ रूप में अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया। तालाबंदी उपन्यास में उद्योग जगत में आने वाली समस्याओं एवं एक स्त्री का व्यापार करना एवं व्यापार करते हुए अनेक समस्याओं का सामना करना एस उपन्यास के केंद्र में है। प्रभा खेतन स्वयं चमड़े का व्यवसाय करती है और व्यवसाय जगत में अनेक कठिनाईयों का सामना करती है इसका जिक्र हमें उनकी आत्मकथा में मिलता है। उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकार भी किया है कि उनके प्रत्येक उपन्यास में उनकी आत्मकथा के अंश दिखाई देते है।

आओ पेपे घर चले (1990)

'आओ पेपे घर चले' उपन्यास प्रभा खेतान का प्रथम प्रकाशित उपन्यास है जो सन् 1990 में प्रकाशित हुआ। प्रभा खेतान ने अपने इस उपन्यास में नारी जीवन की पीड़ा,अपमान और वंचना से होने वाले दर्द की अनुभूति को अभिव्यक्त किया है। प्रभा खेतान ने अपने इस उपन्यास में भारतीय समाज की स्त्रियों के शोषण, उनके अपमान की व्यथा को तो अभिव्यक्त किया ही है साथ ही साथ उन्होंने पाश्चात्य देशों की स्त्रियों की संवेदनाओं को भी अभिव्यक्त किया है। विदेश जाने के पश्चात प्रभा खेतान ने बहुत ही करीब से वहाँ की स्त्रियों की जो स्थिति देखी, जो अनुभव किया उनकी यथास्थिति को उसी रूप में उपन्यासों में प्रस्तुत किया।

प्रभा खेतान ने आइलीन, एलिजा, केथरीन मुर, मरील हेल्गा, क्लारा ब्राउन जैसी नारी पात्रों को लेकर स्त्रियों से सम्बन्धित इस उपन्यास के कथानक को तैयार किया जाता है। उन्होंने जो अनुभव विदेश में रहकर किये वही अनुभव उन्होंने अपने उपन्यास में अभिव्यक्त किये और उनके इस उपन्यास के संबंध में राजेन्द्र यादव कहते हैं–"अपने विदेश के अनुभवो को आधार बनाकर 'आओ पेपे घर चले' लम्बी कहानी या लघु उपन्यास लिखा हैं।"'[2]

हिंदी उपन्यासों में अधिकांशतया भारतीय नारी की पीड़ा का चित्रण ही अधिक दिखाई देता है किन्तु अमेरिकी महिला के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करने वाला यह हिंदी का प्रथम उपन्यास है। इस संदर्भ में डॉ. उषा कीर्ति राणावत लिखती है कि–"विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखा यह उपन्यास वैश्विक स्तर पर स्त्री जीवन के भयानक सच को उजागर करता है। देश–विदेश के बीच सांझी स्त्री की एक सांझी मानसिकता और समाज में उनकी स्थिति का द्योतक है।''[3]

सदियों से स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था के द्वारा निर्धारित किये गए नियमों, रीति–रिवाजों, परम्पराओं एवं मूल्यों के आधार पर शोषित और अपमानित होती रही है। वह सदियों से रोती रही है और वह जितनी रोती है उतनी ही औरत बनती जाती है। इस तरह से औरत के स्वतंत्र जीवन जीने के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास साहित्य में केवल अपने मारवाड़ी समाज या भारतीय समाज की स्त्री की विडम्बनाओं को ही उद्घाटित करने का प्रयास किया

है ।

इस उपन्यास में प्रभा खेतान की स्वयं की आँखों देखी अमेरिकी जीवन की जीवित तस्वीर है। उन्होंने अमेरिका में रहकर वहां की स्त्रियों के समीप रहकर उन्होंने जो देखा, जो अनुभव किया वही यथार्थ 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में गोपाल राय का विचार है कि –"उनका पहला उपन्यास 'आओ पेपे घर चले' पढ़कर मैं हैरान था यह किसी लेखिका की ईमानदारी का सबूत है।'"[4]

'आओ पेपे घर चले' उपन्यास एक 70 वर्षीय वृद्ध आइलीन और उसके प्रिय कुत्ते 'पेपे' पर आधारित है। इन्हीं के इर्द–गिर्द अन्य पात्र भी अपनी भूमिका निभाते हैं। 22 साल की उम्र में प्रभा खेतान 'स्टूडेंट एक्सचेंज प्रोग्राम' के तहत लॉस एंजेल्स में ब्यूटी थैरेपी का कोर्स करने के लिए जाती है। उसी शहर में प्रभा खेतान आइलीन की पेइंगगेस्ट बनकर रहती है। उसी दौरान लेखिका आइलीन के जीवन को बड़ी बारीकी के देखती है जो अपने दो पतियों और पांच प्रेमियों को याद करती हुई दुःखी होती है और अपने कुत्ते 'पेपे' को बेटा मानकर अपने अकेलेपन एवं दुःख को भूलने की कोशिश करती है। उस स्थिति में वह आदमी में जानवर और जानवर में आदमी खोजती है। उसकी इस स्थिृति को देखते हुए प्रभा खेतान अनुभव करती हुई सोचती है "यहां जानवर में आदमी और आदमी में जानवर देखना सीखें।'"[5]

आर्थिक स्वतंत्रता जीवन जीने की पहली शर्त होती है किन्तु आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी अमेरिकी महिलाएँ अपने जीवन में खुश नहीं अपितु बहुत दुखी दिखाई देती है। उनका जीवन एकाकी दिखाई देता है। इनमे आइलीन, एलिजा, मरील, हेल्गा, कैथी जैसें स्त्री पात्र दिखाई देते है। आइलीन को बहुत अधिक दुखी होते हुए देखा प्रभा खेतान सोचती है कि जमीन भले ही परायी हो किन्तु औरत सब जगह एक जैसी ही है, सभी जगह वही सुखदृदुःख, वही बातें, वही नियम, कानून। अमेरिका में लेखिका को हर जगह औरत रोती हुई और दुखी नजर आती है। उन्हें देखकर लेखिका स्वयं बहुत दुखी होती है। ऐसे समय में उन्हें आइलीन की बातें याद आती है जो औरत जीवन की सत्यता को बताते हुए कहती थी –"औरत कहां नहीं रोती और कब नहीं रोती। वह जितना रोती है,उतनी ही औरत होती जाती है।''[6]

आगे कहती हैं कि –"दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ ,जहाँ औरत के आंसू नहीं गिरे।''[7]

आइलीन एक स्वाभिमानी और आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री है। जो अपना जीवन स्वयं अपने तरीके से जीती है किन्तु वह अपने जीवन में खुश नहीं है वह अपना दुःख अपने प्रिय कुत्ते पेपे के सहारे कम करना चाहती है। नये वर्ष की खुशी में अधिक शराब पीने की वजह से उनकी मृत्यु हो जाती है। आइलीन की मृत्यु पर उनका प्रिय कुत्ता पेपे इंसानों की भांति रोता हुआ दिखाई देता है–"पेपे चुपचाप कब्र की कच्ची मिट्टी पर बैठ गया। किसी ने कुछ नहीं कहा। न ही किसी ने पेपे को हटाया। हम लोग लौट आये थे, पर पेपे की बड़ी–बड़ी आँखे,उसके आंसू कुछ न कहते हुए भी बहुत कुछ कह रहे थे।'"[8]

'आओ पेपे घर चले' उपन्यास के माध्यम से प्रभा खेतान पारिवारिक विघटन और उसके साथ टूटते झरते, समाप्त होते रिश्तों की वास्तविकता को भी दिखाने का प्रयत्न करती है। 40 वर्षीय परित्यक्ता मरील अपने जीवन में अपने ही पारिवार के साथ सुखी नहीं थी। मरील अपने ही परिवार द्वारा ठगी गई थी। जिसके परिणामस्वरूप मरील अपने जीवन में बहुत दुःखी होती है इसी कारण बात दृबात पर गलियां निकालती मरील भीतर ही भीतर प्यार की सरसता खो चुकी थी। मरील अपने घर में रहकर अनुभव करती है कि जहाँ पैसा है लेकिन जीवन नहीं है। जीवन है भी तो वह बिखरा हुआ। यहाँ कोई किसी का नहीं, सारे रिश्तें–नाते शून्य हो चुके थे। मरील को अपने पति का सहयोग नि मिलता उसका पति अन्य स्त्री के कारण मरील को छोड़ कर चला जाता है। अपने ही पति से धोखा मिलने के कारण मरील का वैवाहिक जीवन से विश्वास उठ जाता है। प्रभा खेतान के द्वारा पति के संदर्भ में पूछने पर मरील जवाब देती हुई कहती है कि –"भाग गया साला, किसी बीस बरस की लड़की को लेकर। कोर्ट का दरवाजा खटखटाने पर आजकल एक हजार डालर महीने भेजता है, बास्टर्ड।"'[9]

मरील अपने जीवन में अधिक से अधिक पैसा कमाना चाहती है। वह स्वयं को आर्थिक रूम से समृद्ध बनाना चाहती है। अपने पति द्वारा भेजे गए हजार डॉलर से अपनी दोनों बेटियों एवं परिवार का भरण–पोषण करती है। मरील की दोनों

बेटियाँ अपनी माँ को पसंद नहीं करती है। मरील अपना दुःख छुपाने के लिए दूसरों के सामने केवल हंसती है, खुश होने का दिखावा करती है किन्तु भीतर ही भीतर मरील टूट चुकी थी, मानसिक रूप से परेशान हो चुकी थी इसीलिए सभी लोगों को गालियां दिए बिना नहीं रहती थी। प्रभा खेतान मरील को समझाने की कोशिश करती है कि उसे गालियाँ नहीं देनी चाहिए। मरील प्रभा खेतान को इस संदर्भ में जवाब देती हुई कहती है कि –"जिन्दगी जब तुम्हें ठगेगी और बार दृबार ठगेगी, तब तुम क्या करोगी ? गाली नहीं बकोगी ? अभी तुम बहुत छोटी हो, औरत के सीने में दर्द का कौनसा लावा खोलता है, यह आज तुम क्या जानो ?"'[10]

मरील प्रभा खेतान को उम्र में छोटी समझती है। वह सोचती है कि प्रभा को अभी जिन्दगी का अधिक अनुभव नहीं है किन्तु प्रभा खेतान भी अपने जीवन में औरत होने की पीड़ा को अनुभव कर रही थी। प्रभा खेतान स्वयं शादी नहीं करना चाहती थी इसीलिए उन्हें विवाह संस्था में विश्वास नहीं था। विवाह के संदर्भ में मरील प्रभा खेतान से कहती है –"यदि लकीर से हटी तो दर्द की पहली कड़ी है दुनिया को झेलने के लिए लौह का कवच पहनना होगा।'"[11]

मरील अपने जीवन में बहुत कड़वे अनुभव देख एवं सह चुकी थी इसलिए वह प्रभा खेतान को जीवन में कठोर बनने की सलाह देती है ताकि वह दुनियां में किसी भी परिस्थिति का सामना कर सके। कोई उसका शोषण ना कर सके, ना ही कोई स्त्री समझ उसके साथ विश्वासघात कर सके। मरील प्रभा को अपने जीवन के कड़वे अनुभवों के आधार पर समझाते हुए कहती है –" कोई भी दर्द इतना बड़ा नहीं होता कि औरत अपने आंसुओं का खजाना खाली कर दे। भविष्य में रो सको, इसलिए आंसुओं को दबाए रखना।'"[12] मरील प्रभा खेतान को अमेरिका में ही रहने को सलाह देती है लेकिन प्रभा खेतान उसकी बात का विरोध करते हुए कहती है –"तुम मुझे करोड़ो की दौलत भी दो, तो भी विदेश की जमीन पर मैं नहीं रह सकती।'"[13]

इस उपन्यास की पात्र एलिजा जो एक त्रिशंकु रुपी जीवन जी रही थी। एलिजा आर्थिक रूप से एक स्वतंत्र नारी है लेकिन अपने जीवन में अपने ही पति के प्यार को पाने में असमर्थ होती है। एलिजा के पति मिस्टर डी क्लारा ब्राउन से प्रेम करते है। वह अपनी पत्नी एलिजा के प्रेम, समर्पण को नहीं समझ पाते। अपने

टूटते वैवाहिक जीवन से परेशान एलिजा को डिप्रेशन के दौरे पड़ते है। एलिजा अपने पति को पाने की पूरी कोशिश करती है किन्तु सफल नहीं हो पाती और आत्महत्या करने का प्रयास करती है ।

एलिजा अपने पति से बेहद प्रेम करती है इसलिए एलिजा चाहकर भी मिस्टर डी. को किसी भी प्रकार की सजा नहीं दे पाती। एलिजा चाहती तो अपने पति को तलाक, मुआवजा और पर स्त्रीगमन का चार्ज लगाकर सजा भी दिलवा सकती थी लेकिन एलिजा अपने प्रेम के आगे टूट जाती है। एलिजा की ऐसी असहाय स्थिति को देखकर प्रभा खेतान के मन में अनेक प्रश्न उठते है कि इतना दुःख, अपमान एवं पीड़ा सहने के बाद भी एलिजा अपने पति से अपने अधिकार क्यों नहीं मांगती ? आर्थिक रूप से समृद्ध और स्वतंत्र होने के बाद अभी इतनी यातनाएँ क्यों सहना ? अपने अधिकारों के लिए कोर्ट की मदद क्यों नहीं लेना ? अनेक प्रकार के प्रश्न प्रभा खेतान के मन में बार–बार उठते है लेकिन जवाब नहीं मिल पाता। एलिजा अपने वैवाहिक जीवन में दूसरी औरत का आना बर्दाश्त नहीं कर पाती और ना ही अपने पति को रोक पाने में, उसका प्रेम पाने में सफल हो पाती है। अंततः एलिजा तलाक के कागजात पर हस्ताक्षर कर देती है। एलिजा की इस स्थिति के संदर्भ में प्रभा कहती है–''औरत जब अपना दिल एक खूंटे से बांध देती है, तब सारी जिन्दगी रोती है, सारी जिन्दगी।''[14] एलिजा की स्थिति को देखते हुए प्रभा खेतान को आश्चर्य होता है कि इस तरह की घटनाएँ अमेरिका जैसें विकसित देशों में भी होती है। स्त्री सभी जगह एक जैसी है, उसकी स्थिति भी एक जैसी है।

इस उपन्यास की पात्र हेल्गा एक ऐसी स्त्री है जो आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं स्वतंत्र है और अपने वैवाहिक जीवन में पति व बच्चे होने के बाद भी संतुष्ट नहीं है। हेल्गा को अपने परिवार से अधिक अपनी अलग पहचान, अपना अलग स्वतंत्र जीवन प्रिय है। वह केवल पत्नी, माँ की भूमिका में सिमटकर नहीं रहना चाहती। वह अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती थी –"पर हेल्गा को अपनी अलग पहचान चाहिए थी । वह केवल माँ और पत्नी की भूमिका में सिमटकर नहीं रहना चाहती थी। मानो वह एक टूटे हुए अक्स को ठीक करने की कोशिश में है और जितना वह टुकड़ों को जोडती है वह उतना ही कोई और होती है।''[15]

प्रभा खेतान इस उपन्यास में हेल्गा को नस्लवाद की शिकार नारी के रूप में

प्रस्तुत करती है। हेल्गा एक ऐसी नारी है जो अपने धर्म और नस्ल की रक्षा हेतु अपने परिवार को भी दांव पर लगा देती है। अपने देश एवं नस्ल के प्रति प्रेम होने के कारण अपनी खुशहाल गृहस्थी को निराशाजनक तरीके से चलाती है। हेल्गा अपने देश के लिए प्रभा से कहती है– "ओह प्रभा, क्या बकवास की भावुकता में बह रही हो। सब एक दृएक करके घर छोड़कर चले जाएंगे और मैं खाली घोसलें में डॉक्टर बेरी की हर शाम की प्रतीक्षा करती रह जाऊं ? भूल जाऊं कि मेरी नस्ल का एक भी राष्ट्र नहीं है इस धरती पर ?''[16]

हेल्गा यहूदी है, वह नस्लवाद की शिकार है। वह अपनी नस्ल को बनाये रखने के लिए अपना स्वयं का रेस्टोरेंट खोलती है और उससे अधिक से अधिक पैसा कमाकर इजराइल भेजना चाहती है। वह अपनी नस्ल यहूदियों एक अपनी जमीन तैयार करके अपना एक देश बना कर अपने सभी दुखों को भूल जाना चाहती है। हेल्गा को अपने परिवार से एक सीमा तक लगाव है। उसकी आंखों के सामने पिता का कटा हुआ सिर और भाई की मौत का दृश्य है घूमता रहता है जिसके कारण उसे मानसिक शांति नहीं मिलती है। इसी कारण वह अपने धर्म ,नस्ल व देश से प्रेम करती है और अपनी नस्ल के लिए कुछ करना चाहती है। इस संदर्भ में हेल्गा प्रभा से कहती है–"मैं, मैं बहुत ही गहरी हूं और जितना भी भीतर डूबती हूं एक ही आवाज कानों से टकराती है, हम यहूदियों का अपना कोई देश नहीं। हम अब भी खानाबदोशों की तरह भटक रहे हैं, क्योंकि मैं सोचती हूं हर दर्द को आदमी अपनी जमीन पर खड़ा हो कर भूल सकता है।"'[17]

हेल्गा अपनी गृहस्थी से इतना प्रेम नहीं करती जितना अपने देश से करती है। हेल्गा की वयस्क होती बेटी से एक सीमा तक ही लगाव है। वह अपनी मां को रोकने का प्रयत्न करती है, समझाती है किंतु हेल्गा अपने धर्म, नस्ल के लिए परिवार की चिंता नहीं करती। वह अपने दुखों को भूलना ही नहीं चाहती है। हेल्गा के मन में सदैव बदले की आग जलती रहती है। वह कभी अपने दुखों को नहीं भूलती। अपने दुखों के संदर्भ में प्रभा से कहती है–"मैं नहीं चाहती कि अपने दुखों को भूल जाऊं। आदमी अभी ऐसे दुखों को भूलता है तब आदमी नहीं रह जाता वह जानवर भी नहीं रहता, क्योंकि बदले की आग तो शेरनी में भी रहती है, नागिन भी बदला लिए बिना नहीं मानती। केवल लोहे के पुर्जे है जो खटाखट मशीनों में फिट

होते हैं, घूमते हैं फेंक दिए जाते हैं। मैं मशीन का पुर्जा नहीं मैं बदले की आग में सुलगती हुई औरत हूं।"'[18]

हेल्गा इस रुप में उसके जीवन की त्रासदियों को प्रभा खेतान ने बहुत ही करीब से देखा है। इस तरह से टूटे हुए अथवा टूटने की कगार पर खड़े घरों के वयस्क होते बच्चें खासकर वयस्क होती लड़कियों की टूटती बिखरती मनस्थिति को प्रभा खेतान ने देखा, महसूस किया और उसी रूप में अभिव्यक्त किया। हेल्गा एक ऐसी नारी है जो आर्थिक रुप से स्वतंत्र है और प्रभा खेतान को भी आर्थिक रूप से मजबूत रहने की सलाह देती हुई अपने रेस्टोरेंट मैं पार्टनरशिप में काम करने के लिए कहती है–"तो क्या हुआ ?तुम हमारा अंडरग्राउंड वर्ल्ड उसका सहयोग, तुम पांच वर्ष में कमा लोगी। बिना अपने पैरों पर खड़े हुए तुम कोई भी लड़ाई नहीं लड़ सकती।'"[19]

कैथी (कैथरिन) इस उपन्यास की सबसे मस्तमौला, खुशमिजाज स्त्री पात्र है। प्रभा खेतान को इस पात्र ने सबसे अधिक प्रभावित किया। कैथी एक ऐसी स्त्री है जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। स्वयं अपनी पहचान बनाना चाहती है, किंतु अपने पति के द्वारा व्यवसाय करने से मना कर दिए जाने के कारण कैथी स्वयं का कोई व्यवसाय नहीं कर पाती है। प्रभा खेतान कैथी से अमेरिका में मिलती है। कैथी के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने प्रभा को बहुत प्रभावित किया। कैथी अपनी जिंदगी अपने तरीके से पूरे भरपूर तरीके से जीना चाहती थी। कैथी के व्यक्तित्व के संबंध में प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा में लिखती हैं–"कुल मिलाकर पहली बार लगा कि स्वतंत्र,आत्मविश्वासी औरत से मिल रही हूं,जो प्रपात–सी झड़ती हुई जिंदगी की मिसाल है। औरत हो तो कैथी जैसी। जिंदगी जिए तो कैथी जैसी। मस्ती में कोई नाचे–गाए दोस्तों का जमघट लगाएं तो कैथी की तरह।"'[20]

कैथी अपने जीवन में अपने पति को कोई महत्व नहीं देती है। न्यूयॉर्क में धनवानों की सूची में शामिल कैथी की नजर में एक अहंकारी सूअर से अधिक कुछ नहीं। कैथी को अपने स्वयं के व्यवसाय के लिए मना करने पर कैथी अपने पति की दौलत हटाकर बर्बाद करना चाहती है। कैथी द्वारा अपने पति की दौलत को बर्बाद करते हुए देख कर प्रभा कैथी को समझाने का प्रयत्न करती हैं किंतु कैथी प्रभा की बातों से सहमत नहीं होती और प्रभा से कहती है–"एक बात बताऊं? उन पुरूषों को

जब तक तुम बड़ा नरक नहीं दिखाओगी ना, तब तक यह छोटे नरक से समझौता नहीं करेंगे।"'[21]

कैथी को लगता है कि मिस्टर ब्रेडले कैथी को अपनी पहचान बनाने नहीं देना चाहते इसलिए कैथी लगातार अपने पति को किसी ना किसी रूप में दुःख पहुंचाती है। कैथी इस पितृसत्ता की सड़ी–गली व्यवस्था को नहीं अपनाना चाहती ना ही उस की उपज बनना चाहती है। कैथी अपनी बहन एलिजा एवं अपनी मां जैसी नहीं बनना चाहती जो इस पुरुष सत्ता के अधीन अपना सिर झुका दे। कैथी एक मजबूत और स्वतंत्र स्त्री बनना चाहती है। कैथी की मां स्वयं इतनी मजबूत नहीं बन पाई किंतु अपनी बेटी कैथी से कहती है–"हम एक टूटती हुई सड़ी–गली व्यवस्था की उपज है,पर तुम कल की, भविष्य की औरत हो, तुम हमारी जैसी मत बनना, हम कमजोर हैं, स्वयं अपनी कुंठा का शिकार है, पर तुम मजबूत बनना।"'[22]

कैथी स्वयं भी अपने आपको मजबूत बनाना चाहती थी। वह किसी भी प्रकार से स्वयं को टूटने नहीं देना चाहती थी। वह स्वयं को इतना मजबूत बनाना चाहती थी कि उसे किसी भी प्रकार का शोषण नहीं सहना पड़े। कैथी कहती थी कि–"मुझे चाहिए,एक मजबूत व्यक्तित्व, जो जो सम्मान से सिर उठाकर खड़ा हो सके।"'[23]

कैथी के इस प्रकार मजबूत और स्वतंत्र बनने के रास्ते में उसके पति द्वारा अवरोध पैदा किया जाता था मिस्टर ब्रैडले कैथी को कभी स्वतंत्र व्यवसाय नहीं करने देना चाहते थे इसीलिए कैथी अपने पति को परेशान करती थी। इस संदर्भ में स्वयं कैथी प्रभा से कहती है–"बिना परेशान किए उसके पौरूष का दर्प नहीं टूटेगा। वह मुझे कहीं का नहीं छोड़ेगा।"'[24]

इस उपन्यास में प्रभा खेतान ने श्वेत अश्वेत रंगभेद के आधार पर होने वाले भेदभाव का वर्णन भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया है। कैथी एलिजा की बहन है और दोनों ही बहने नक्सलवाद की शिकार है। कैथी अपने साथ बलात्कार होने से बचने वाली घटना के द्वारा न्यूयॉर्क के खोखलेपन से परिचित करवाती हुई कहती है–"लोग जहां झूठे मोती पहनते हैं और सच्चे का एलान करते हैं, यहां के लोग इसी पत्रिका में कैरेट हवाना का जिक्र पढ़ लेंगे और पार्टी में उसी की चर्चा करते रहेंगे।"'[25]

अंततः प्रभा खेतान ने कैथरीन के माध्यम से स्त्री समाज को जाग्रत करने एवं स्वयं का स्वतंत्र अस्तित्व बनाने के लिए प्रोत्साहित किया है।

इस उपन्यास की सभी स्त्रियां जिनके पास भौतिक सुख– सुविधा के सभी साधन उपलब्ध होने के बाद भी दुखी रहती है इस संदर्भ में अंबिका सिंह वर्मा लिखती है–"सारी भौतिक समृद्धि और 'वीमेन लिव' की उद्घोषणाओं के बावजूद पश्चिमी जगत मैं स्त्री की वास्तविक स्थिति एवं सकारात्मक भूमिका क्या है? एक तरफ उसके पिछड़ी मानसिकता, उसका खोखलापन, उसका एकांकीपन, उनके स्वयं के तमाम अंतर्विरोधों से ग्रस्त जीवन की झलक इस कहानी में हम पाते हैं। तो दूसरी ओर आइलीन के माध्यम से अपने अस्तित्व के प्रति सजग,संवेदनशील और गलत समझौता न करने वाली एक संघर्षशील,दृढ़ चरित्र को हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है।"'[26]

प्रभा खेतान स्त्री जीवन की प्रथम शर्त आर्थिक स्वतंत्रता मानती है। अमेरिका जाने से पहले प्रभा अपनी प्रधानाध्यापिका से मिलती है। तब प्रभा की प्रधानाध्यापिका प्रभा की आर्थिक स्वतंत्रता वाली बात से पूर्ण सहमत न होते हुए प्रभा को पैसो के पीछे नहीं भागने की सलाह देती है, और कम पैसों में ही जीवन यापन करने की सलाह देती है। इस बात का जवाब देती हुई प्रभा खेतान कहती है–"नहीं, मेरी लड़ाई इसी समाज से चलेगी। आप नहीं जानती बहन जी, औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पास में निहित है।"'[27]

'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में प्रभा खेतान ने नारी संवेदना को आधार बनाकर भारतीय ही नहीं अपितु वैश्विक स्तर की स्त्रियों के जीवन की सच्चाई को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। वैश्विक स्तर पर होने वाले पारिवारिक विघटन, संबंध हीनता, पति–पत्नी की टकराहट में टूटते पिसते बच्चे, भोग विलास की लालसा एवं संवेदन शून्यता की पीड़ा को बड़े ही प्रामाणिक एवं गहन अनुभूति के साथ वर्णित किया है और इसमें यह एक सफल उपन्यास रहा है।

तालाबंदी (1991)

'तालाबंदी' उपन्यास व्यावसायिक जगत की कथा को बयां करता है।प्रभा खेतान के अधिकांश उपन्यासों के केंद्र में स्त्री दिखाई देती है। स्त्रियों से जुड़े सवाल, उनकी संवेदना , उनकी व्यथा आदि प्रभा खेतान के उपन्यासों में दिखाई देती है। तालाबंदी उनका एकमात्र ऐसा उपन्यास है जो व्यापार जगत की उठा–पटक,निजी प्रबंधन एवं मजदूरों के मध्य आपसी टकराहट, तनाव, पारिवारिक कलह, पिता पुत्र के संबंधों में संघर्ष, मारवाड़ी समाज की व्यावसायिक क्षेत्र में होने वाली समस्याओं को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में प्रभा खेतान ने व्यापार जगत की नीतियों को उपन्यास के पात्र श्याम बाबू के माध्यम से प्रस्तुत किया है।उपन्यास में नायक श्याम बाबू स्वयं प्रभा खेतान है। प्रभा खेतान ने चमड़ा व्यवसाय के क्षेत्र में रहकर जिन व्यापार की नीतियों को समझा और मालिक– मजदूर के आपसी संबंध, आपसी टकराहट एवं संघर्ष को देखा उन सभी परिस्थितियों को दिखाने का प्रयास किया है। प्रभा खेतान ने चमड़ा व्यवसाय के क्षेत्र में अपनी एक पहचान बनाई है। व्यावसायिक क्षेत्र में रहकर व्यवसाय से संबंधित नीतियों एवं समस्याओं को प्रभा खेतान ने बहुत ही बारीकी से देखा है। अपने व्यवसायिक क्षेत्र में रहते हुए अपने अनुभवों को इस उपन्यास में श्याम बाबू के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान ने अपने इस उपन्यास के संदर्भ में अपनी आत्मकथा में लिखा है कि–"'तालाबंदी' मेरे व्यापारिक जीवन की घटना थी किंतु उस घटना को मैं उपन्यास नायक श्याम बाबू के माध्यम से कह रही थी।"'[28]

प्रभा खेतान ने अपने जीवन में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। व्यावसायिक क्षेत्र में जाकर उन्होंने यह साबित किया है कि स्त्रियां भी अपना स्वयं का व्यवसाय कर सकती है। व्यावसायिक क्षेत्र में केवल पुरुष ही काम कर सकते हैं ऐसी धारणा को प्रभा खेतान खारिज करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि स्त्रियां किसी भी क्षेत्र में पुरुषों के बराबर काम कर सकती है। स्त्रियां स्वतंत्र रूप से अपना कोई भी व्यवसाय कर सकती हैं। प्रभा खेतान ने व्यावसायिक क्षेत्र में कभी धन को बहुत अधिक महत्व ना देकर मजदूरों की संवेदना, उनके संघर्ष, उनके सहयोग, को महत्व दिया है। प्रभा खेतान की संवेदना हमेशा मजदूरों के साथ

जुड़ी रही है। प्रभा खेतान के उपन्यास के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि–" 'तालाबंदी' में प्रभा खेतान ने निजी प्रबंध और मजदूरों के परस्पर विरोधी हितों के टकराव और उससे उत्पन्न तनाव का रोचक और विश्वसनीय रूप में चित्रण किया है। इस टकराव में लेखिका की सहानुभूति मजदूरों के प्रति है, पर उन्होंने बहुत तर्कसंगत और मानवीय सहानुभूति के साथ प्रबंधन और मजदूर वर्ग के हितों के टकराव को समझने की कोशिश की है।"'[29]

प्रभा खेतान के उपन्यास में ऐसे कट्टर मारवाड़ी समाज की हकीकत बयां करती है जो अपनी नीतियों, मूल्यों और परंपराओं के अधीन जीते हैं। श्याम बाबू का जीवन एक ऐसे परिवार में गुजरता है जहां सदैव आर्थिक तंगी होती है। श्याम बाबू के पिता मुनीम गिरी का कार्य करते थे जिनकी बहुत अधिक आमदनी नहीं थी। कम आमदनी होने के कारण परिवार का गुजारा करना बहुत मुश्किल होता था।आर्थिक तंगी से बचने के लिए श्याम बाबू अपने पिता की भांति मुनीम गिरी का कार्य नहीं करना चाहते। इसलिए श्याम बाबू मुनीम गिरी का कार्य करने के लिए इनकार कर देते है। श्याम बाबू एक मेहनती व्यक्ति हैं और जीवन में आगे बढ़ने की आकांक्षा रखते हैं। श्याम बाबू अपना स्वयं का एक व्यापार शुरू करते हैं। व्यापार धीरें–धीरें सफलता की सीढ़ियां चढ़ता हुआ आगे बढ़ता है। व्यापार सफल होने पर श्याम बाबू के पास काफी संपत्ति जमा हो जाती है। अधिक संपत्ति के लालच में श्याम बाबू अपने परिवार से धीरे–धीरे दूर होते चले जाते हैं जिसका एहसास उन्हें नहीं हो पाता। अपने परिवार को अधिक से अधिक सुविधा देने के लिए अधिक से अधिक धन कमाने की लालसा उन्हें अपने परिवार के लोगों से दूर करती है उन्हें अपना दो कमरों का मकान छोटा दिखाई देने लगता है उन्हें वहां रहने की इच्छा नहीं होती ।इस संदर्भ में श्याम बाबू कहते हैं–"बरामदे को चौका बनाया हुआ था। पाखाना ,नहान घर सब सांझ के बाड़ी में दिन–रात आपस में किच–पिच बच्चों की चिल्ल पों।''[30]

श्याम बाबू अपने व्यापार में जितने सफलता प्राप्त करते हैं उतने ही अपने परिवार से दूर होते चले जाते हैं।उनके पास इतना समय नहीं होता है कि वह अपने परिवार को समय दे पाए। इसी बीच फैक्ट्री के मजदूरों एवं यूनियन के होने वाले संघर्ष की कथा प्रारंभ होती है। वर्षों से फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूरों में

कम्युनिस्टों के मजदूर संगठन 'सीटू' (सेंटर फॉर इंडियन ट्रेड यूनियन) की स्थापना होती है। श्याम बाबू एवं मजदूर यूनियन के मध्य संवाद का कार्य यूनियन अध्यक्ष शेखर करते हैं। सीटू यूनियन की सहायता से फैक्ट्री में काम अच्छा चलता है और फैक्ट्री सफल भी होती है। श्याम बाबू के मन में फैक्टरी का मालिक बनने की लालसा जाती है इसीलिए वे मार्क्सवाद को पढ़कर लेबर पॉलिसी को गहराई तक समझने का प्रयत्न करते हैं।मालिक बनने की चाह में वे यूनियन अध्यक्ष शेखर पर शक करने लगते हैं।

श्याम बाबू फैक्ट्री में मजदूरों से सीधा संवाद स्थापित करने की कोशिश करते हैं। वे चाहते हैं कि यूनियन में किसी भी तरह की फूट पैदा नहीं हो और पूरी यूनियन उनके मतानुसार चलें। परिणाम स्वरुप यूनियन एवं फैक्ट्री के मजदूर लोग श्याम बाबू से नाराज हो जाते हैं और मजदूर लोग सीटू यूनियन के साथ–साथ अपनी एक अलग यूनियन' हिंद मजदूर' की स्थापना करते हैं। श्याम बाबू अपनी की गई गलती में स्वयं फंस जाते हैं। जिसके कारण फैक्ट्री में तालाबंदी की नौबत आ जाती है। श्याम बाबू का मजदूरों के साथ आपसी संबंध बिगड़ने लगते हैं। जिसके कारण श्याम बाबू एवं मजदूरों के बीच दूरियां पैदा हो जाती हैं। मालिक बनने की चाह श्याम बाबू को फैक्ट्री के लोगों से अलग करती है इस बात का एहसास होने पर श्याम बाबू बहुत दुःखीहोते हैं और कहते हैं–"मैं अपने ही मजदूरों से दूर होता जा रहा हूं। शेखर दा ने तो फैक्ट्री संभाल रखी थी। गलती मेरी हुई।मैंने उनका नेतृत्व छीनकर अपने आप को स्थापित करने की चेष्टा की। यह भूल गया कि, मैं एक विशिष्ट वर्ग का प्रतीक हूं। मैं अकेला चाहे कितना भीभला होने की चेष्टा करूँ, लगा मेरे नाम के साथ तो शोषण की परंपरा जुड़ी हुई है। मैं, मैं नहीं, एक वर्ग हूं। मजदूरों को मेरी उदार नीति पर भरोसा नहीं हो सकता।"'[31]

श्याम बाबू फैक्ट्री बचाने के लिए उसी सीटू यूनियन के पास जाते हैं जिसके वर्चस्व को वे समाप्त करना चाहते थे। सीटू यूनियन की सहायता से मध्य ग्राम में नई फैक्ट्री लगाकर मजदूरों को काम पर लगा कर भी स्वयं को एवं फैक्ट्री को बचा लेते हैं। इस घटना से श्याम बाबू के जीवन में काफी बदलाव आते हैं। प्रभा खेतान जो श्याम बाबू के रूप में उपन्यास में उपस्थित है इस घटना के संदर्भ में अपनी आत्मकथा में कहती है– "इस पूरे जद्दोजहद को मैंने झेला,झेलते हुए खुद मुझ

मेंपरिवर्तन हुआ, श्रमिक की भाषा अलग होती है और मालिक वर्ग की अलग। हालांकि उस दौर में हमें भी तालाबंदी करनी पड़ी।तीन–चार महीने बाद कारखाने वापस खुले।साथ ही मुझ यूनियन की भूमिका भी समझ में आई। यह भी समझ में आया कि श्रमिक एकवर्ग है, पहले उसके वर्ग चरित्र को ठीक से समझना पड़ता है अन्यथा व्यक्ति श्रमिक को समझना कठिन होता है।"'[32]

प्रभा खेतान अपने इस उपन्यास में श्रमिक वर्ग के साथ खड़ी हुई नजर आती है।वे सर्वहारा वर्ग के श्रम को महत्व देती है। इस उपन्यास में प्रभा खेतान का उद्देश्य समाजवाद की स्थापना करते हुए रामराज्य की स्थापित करना है। प्रभा खेतान के इस उद्देश्य के संदर्भ में डॉ उषा राणावत कहती हैं–"इस प्रकार व्यवसाय जगत की उठापटक और समाजवाद लाने की प्रक्रिया में मालिक– मजदूर के बीच रामराज्य की कल्पना को साकार करने हेतु लिखा यह छोटा सा उपन्यास आजाद भारत में समाजवाद के स्वप्न को कैसे साकार किया जा सकता है, सार्थक प्रयास का संकेत करता है।"'[33]

मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित प्रभा खेतान एक ऐसे समाज का स्वप्न देखती है जहां समाजवाद हो। उस समाज में अमीर –गरीब, मालिक–मजदूर का रिश्ता ना रहकर मानवीय रिश्तों को बढ़ावा मिले। उनके व्यापारिक जगत की उठापटक के साथ–साथ मानवीय रिश्तों की गूंज भी सुनाई देती है।

'तालाबंदी' उपन्यास में व्यावसायिक जगत के उतार–चढ़ावों के साथ–साथ पारिवारिक संबंधों के मध्य संघर्ष, पिता–पुत्र के संबंधों में तनाव, पति पत्नी के रिश्तों में नीरसता जैसी समस्याओं को भी दिखाया है। श्याम बाबू अपने पिता की भांति मुनीम का कार्य नहीं करना चाहते थे इसलिए अपना स्वयं का व्यापार शुरु करते हैं अधिक से अधिक सफलता मिलने पर एवं अधिक से अधिक धन कमाने की लालसा के कारण परिवार के रिश्तो में दूरियां जाती है। श्याम बाबू की मां अपने बेटे को श्रवण कुमार समझती है किंतु अधिक धन कमाने की लालसा के कारण उनकी मां को लगता है कि बेटे के पास परिवार के लोगों के पास बैठने का समय नहीं है। श्याम बाबू अपनी पत्नी सुमित्रा को किसी प्रकार का सुख नहीं दे पाते हैं। सुमित्रा अपने पति के पास दो घड़ी बैठने के लिए भी तरस जाती है।श्याम बाबू अपनी पत्नी को शारीरिक एवं मानसिक किसी भी प्रकार का सुख नहीं दे पाते परिणाम

स्वरुप दोनों के संबंधों में नीरसता आने लगती है। श्याम बाबू अपने बेटे की तरफ भी ध्यान नहीं दे पाते जिसके कारण पिता पुत्र के संबंध में मधुरता नहीं रहती। दोनों के संबंधों में तनाव उत्पन्न होने लगता है। श्याम बाबूइस बात को भली भांति जानते हैं कि उनकी बहन और भतीजा दोनों ही संपत्ति के लालच में उनसे जुड़े होते हैं। इस सच को जानते हुए भी वह चुप रहते हैं।दिनों दिन अपने परिवार से बढ़ती दूरियां एवं बिगड़ते हुए संबंध नजर आते हैं। श्याम बाबू की इस स्थिति को देखते हुए डॉ.बाबा साहब कोकाटे कहते हैं– "मूल्यबोध में परिवर्तन आने पर और महासागर के जीवन की बाध्यताओं के कारण संबंधों के ढांचे में भी परिवर्तन आने लगता है। हर व्यक्ति अपनी रोजी–रोटी के चक्कर में ही इतना व्यस्त रहता है कि ,उसे परिवार के साथ ही कुछ पल बिता पाने का समय नहीं मिलता। ऐसे में नाते–रिश्तेदार तो कहीं बहुत पीछे छूट जाते हैं। व्यक्ति उन्हें संबंधों में जीने लगता है जो मजबूरीवश बन जाते हैं। उसकी दुनिया घर और दफ्तर के बीच सिमट कर रह जाती है। पति–पत्नी अपनी अपनी व्यस्तताओं के कारण मिल नहीं पाते। अतः संबंधों में ठंडापन आ जाता है।'"[34]

श्याम बाबू का परिवार होने के बाद भी उस परिवार में संबंधों में तनाव का माहौल होता है। परस्पर दूरियां, विचारों की भिन्नता, स्वार्थ की भावना उनके परिवार में दिखाई देती है।इन सभी का एकमात्र कारण धन को माना जाता है क्योंकि अधिक धन कमाने की लालसा में व्यक्ति परिवार को समय नहीं दे पाता इस कारण सभी पारिवारिक संबंधों में दूरियां आ जाती है। श्याम बाबू को अपने पारिवारिक रिश्तों में दूरियां ,संघर्ष, तनाव की स्थिति दिखाई देती है तब बहुत अधिक दुखी होते हुए श्याम बाबू अपने मार्क्सवाद पढ़ाने वाले मास्टर हरिनारायण चट्टोपाध्याय की बात याद करते हैं–"अर्थ की व्यवस्था सारे मानवीय संबंधों को घुन की तरह खा जाती है।"'[35]

सारांश ग्रुप में प्रभा खेतान के उपन्यास के संदर्भ में कहा जा सकता है कि प्रभा खेतान ने इस उपन्यास में एक और व्यापार जगत की यथार्थता को प्रस्तुत किया है तो वहीं दूसरी और व्यापार में धन की अधिकता से पारिवारिक संबंधों में आयी दूरियां, आपसी संबंध विच्छेद जैसी समस्या को बताने का प्रयास किया है।

अग्निसंभवा (1992)

अग्निसंभवा प्रभा खेतन द्वारा रचित हांग कांग की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र है– आइवी युंग। यह सम्पूर्ण उपन्यास आइवी के जीवन को केंद्र में रखकर लिखा गया है। इस उन्यास में आइवी के जीवन की उन सभी घटनाओं का वर्णन किया गया है जिनका सामना आइवी अपने जीवन में करती है। आइवी एक ऐसी स्त्री पात्र है जो जीवन में अनेक विषम परिस्थितियाँ आने के बाद भी कभी निराश–हताश नहीं होती। अपना जीवन पूर्ण ईमानदारी से जीने में विश्वास करती है। दूसरे हक की रोटी छीनने, बेईमानी से पैसा कमाने में आइवी विश्वास नहीं करती है। आइवी एक गरीब किसान की तलाकशुदा बेटी है। जो चीन से भागकर हांगकांग आती है और टैक्सी चलाकर अपना व अपने बेटे का पालन–पोषण करती है।

इस उपन्यास की एक विशेषता यह है कि इस उपन्यास में स्त्री की छवि को नये रूप में वर्णित किया गया है वह स्त्री ना तो कोई अबला नारी है और ना ही बाजार में कोठे पर काम करने वाली बाजारू औरत है। वह स्त्री ना तो कोई स्वयं आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और स्वावलंबी है। प्रभा खेतान यहाँ आइवी की ही विशेषता बता रही हैं।

आइवी चीन की तानाशाही, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, गरीबों के आर्थिक शोषण से परेशान होकर चीन से भागकर हांगकांग आ जाती है और फर्जी नाम से टैक्सी ड्राइवर का काम करके पैसा कमाती है। आइवी अपनी टैक्सी से बहुत अधिक धन नहीं कमा पाती। वह अपनी टैक्सी से उतना ही पैसा कमा पाती है जिससे अपना अपने बेटे का जीवन निर्वाह हो सके। इसी कारण आइवी अपना हांगकांग का वीजा भी नहीं बनवा पाती है।

प्रभा खेतान इस उपन्यास में आइवी के माध्यम से चीन की राजनीतिक उथल–पुथल को बताते हुए वहाँ की स्त्रियों की स्थिति,उनके संघर्षमय जीवन को भी बताने का प्रयास करती है। इस उपन्यास में प्रभा खेतान ने आइवी के संघर्षमय जीवन का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है ।आइवी के जीवन के संबंध में डॉ.उषा कीर्ति राणावत कहती हैं कि "आइवी अपनी अस्मिता की सीमाओं का अतिक्रमण

कर धुआँ रहित अग्नि की लपटों को अपने भीतर स्वीकारती है। प्रज्ज्वलित होकर एक नए हाशिए पर एक भिन्न प्रकार का आकार बनाती जाती है।'"[36]

आईवी ने हांगकांग आकर सबसे पहले एक टैक्सी ड्राइवर का कार्य प्रारंभ किया प्रारंभ किया और स्त्री होने के नाते आईवी ने ड्राइवर का कार्य बड़ी सहजता और आसानी से किया। आईवी एक हिम्मत वाली स्त्री थी अपने साहस और ईमानदारी के कारण ही वह टैक्सी का काम बड़ी कुशलतापूर्वक करती थी। प्रभा खेतान जब आईवी से पहली बार मिलती है तब प्रभा आईवी के पेशे से संबंधित कुछ पूछते हुए कहती है "आईवी ऐसे एरिया में आने में तुम्हें हिचक नहीं हुई ? क्यों हिचक कैसी ? यही यानि किसी की बुरी नजर तुम पर यदि पड़ती।"'[37]

प्रभा द्वारा इस प्रकार की बातें कहना आईवी को पसंद नहीं आता है और आईवी प्रभा की बातों का जवाब बड़े जोश के साथ देती हुई कहती है कि "तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई मुझसे यह बात कहने की। आइवी ने हमेशा से निर्भीकता और बहादुरी से काम किया। वह मर्दों के क्षेत्र में घुसपैठ करती है लेकिन घबराती नहीं है क्योंकि वह अपनी मेहनत पर विश्वास करती है तथा किसी की बिना वजह सहायता लेना पसंद नहीं करती है।'[38]"

आईवी का मानना है कि मेहनत करके दो वक्त की रोटी का इंतजाम किया जा सकता है। इसके लिए औरत को अपना शरीर बेचने की जरूरत नहीं है। अपना शरीर बेचना कोई मजबूरी नहीं हो सकती। एक इंसान इतनी मेहनत तो कर ही सकता है कि वह अपना जीवन निर्वाह कर सकें। आईवी को उन बाजारु औरतों पर गुस्सा आता था जो स्वयं कोई मेहनत नहीं करना चाहती। सब कुछ बिना मेहनत के पाना चाहती है। आईवी स्वयं मेहनत करती है इसलिए आईवी को ऐसी औरतें बिल्कुल पसंद नहीं है इन औरतों के संबंध में आईवी प्रभा से कहती है कि "मुझे तो इन गर्ली बार में शरीर बेचती हुई औरतों को देखकर गुस्सा आता था मैं तो खट कर खा रही थी।"'[39]

आईवी ने अपने जीवन में बहुत संघर्ष किया है और संघर्ष करते हुए ही मेहनत करके अपने जीवन निर्वाह की सीख ली है। आईवी किसी का एहसान लेना पसंद नहीं करती। उसका मानना है कि स्त्रियों को स्वयं को मजबूत बनाना चाहिए। जब तक स्त्री स्वयं मजबूत इरादों वाली नहीं होगी तब तक वह सुरक्षित नहीं है।

स्त्री अपनी रक्षा स्वयं कर सकती है इसके लिए उसे स्वयं को हर परिस्थिति में ताकतवर बनाना होगा। तभी उसका कोई शोषण नहीं कर सकता। आईवी स्त्रियों की स्थिति पर बात करते हुए प्रभा से कहती है कि "नहीं, यदि औरत अपने को नीचे न गिराए तो दुनिया में किसी की हिम्मत नहीं की उसके कंधे पर हाथ रख दे।"[40]

आईवी एक ओर ऐसी औरतों से नफरत करती है जो अपना शरीर बेचती है। वहीं दूसरी ओर आईवी पुरुष जाति से भी नफरत करती है। आईवी पुरुषों से अधिक जानवरों पर विश्वास करना अधिक उचित समझती है। आईवी का मानना है कि पुरुष जाति लोभ व वासना में लिप्त होकर धूर्त बन जाता है। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए वह किसी भी हद तक गिर सकता है। उस का व्यवहार संतुलित नहीं रहता। आईवी किसी भी परिस्थिति में किसी भी पुरुष से सहायता नहीं लेती है। वह स्वयं को मजबूत बनाती है और किसी भी परिस्थिति में अपना शोषण नहीं होने देती। आईवी का स्त्री जीवन के संबंध में विचार है कि "औरत खुद ही ऐसी परिस्थितियों को जन्म देती है कि लोगों उसे बेचारी कहें और उसका शारीरिक व मानसिक शोषण करें। औरत यदि आत्मनिर्भ रहेगी, आत्मविश्वास से भरी हुई होगी तो कोई उसकी तरफ देख भी नहीं सकता। शरीर बेचना भी धंधा कहलाता है, पूंजीवादी समाज की सबसे घिनौनी देन बादशाहों की रखैलों से लेकर गर्ली बार में बैठी हुई औरतों से मुझे सख्त नफरत है, फिर अपना पेट बजाते हुए, इस पेट में कितना चावल समायेएगा बोलो ? इस शरीर को ढकने के लिए कितना गज कपड़ा चाहिए ? बकवास, ये औरतें यह क्यों नहीं कहती है कि हमसे मेहनत नहीं होती।"'[41]

आईवी कहती है कि स्त्रियों को अपना शरीर बेचने की बजाए मेहनत करके अपना जीवन यापन करना चाहिए। आईवी जैसी ईमानदार महिला से मिलने के पश्चात प्रभा खेतान को इस बात का आभास होता है कि आईवी एक सशक्त, आत्मविश्वासी, स्वावलंबी स्त्री है जो जीवन में किसी के सामने हाथ नहीं जोड़ना चाहती। आईवी स्त्री पुरुष के मध्य किसी भी कार्य को लेकर कोई भेदभाव नहीं करती। आईवी कभी ऐसा नहीं सोचती कि मैं एक स्त्री हूं और एक स्त्री होने के नाते यह कार्य नहीं कर सकती। आईवी एक स्त्री होने के बाद भी चीन से भागकर

हांगकांग आने के बाद भी एक ड्राइवर का कार्य करती है और अपने आप को सुरक्षित रखती है। प्रभा आईवी की जिंदगी को गहराई से समझने की कोशिश करती है और प्रभा के मन में विचार आते हैं कि "आज तो कितनी चीजों को देख कर अनदेखा करती हूं। चुनौतियों से बच कर चलती हूं, उनकी कीमत भी चुकाई है औरतपने का हीन–भाव, पुरुषों की दुनिया में बार–बार अपना और चित्र स्थापित करना चाहती रही है। क्या मैं औरत हूं इसलिए यह काम नहीं करुंगी ?करके दिखा दूंगी, दिखाया भी।"'[42]

प्रभा खेतान ने स्वयं उद्योग जगत में एक सफल व्यापारी के रूप में स्थापित किया। उन्होंने भी व्यापारिक जगत में ऐसी बहुत सी चुनौतियों का सामना किया जो उन्हें आगे बढ़ने से रोकती रही।व्यापार में पुरुषों का स्वामित्व होने पर भी प्रभा ने कभी भी स्त्री होने के कारण अपने कदम पीछे नहीं हटाए, ना ही अपने मन में किसी भी प्रकार की निराशा, हीन भावना को पैदा होने दिया। उन्होंने समाज में स्त्री–पुरुष विषमता की खाई को मिटाकर प्रत्येक क्षेत्र में अपना औचित्य स्थापित किया। आईवी से मिलने के पश्चात जीवन में धन कितना महत्व रखता है, इसकी अहमियत को जाना। आईवी कभी पैसों के पीछे नहीं भागी। पैसों के संबंध में आईवी प्रभा से कहती हैकि "गरीब को डॉलर चाहिए, तुम्हारी थपकियां नहीं।"'[43]

टैक्सी चलाने के दौरान ही आईवी, प्रभा खेतान, मि.शिव और मि. डिक्रे से मिलती है। प्रभा खेतान अपना पर्स आईवीकी टैक्सी में ही भूल जाती है जिसमें प्रभा का पासपोर्ट, रुपए सब कुछ होता है। आईवी ईमानदार होने के कारण प्रभा को ढूंढती है और नाथन रोड स्थान पर प्रभा को पर्स लौटाती है आईबी को इस की इस इमानदारी से प्रभावित होकर मि. डिक्रे मदद करने के लिए तैयार होते हैं लेकिन आईवी उनकी मदद लेने से इंकार कर देती है और कहती है कि उसे हराम का पैसा नहीं चाहिए वह स्वयं कमाने में विश्वास करती है। वह स्वयं ईमानदारी से जीवन जीती है। मेरी मां बेईमान बेईमानी उसे बिल्कुल पसंद नहीं। ''आप इंग्लिश हो या डच या जर्मन, चमड़ी का रंग सफेद है और हर सफेद चमड़ी वाले का दिल काला होता है। आप लोगों ने हमारे देश का शोषण किया और अब रहम दिखा रहे हो।"[44]

आईवी सोचती है कि मि.डिक्रे उसकी मदद करके उसे उसका शोषण करना

चाहते हैं इसलिए आईवी मि. डिक्रे की सहायता स्वीकार नहीं करती। लेकिन मि. डिक्रे एवं मि.शिव के समझाने एवं विश्वास दिलाने पर आइवी मि.डिक्रे पर विश्वास करती है और आईवी को मि.डिक्रे की कंपनी में सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। सेक्रेटरी के पद पर पूरी ईमानदारी से काम करते हुए आईवी मि. शिव की बेईमानी का पर्दाफाश करती है। आईवी कम पढ़ी लिखी होने के बाद भी अपनी तेज बुद्धि से इस बात का अनुमान लगा लेती है कि पिछले छः महीनों से मि.शिव कंपनी को व्यापार में चूना लगा रहे हैं। कंपनी में काम करते हुए आईवी को वह फाइल मिल जाती है जिसमें मि.शिव ने कंपनी को कितने हजार डॉलर का नुकसान करवाया और जो कंपनी के नियम बनाए गए वे सभी नियम मि.शिव द्वारा बदल दिए गए। मिस्टर शिव की फाइल को पढ़ते हुए आईवी काफी आश्चर्यचकित होती है।"फाइलों को उलटते–पलटते एक लाइन फाइल को देख आई वी की आंखें चमक उठी। मुस्कान की एक पतली लहर उसके होठों के किनारे तक फैल गई। उसने फाइल के कागजों को पलटना शुरू किया, रात ही मेज पर रखे केलकुलेटर में उसका जोड़–घटाव चलता रहा।"[45]

मि. शिव द्वारा कंपनी को घाटा पहुंचाने,व्यापार में नुकसान करके स्वयं का फायदा करने की शिकायत आईवी मि. ड़िक्रे से करती है। आईवी की ईमानदारी और बुद्धिमता से प्रभावित होकर मि. ड़िक्रे मि. शिव को कंपनी के मैनेजर के पद से हटा देते हैं और उस पद पर आईवी को नियुक्त किया जाता है। आईवी जो एक गरीब किसान की बेटी होने एवं अपने वैवाहिक जीवन में कभी पति का सुख नहीं मिल पाने पर अपने पति से अलग हो जाने की पीड़ा को सहा है। चीन से भागकर हांगकांग आना और मैनेजर के पद पर पहुँचने तक का सफर बहुत संघर्षमय रहा है। आइवी के भीतर एक ऐसी चेतना थी जो उसे ईमानदारी से जीवन जीने, संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती रही। स्वयं को कभी हताश नहीं होने दिया। प्रभा खेतान व्यापार के सिलसिले में पुनः हांगकांग आने से पहले आईवी को फोन करती है। प्रभा द्वारा फोन करने पर आइवी इस अंदाज में जवाब देती है–"मैं आइवी युंग हांगकांग ब्रांच कीमैनेजर बोल रही हूं।"[46]

आइवी का इस भांति जवाब सुनकर प्रभा आश्चर्यचकित रहती है क्योंकि आइवी का इस पद पर पहुंचना बहुत ही मुश्किल था। आइवी बहुत ही

आत्मविश्वासी और संघर्षशाली स्त्री थी और फोन पर आइवी की आवाज में वह आत्मविश्वास दिखाई दे रहा था। हांगकांग पहुंचने के पश्चात् प्रभा आइवी को पहचान नहीं पाती क्योंकि मैनेजर के पद पर नियुक्त होने के बाद आइवी का रहन–सहन बदल चुका था। वह पहले की अपेक्षा अधिक सुंदर दिखाई देने लगी थी। आइवी को देखने के पश्चात् प्रभा महसूस करती है कि "ऐसा कायाकल्प कि मैं तो पहचान ही नहीं पाई थी वह खुद ही भीड़ से निकल कर गले लगी। प्राफा तुम दो साल तक कहां थी हांगकांग क्यों नहीं आई?"[47]

आइवी प्रभा से मिलकर बहुत खुश होती है वह प्रभा को अपने लिए बहुत भाग्यशाली मानती है क्योंकि प्रभा के कारण ही वह मि. ड़िक्रे से मिलती है और वही आइवी मि. ड़िक्रे की कंपनी में ब्रांच मैनेजर के पद पर नियुक्त होती है ब्रांच मैनेजर के पद पर पहुंचने के बाद भी आईवी अपने जीवन को पूर्ण ईमानदारी एवं संघर्ष के साथ जीती है।आईवी अपने जीवन के उसूलों के विरुद्ध जाकर कभी कोई काम नहीं किया। वह सदैव मेहनत करके कमाती है।और दूसरों के पेट की रोटी पर लात नहीं मारती। आईवी ने अपने जीवन में संघर्ष करते हुए जिंदगी के हर पल को बहुत ही करीब से देखा है। इसलिए उसे दुनिया में हर तरह का ज्ञान था। व्यापार के सिलसिले में प्रभा खेतान हांगकांग आती है आईवी के साथ व्यापार के लिए जाती है। प्रभा तुर्की स्टाल से एयरपोर्ट एक चमड़े का कोट सैंपल के लिए लेना चाहती है अधिक कीमत होने के कारण नहीं लेने की सोचती है। उस समय आईवी प्रभा को वह कोट मिसेज जोसेप बनकर पांच सौ डॉलर में दिलाती है। इस भांति तुर्की स्टाल वालों को बेवकूफ बनाते कोट कम कीमत में लेने पर और आईवी की इस हरकत पर प्रभा नाराज होती है। प्रभा की नाराजगी दूर करते हुए आइवी प्रभा से कहती है कि "सुनो प्रभा व्यापार की दुनिया में तुम नई नहीं हो। यहां झूठ सच कुछ नहीं होता प्रॉफिट का अर्थ हुआ एक–दूसरे की अज्ञानता का फायदा उठाना।"'[48]

आईवी इस प्रकार तुर्की स्टाल वालों को बेवकूफ क्यों बनाती है इसका कारण बताते हुए प्रभा से कहती है कि –"व्यापार में झूठ सच कुछ नहीं होता, सब चलता है। अगर उनको (तुर्की) यह पता होता कि आप हिंदुस्तानी हैं और सैंपल के लिए यह कोट ले रही है तो वे कभी भी नहीं देते। उन्हें बेवकूफ बनाकर ही तो

मैं यह कोट लेकर आई हूं। झूठ सच को कोई नहीं मानता।'"[49]

इस प्रकार आईवी की व्यापार में अपनी बुद्धि के बलबूते इतनी दूर दृष्टि रखना, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार में पुरुषों को भी मात देती है। आईवी इस भांति सोचना, कदम उठाना प्रभा खेतान को बहुत प्रभावित करता है।आईवी का इस भांति निर्भरता के साथ किसी भी स्थान पर बिना हिचक के चले जाना उसकी सफलता एवं उसकी बहादुरी का ही प्रतीक है।

आईवी ने अपने जीवन में संघर्ष करते हुए कितनी ही सफलता अर्जित क्यों न की हो किंतु वह एक इंसान भी है और इंसानियत का है उसके अंदर कूट कूट कर भरा हुआ था। मि. शिव को कंपनी के द्वारा बाहर निकाल दिए जाने एवं उनके पत्नी के कैंसर हो जाने के पश्चात वह मिस्टर शिव के बेटे को अपने पास रखती है। उन्हें जीवन जीने की प्रेरणा देती है। आईवी स्वयं भी एक मां है अपने बेटे के खोने का गम वह कभी नहीं भूलती है। अपने बेटे का चीन की क्रांति में मारे जाने पर वह बिल्कुल अकेले पड़ जाती है। अपने बेटे को खोने का गम कभी अपने दिल से नहीं निकाल पाती। अपने बेटे को याद करते हुए आइवी प्रभा खेतान के सामने मां के रूप में रोते हुए कहती है कि "बेटे की मौत का दुःख असहनीय होता है। जिसकी पीड़ा वह हर कहीं छोड़ना चाहती है ताकि उसके बेटे को याद रखा जाए। चेष्टा, माई डियर प्रभा युंग चेष्टा ही करना बताती है।"'[50]

आईवी के भीतर एक मां का हृदय जो अपने बेटे को याद करते हुए भर आता है। वह आज भले ही अपने जीवन में एक मुकाम तक पहुंच गई हो लेकिन एक स्त्री के भीतर मां की ममता कभी खत्म नहीं होती है। वह अपने बेटे को बहुत याद करती है और बेटे की याद में रोते हुए अपनी पीड़ा अभिव्यक्त करती हुई कहती है कि—"मैं चीखू इतनी जोर से, ताकि दुनिया मेरी पीड़ा समझे मैं अपने दुख को समुंद्र की लहरों पर सवार होकर वहां पहुंचाना चाहती हूं जहां मेरे दर्द को कोई समझ सके, सब भूल जाते हैं, सब लोग, कोई तो मेरे बच्चे को याद नहीं करता।''[51]

इस उपन्यास के माध्यम से प्रभा खेतान वैश्विक धरातल पर चीनी स्त्री के संघर्ष की दिखाते हुए, चीन की राजनीतिक और समाजवाद के नाम पर चलने वाली तानाशाही, भ्रष्टाचार और शोषण की व्यवस्था को उजागर किया है।आईवी के माध्यम से एक चीनी स्त्री का संघर्ष जो एक किसान की बेटी से लेकर हांगकांग

की मैनेजर के पद पर नियुक्त होने तक का सफर तय करती है और अपना वर्चस्व स्थापित करती है। प्रभा खेतान यह भी बताना चाहती है कि स्त्री में एक देवी शक्ति का निवास होता है। जो स्त्री अपने जीवन में कुछ करने की ठान ले तो मारवाड़ी समाज की स्त्री हो यह फिर चीनी परिवार की स्त्री हो। संघर्ष करते हुए अपना अस्तित्व समाज में बना ही लेती है।

छिन्नमस्ता (1993)

प्रभा खेतान 'छिन्नमस्ता' उपन्यास एक ऐसी विद्रोही स्त्री पर आधारित है जो अपने परिवार, समाज के शोषण को न सह कर उनके सामने चुनौती बन कर खड़ी होती है। प्रिया इस उपन्यास की मुख्य नारी पात्र है। अन्य पात्र प्रिया के इर्द–गिर्द घूमते हैं। प्रिया अपनी स्वयं की एक अलग पहचान बनाती है और अपनी अस्मिता के लिए निरंतर संघर्ष करती है। उपन्यास को पढ़ते हुए लगता है कि यह प्रभा खेतान की जीवन की कहानी है लेकिन इस उपन्यास में प्रिया की शादी से पहले की कथा प्रभा खेतान की ही है और शादी के बाद की कहानी प्रिया की है। उपन्यास की इस कथा के संबंध में डॉ.राणावत लिखती हैं कि–"छिन्नमस्ता जिसे प्रारंभ में उनकी आत्मकथा समझ लिया गया लेकिन यह पूरी कहानी उनकी अपनी आत्मकथा नहीं है। विवाह पूर्व तक की घटनाएं उनकी अपनी भोगी व्यथा–कथा है।''[52]

छिन्नमस्ता उपन्यास मारवाड़ी समाज की है स्त्रियों के शोषण को केंद्र में रखकर लिखा गया है। प्रभा खेतान स्वयं मारवाड़ी समाज की थी और उन्होंने अपने घर, अपने समाज में स्त्रियों को शोषित होते देखा है। वे स्वयं अपने परिवार में शोषण का शिकार रही है। यह उपन्यास मारवाड़ी परिवार की बहू प्रिया की शोषण की व्यथा और उसके अस्तित्व बोध को अभिव्यक्त करने वाला है। प्रिया को आधार बनाकर उस के माध्यम से प्रभाव उच्च वर्गीय मारवाड़ी परिवारों की स्त्रियों की यथास्थिति को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना चाहती है। जहां आर्थिक रुप से संपन्न होते हुए भी स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं दी जाती। उन्हें पितृसत्तात्मक व्यवस्था के द्वारा बनाए गए नियमों, रीति रिवाजों, परंपराओं के अधीन रखा जाता है। इस उपन्यास के संदर्भ में डॉ. राम चंद्र माली लिखते हैं– "खुद मारवाड़ी होने

के नाते व्यापारियों के व्यापार जगत का मुनाफा,घाटा दोनों के माध्यम से जीवन के उतार चढ़ाव का वर्णन उपन्यास में है। वस्तुतः उपन्यास नारी जीवन की पीड़ा, अभाव, डर, पराजय, आत्मग्लानि, अपमान, घुटन, शोषण, पश्चाताप से भरा हुआ है।"[53]

प्रिया का शोषण उसकी अपने परिवार से ही शुरु होता है। अपने ही परिवार में अपनी मां की नफरत बर्दाश्त करना वह भी सिर्फ एक लड़की होने के कारण। अपने बड़े भाई द्वारा बार बार बलात्कार किया जाना जैसे घटना प्रिया को अंदर ही अंदर तोड़ती है लेकिन प्रिया अपने जीवन में अपने ही परिवार से संघर्ष करती है, अपने शोषण का विरोध करती है। पितृसत्ता के द्वारा बनाए गए नियमों को नकारती है।, प्रेम, विवाह, सेक्स आदि शब्द विवाह को सदियों से घिसे–पिटे शब्द लगते हैं। वह अपने जीवन में जिजीविषा शक्ति के सहारे अपने जीवन में संघर्ष करती हुई अपनी एक अलग पहचान बनाती है। प्रिया के इस संघर्ष में व्यक्तित्व के संबंध में डॉक्टर मधु संधू कहते हैं कि–"छिन्नमस्ता की प्रिया एक दहकता हुआ अंगारा है।'"[54]

प्रिया का संघर्ष उसके परिवार में ही खत्म नहीं होता है। प्रिया की शादी अग्रवाल परिवार में नरेंद्र से होती है जो पितृसत्तात्मक मूल्यों को महत्व देने वाला व्यक्ति है। प्रिया अपने जीवन में आगे बढ़ना चाहती है इसलिए अपना स्वतंत्र व्यवसाय प्रारंभ करती है। उसमें सफलता मिलने पर नरेंद्र के अहम पर चोट लगती है इसलिए वह प्रिया के मार्ग में हमेशा कांटे बिछाने की कोशिश करता है। अपनी पत्नी को अपने से आगे बढ़ता हुआ नरेंद्र सहन नहीं कर पाता। वह प्रिया को किसी भी तरह आर्थिक रूप से स्वावलंबी नहीं बनने देना चाहता। किसी का है दोनों के वैवाहिक जीवन में तनाव की स्थिति पैदा होने लगती है। नरेंद्र अपने आहत होते पुरुषार्थ से दुःखी होकर प्रिया से कहता है कि–"दरअसल तुम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी। मुझे पहले ही चिड़िया के पंख का डालने चाहिए थे। पर मैं तुम्हारी बातों में आ गया। तुम्हारे इस भोले चेहरे के पीछे एक मक्कार औरत का चेहरा है।''[55]

प्रिया अपने जीवन में इतनी वेदना इतना अपमान कहने के बाद भी कहीं ठहरती नहीं है पति द्वारा बार बार चोट पहुंचाने के बाद भी वह गिरती नहीं है

बल्कि उतनी ही अधिक मजबूत बनती चली जाती है। प्रिया अपना स्वयं का स्वतंत्र व्यवसाय शुरू कर अपनी एक अलग आइडेंटिटी स्थापित करती है। प्रिया के इस आत्मनिर्णय और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के संबंध में राजेंद्र यादव कहते हैं–"20वीं सदी शताब्दी के अंत में 'छिन्नमस्ता'(प्रभा खेतान) की प्रिया,'मुझे चांद चाहिए' (सुरेंद्र वर्मा) की वर्षा की तरह आत्म चेतना तक पहुंचती है, साथ ही आत्म निर्णय अर्जित करती है। यह नायिकाएं पूंजीवादी समाज के संस्कारों और आर्थिक विषमता में संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व का निर्माण करती है।"'[56]

नरेंद्र द्वारा प्रिया का शोषण किए जाने पर प्रिया नरेंद्र के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करती बल्कि नरेंद्र की प्रत्येक बात का जवाब देती है। सदियों से जिस परंपरा के हवाले स्त्रियों का शोषण होता है उन स्त्रियों के दर्द को प्रिया बहुत ही गहराई से समझती है। मैं अपने जीवन के चक्रव्यूह में नहीं फंसना चाहती और नरेंद्र को दो टूक जवाब देती हुई कहती है–"आप ईमानदारी, वफादारी, प्यार, समर्पण यह सब कुछ नहीं है। यह सारे शब्द भ्रम है। औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चलती आती आहुति की परंपरा को कायम रखें।"'[57]

प्रिया बचपन से ही यातनाओं के दौर से गुजर रही थी। मां का प्यार नहीं मिलना, अपनी मां का प्यार दाई मां की गोद में ढूंढना, अपने ही परिवार में शारीरिक व मानसिक यातनाएं खेलना। स्त्री होना प्रिया की मां की नजरों में बहुत पाप था। प्रिया अपनी मां के विचारों के संदर्भ में कहती थी– "स्त्री होना मात्र अम्मा की नजर में पाप है, एक हीन स्थिति है, गुलाम जत्था है जो बिना मालिक के जी नहीं पायेगा।"[58]

प्रिया अपने जीवन में इतनी यातनाएं सह चुकी है कि वह अब अपने आगे के जीवन के प्रति सजग है और किसी भी प्रकार का निर्णय सोच समझ कर लेना चाहती है। वह जानती है कि उसे अपनी अलग पहचान बनाने के लिए अपने ही परिवार अपने ही समाज से संघर्ष करना होगा। समाज की पुरानी परंपराओं को दौड़ते हुए आगे बढ़ना होगा। और प्रिया अपने इस निर्णय में खरी भी उतरती है। प्रिया बहुत मेहनत के साथ चमड़े का व्यवसाय शुरू करती है जिसमें एक बड़ा आर्ड़र मिलने पर नरेंद्र से कहती है–"नरेंद्र अब तो तुम स्वीकार करोगे कि मैं अपने

स्तर पर भी बड़ा काम कर सकती हूं।"'[59]

अपने अतीत के दुरूखों की भूलने के लिए वह दिन–रात मेहनत करती है और अपने चमड़े के व्यापार में अपनी एक अलग आइडेंटिटी बनाती है। प्रिया का फोटो एक बिजनेस वूमेन के रूप में इंडिया टुडे में छपता है– "द ग्रेट बिजनेस इंटरप्राइजेज मिसेज प्रिया अग्रवाल।"'[60]

प्रिया अपनी इस आइडेंटिटी से पूरी नारी समाज को एक अलग आइडेंटिटी देती है। और स्त्रियों को जाग्रत करने का आह्वान करती है। प्रिया को अपने काम से आत्म चेतना मिलती है। जिससे वह अपना व्यक्तित्व मजबूत बनाती है और अपने निर्णय स्वयं लेती है। प्रिया का मानना है कि जो एक स्त्री इस समाज को दे सकती है क्या वह एक पुरुष दे सकता है? इस संबंध में प्रिया का मानना है कि –"यही कि बाद में एक तो मैंने सोचा कि एक पुरुष पैसे कमाता है और दो चार लोगों को पाल देता है लेकिन स्त्री यदि सीमाएं लांघ जाए तो वह पारंपरिक समाज उसके लिए खत्म हो सकता है पर मानव समाज तो बहुत ही बड़ा है। औरत होकर मैं जो समाज को दे सकती हूं वह नरेंद्र पुरुष होकर कभी नहीं दे सकता।''[61]

स्त्री सृष्टि की सूजन में अपनी भागीदारी निभाती है। वह जानती है कि एक स्त्री समाज को बहुत कुछ दे सकती है जो पुरुष नहीं दे सकता। प्रिया इस स्त्री पुरुष के संबंध में अपने दोस्त से कहती है–"पुरुष भूमि है, आकाश है, हवा है, अग्नि है, जल है, लेकिन स्त्रीबीज बनकर धरती के नीचे दबना जानती है, वक्त आने पर अंकुरित होती है और फिर शाखा, प्रशाखाओं में फैलती हुई पूरा जंगल हो जाती है।"'[62]

प्रिया के इस प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लेखिका रमणिका गुप्ता कहती हैं कि–"प्रिया बड़े घर की औरत होकर भी वह सांवली सी, काली सी लड़की अपना निर्णय लेती है। वह स्वतंत्र बिजनेस ही नहीं करती, बल्कि स्वतंत्र जीवन भी जीती है। उसका अतीत पीछा नहीं छोड़ता पर वह लड़ती रहती है, अपने आप से, अपने अतीत से किंतु हारती नहीं, भागती नहीं।'"[63]

प्रिया स्वयं को व्यवसाय के क्षेत्र में स्थापित करती है। स्वयं को स्थापित करने के लिए प्रिया को समाज की व्यवस्था से लड़ना पड़ा, परिवार की नाराजगी झेलनी पड़ी, तरह तरह की यातनाएं सहनी पड़ी लेकिन दृढ़–निश्चय के साथ प्रिया

ने स्वयं को स्थापित किया। प्रिया का व्यवसाय उसकी ताकत बना। प्रिया को मारवाड़ी समाज ने स्वीकार नहीं किया। कुंठित मानसिकता एवं दकियानूसी विचार रखने वाले मारवाड़ी समाज के बारे में प्रिया अपने दोस्त से कहती है–"फिलीप ! अपने पैरों पर खड़ी एक औरत को स्वीकार कर पाने में अभी हमारे समाज को समय लगेगा।"[64]

छिन्नमस्ता इस उपन्यास का शीर्षक है। छिन्नमस्ता का क्या अर्थ है? छिन्नमस्ता का अर्थ बताते हुए मधु संधु लिखती है–"छिन्नमस्ता वह शक्ति है जो संसार बनाती है और उसका नाश करती है। जो महामाया बोरसी बनकर भुनेश्वरी बनती हुई संसार का पालन करती है। वही अनंत काल में छिन्नमस्ता बनकर नाश कर डालती है, क्योंकि महाप्रलय से छिन्नमस्ता का विशेष संबंध है।"'[65] जिस प्रकार छिन्नमस्ता देवी शक्ति का प्रतीक माना जाता है तो इस उपन्यास की नायिका प्रिया भी नारी शक्ति का प्रतीक है। क्योंकि भावात्मक रूप से परिपक्व, बौद्धिक रुप से सजग, शैक्षिक रूप में सफल संघर्षरत नारी प्रिया अपने पैरों पर खड़ी है। वह स्वयं अपना व्यवसाय चलाती है और अपने पैरों पर खड़ी स्त्री का अपमान करने से पहले समाज सौ बार सोचता है।

इस उपन्यास में प्रिया के अतिरिक्त एक स्त्री पात्र नीना है। जो प्रिया की सौतेली सास की बेटी है। जो एक नाजायज संतान के रुप में प्रस्तुत की गई है। खुशमिजाज स्वभाव वाली नीना हमेशा खुश रहना चाहती है ।नीना अपनी मां को कभी दुखी नहीं देखना चाहती। नीना जब अपनी मां को उदास देखती है तो स्वयं भी उदास हो जाती है। अब वह अपने जीवन में अपमान, वचना का दुख सदैव याद रखना चाहती है। वह प्रिया से कहती है–"नहीं,जिंदा रहने और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि, हम अपमान और वंचना को भी याद रखें। मुझे आप यह सब चुप रहो चुप रहो वाली बातें न सिखलाएं तो।"'[66]

नीना अपने जीवन में दुखों से निकलकर सुख के सागर में डूबना चाहती है। इसके लिए वह अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है। क्योंकि नीना इस बात को भली भांति जानती है कि अपने पैरों पर खड़ी स्त्री का कोई अपमान नहीं कर सकता। अपने बुलंद इरादों के परिणाम स्वरूप नीना ग्रैंड होटल में इंटीरियर पर्सनल मैनेजमेंट की पोस्ट पर नौकरी करती है। नीना अपने जीवन में अपने पिता

मि. अग्रवाल से नफरत करती है। नीना की नजर में मिस्टर अग्रवाल एक कायर इंसान है। अपने पिता के संबंध में नीना प्रिया से कहती है– "भाभी ! पापा का यूं महीने के महीने रुपए देना? मुझे नफरत होती है उनसे। सच कहती हूं भाभी ऐसे बुजदिल इंसान से मुझे सख्त नफरत है।"'[67]

नीना प्रिया को अपने जीवन में बहुत खास मानती है। प्रिया भी नीना की पूरी मदद करती है। प्रिया नीना के संबंध में फिलिप से कहती है कि "हां फिलिप ! मैं एक अस्त होते हुए शताब्दी का परिणाम हूं और नीना तथा निधि जैसी हजारों लाखों स्त्रियां हमारे भविष्य का उजाला है।"[68] नीना अपना दुख सभी के सामने जाहिर नहीं करती है। वह जीवन में आने वाली विपरीत परिस्थितियों का सामना हंसते हुए करती है । नीना जिस रुप में अपने जीवन में संघर्ष करती है उसे प्रभावित होकर डॉक्टर वैशाली देशपांडे लिखती हैं कि "स्त्री संघर्ष एवं विद्रोह का एक अलग रूप बनकर संपूर्ण उपन्यास में नीना हमारे सामने प्रस्तुतहै।"'[69]श
प्रभा ने इस उपन्यास में नीना को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि नाजायज संतान होने का दुरूख नीना अपनी पूरी उम्र झेलती है।लेकिन जीवन में हताश होकर बैठना वह उचित नहीं समझती और संघर्ष करते हुए अपने पैरों पर खड़ी होती है और एक सफल जीवन व्यतीत करती है।

इस उपन्यास में प्रभा खेतान ने प्रिया, नीना के अतिरिक्त 'जूडी' नाम की स्त्री की भी चर्चा की है। जूडी पेशे से साइकियाट्रिस्ट है। जूडी होलैंड अपने पति फिलिप के साथ रहती है। जूडी प्रिया की बहुत ही खास दोस्त है। जूडी की विशेषता है कि वह बिना कुछ कहे इंसान के हाव भाव से बहुत कुछ जान जाती है। जूडी हॉलेंड रहती है किंतु वह नारी चेतना के प्रति सजग है। स्त्रियों की स्थिति से बहुत ही अच्छी तरह परिचित है। जूडी विदेश में रहने के बावजूद भी नारी के शोषण की व्यथा, उन की आंतरिक पीड़ा, उनकी भावनाओं को महसूस कर सकती है।जूडी इस बात को बखूबी जानती है कि औरत अपना दुख किसी को बताना नहीं चाहती वह अंदर ही अंदर घुटती है। औरत की मूक अवस्था को वाणी देने के लिए डायरी लिखने की सलाह देती है जिस से स्त्री में धीरे धीरे आत्मविश्वास पैदा होता है और लिखकर पढ़ कर वह धीरे–धीरे बोलना प्रारंभ कर पाती है। जूडी प्रिया से कहती है कि– "प्रिया ! तुम अपनी डायरी लिखते रहो। औरत आज भी

मूक है।उसके आंसुओं को दुनिया देखती है। उसकी हिस्टीरिया के दौरे, उसके चीखने–चिल्लाने पर लोग कानों पर हाथ रख लेते हैं,उसकी शिकायत भरी निगाहों को देखकर भी पुरुष अनदेखा कर जाता है। मगर शब्दों का अपना इतिहास होता है३और यदि यह छप जाएं तब क्या उनकी यों उपेक्षा करना संभव होगा ? जब लिख होगी तब अपनी जैसी हजारों–लाखों के साथ संवाद स्थापित कर पाओगी। तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे शब्दों को पढ़कर कौन–कौन अपने घावों को सहलायेगा ? कि औरत कि गूंगी जवान अचानक बोल उठेगी, हां, हां यह सच है, बिल्कुल सच है। मेरे साथ भी ऐसा ही घटा है।'"[70]

प्रिया जूडीको केवल साइकेट्रिस्ट समझती है प्रिया इस बात का अंदाजा नहीं लगा पाती कि जूडी नारी वेदना को गहराई तक समझती है। जूड़ी प्रिया से कहती है "नहीं, सारी भूमिकाओं से परे एक हमदर्द औरत हूं। औरत का दर्द समझती हूं। प्रिया, क्या केवल तुम्हीं ने सहा है ? एक तुम ही नहीं जो दुःख पा रही हो। हर औरत के अपने–अपने दर्द के तहखाने हैं।''[71]

जूडी अपने जीवन में महसूस करती है कि स्त्री को अपने जीवन में अपनी अस्मिता के लिए स्वयं ही लड़ना होगा। जब तक स्त्री अपनी अस्मिता के महत्व को नहीं समझेगी तब तक स्त्री मूक बनकर शोषित होती रहेगी। उसे अपने अस्तित्व का निर्माण करने एवं अपनी अस्मिता स्थापित करने के लिए समाज से, उसके विचारों ,परंपराओं से लड़ना होगा।जूडी इस उपन्यास में यह भी बताने का प्रयत्न करती है कि भारतीय समाज में पुरुषों ने पश्चिमी देशों की स्त्रियों को देखने का एक अलग ही पैमाना बनाया हुआ है "पश्चिम की स्त्रियों पर पूरब के लोग हंसते हैं, उन्हें लगता है कि पश्चिम की स्त्री स्वच्छंद है, घर फोड़ है, हर किसी के साथ पलंग पर साझा करने को तैयार रहती है।"'[72] इस प्रकार प्रिया जूडी के माध्यम से पुरुष प्रधान संस्कृती को बेनकाब करके उसका असली चेहरा समाज को दिखाना चाहती है।

प्रभा खेतान प्रिया के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न करती है कि सम्मान कोई देता नहीं है हमें स्वयं को अर्जित करना होता है इसलिए प्रिया अपना स्वयं का स्वतंत्र व्यापार प्रारंभ कर उसमें सफलता हासिल करती है और अपने मुकाम पर पहुंच कर स्वयं की पहचान बनाती है और सम्मान प्राप्त करती है। अपने जीवन में

उसे दाई मां, नीना, जूडी, फिलीप जैसे दोस्तों का साथ मिलता है जिन के सहयोग से जीवन में उपलब्धियां हासिल करती हैं। मारवाड़ी समाज द्वारा बार बार अपमानित करते हुए मानसिक व शारीरिक रूप से प्रताड़ित करना, शोषित करना सभी को सहते हुए संघर्ष करते हुए प्रिया एक सफल औरत के रूप में खुद को स्थापित करती है। प्रिया को स्त्री रूप में पैदा होना बुरा नहीं लगता लेकिन एक स्त्री का बार–बार रोना उसे स्वीकार नहीं होता। प्रिया पति–पत्नी के संबंध को गुलामी का अहसास मानती हुई कहती है "स्त्री पुरुष का संबंध वही मालिक और गुलाम का ? भोक्ता और भोज्य का ? व्यक्ति और वस्तु का ? कब तक यह द्वंद चलेगा ?''[73]

प्रभा खेतान प्रिया के माध्यम से विवाह जैसी संस्था का विरोध करती हुई नजर आती है। प्रिया जैसी संघर्षमयी स्त्री के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर गोपाल राय लिखते हैं "यह आधुनिक नारी की त्रासदी और उसके संकल्प का एक प्रामाणिक दस्तावेज है।'"[74] अंततः प्रभा खेतान के उपन्यास में प्रिया एक आधुनिक नारी की शक्ति के रूप में पहचान बनाकर सदियों से शोषित होती आ रही स्त्रियों को स्त्री चेतना से जाग्रत करती हुई नजर आती है।वह समाज में स्थापित पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जड़ों को उखाड़कर फेंकना चाहती है। प्रिया एक संघर्षशील और विद्रोही विचारों वाली स्त्री है। इस संबंध में गोपाल राय लिखते हैं कि "छिन्नमस्ता का मिथक प्रिया जैसी संवेदनशीलआधुनिक नारी के लिए बहुत सार्थक है। जो इस मनरू स्थिति में ही अपनी लहूलुहान जिंदगी को दोबारा जीती है। वह अपना कटा सिर हाथ मैं लेकर, पुरुष समाज से संघर्ष कर रही है।"'[75]

अपने–अपने चेहरे (1996)

'अपने–अपने चेहरे' उपन्यास प्रभा खेतान द्वारा कृत उपन्यास है। यह उपन्यास मारवाड़ी समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था, विचारधाराओं को उजागर करता है। इस उपन्यास में प्रभा खेतान ने 'दूसरी औरत' होने की पीड़ा, मानसिक वेदना, अंतर्द्वंद को केंद्र में रखा है। प्रभा खेतान ने स्वयं अपनी जिंदगी में दूसरी औरत होने की पीड़ा को सहा है। इस उपन्यास में प्रभा खेतान ने दूसरी औरत के रूप में जो अपमान, पीड़ा, वेदना को सहन किया है उसे बहुत ही मार्मिक और यथार्थ रूप

में अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास के संदर्भ में डॉ.राणावत कहती है कि– "प्रभा खेतान की आत्मकथा का अधूरा अंश है– अपने–अपने चेहरे।"[76] प्रभा खेतान के उपन्यास में दूसरी औरत होने की पीड़ा रमा के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं। रमा जो एक विवाहित और तीन बच्चों के पिता मिस्टर गोयनका से प्रेम करती है। मिस्टर गोयनका अपने वास्तविक जीवन में एक कायर प्रवृत्ति के पुरुष है जो अपनी पत्नी सरला के होते हुए भी रमा से प्रेम करते हैं किंतु रमा से विवाह नहीं करते। मिस्टर गोयनका मारवाड़ी समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था का, उसकी विचारधाराओं का निर्वाह करते हैं। इसका खामियाजा पूरे उपन्यास में रमा को भुगतना होता है। यह उपन्यास की कथा एक त्रिकोण कथा के रूप में गूँथी गई है। पति–पत्नी और वह (दूसरी औरत)। इस त्रिकोण कथा पर प्रकाश डालते हुए स्वयं प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा मैं कहती हैं–"जनसत्ता सबरंग मेंप्रति रविवार को मेरा उपन्यास 'अपने–अपने चेहरे' प्रकाशित हो रहा था। पति–पत्नी और वह कि एक त्रिकोण कथा।"[77]

प्रभा खेतान अपने इस उपन्यास के माध्यम से मारवाड़ी समाज की कट्टर परंपरावादी विचारधारा, पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शोषण की नीतियों को प्रस्तुत करती है। इसके साथ ही मारवाड़ी समाज में स्त्रियों की शोषण की यथार्थ स्थिति को भी उजागर करती है। प्रभा खेतान स्वयं मारवाड़ी समाज से होने के कारण उन्होंने अपने उपन्यासों की पृष्ठभूमि मारवाड़ी समाज से ही ली है। उन्होंने अपने मारवाड़ी समाज की यथास्थिति एवं उस समाज की स्त्रियों के रहन–सहन, उनकी जीवन शैली का वर्णन बहुत ही बेहतर ढंग से किया है। 'अपने–अपने चेहरे' उपन्यास की कथावस्तु भी मारवाड़ी समाज से ली है। उनके इस उपन्यास के संदर्भ में पाठक विवेक विशाल जी कहते हैं–"मैं इस बात के लिए प्रभा जी की तारीफ करना चाहूंगा कि उन्होंने अपने ही परिवेश को कथानक की पृष्ठभूमि बनाया है। जब–जब किसी रचनाकार ने ऐसी कोशिश की, उत्कृष्ट रचना सामने आई है।"[78]

इस उपन्यास में रमा जिस मारवाड़ी समाज में रहती है उस मारवाड़ी समाज की मानसिकता पुरानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मानती है। रमा एक विवाहित पुरुष से प्रेम करती है जो उस समाज में एक प्रकार का गुनाह है। वह समाज रमा को दूसरी औरत का दर्जा देता है और दूसरी औरत को समाज हेय दृष्टि से देखता

है। समाज में अविवाहित पुरुष की पत्नी का दर्जा केवल उसे प्राप्त है जिसके साथ उसका विवाह हुआ हो और वह स्त्री अपनी मांग में चुटकी भर सिंदूर लगाती हो। समाज में उसी रिश्ते को मान्यता दी जाती है।मिस्टर गोयनका रमा से विवाह नहीं करते हैं इसलिए मिसेज गोयनका कोसमाज में जो सम्मान दिया जाता है दूसरी औरत के रूप में रमा को नहीं दिया जाता। रमा अपने जीवन में मिस्टर गोयनका के परिवार के लिए सब कुछ करती है लेकिन समाज में और मिस्टर गोयनका के परिवार में रमा को कोई अधिकार नहीं मिलता और ना ही कोई स्थान। रमा को केवल दूसरी औरत का दर्जा मिलता है। रमा भले ही अपने जीवन में अगर व्यवसाय करती है लेकिन मिसेज गोयनका का स्थान कभी नहीं ले पाती। मिसेज गोयनका रमा को दूसरी औरत के रूप में देखते हुए कहते हैं कि –"अरे कितना भी बिजनेस कर ले,पढ़ाई कर ले लेकिन एक चुटकी सिंदूर का आत्म बल अलग होता है।''[79]

मिस्टर गोयनका रमा को समाज के सामने स्वीकार नहीं कर पाते। कायर प्रवृत्ति के इंसान है। वे एक ओर अपना परिवार भी बचाना चाहते हैं तो दूसरी ओर रमा से संबंध भी रखना चाहते हैं। लेकिन हम आप से विवाह नहीं कर पाते। वे रमा को अपने साथ रखना चाहते हैं लेकिन कायर प्रवृत्ति के होने के कारण समाज के समक्ष रमा से अपना संबंध स्वीकार नहीं करते हैं। मि. गोयनका की कायर प्रवृत्ति को बताते हुए रमा मिस्टर गोयनका से कहती है–"हाँ ! राजेंद्र गोयनका, तुम कायर हो, बिल्कुल कायर। तुम समाज के सामने रमा का हाथ नहीं पकड़ सके।'"[80] मिस्टर गोयनका द्वारा रमा को समाज के समक्ष स्वीकार नहीं कर पाने और कोई अधिकार नहीं दे पाने पर रमा बहुत दुःखी होती है और दुःखी होते हुए मिस्टर गोयनका से कहती है–"जिस संबंध का कोई नाम नहीं उस संबंध को समाज में ले जाने से फायदा ? मेरी अलग आइडेंटिटी रहने दीजिए।"'[81]

प्रभा खेतान स्त्री जीवन की पहली शर्त आर्थिक स्वतंत्रता मानती है।रमा भी स्वयं को आर्थिक रुप से सुदृढ़ करती है क्योंकि वह जानती है कि जिस समाज में वह रहती है वह समाज ऐसी मानसिकता से ग्रस्त हैं जो स्त्रियों को आर्थिक रुप से स्वतंत्र नहीं होने देता। मिस्टर गोयनका से प्रेम करना, दूसरी औरत का दर्जा देना, समाज के सामने रमा को स्वीकार नहीं कर पाना, जैसी कई घटनाओं ने रमा को झकझोर दिया था लेकिन रमा स्वयं को हताश नहीं होने देती, वह स्वयं को टूटने

नहीं देती। अपनी स्वयं की पहचान ,अपना वर्चस्व समाज में स्थापित करने के लिए स्वयं को मजबूत बनाती है। हमें इस बात को भली भांति जानती है कि जब तक एक औरत स्वावलंबी, आत्मविश्वासी नहीं बनेगी तब तक वह अपने परिवार, समाज में स्वतंत्र रूप से जीवनयापन नहीं कर पाएगी। रमा स्वयं सोचती है–"औरत बिना स्वावलंबी हुए स्वतंत्र नहीं हो सकती है।"'[82]

अपने सुदृढ़ विचारों के परिणामस्वरुप रमा स्वयं को आर्थिक रुप से मजबूत करती है। मिस्टर गोयनका से अलग अपना व्यवसाय स्थापित करती है। जिस समाज में वह रहती है वहां स्वयं को एक व्यवसायी के रूप में स्थापित करती है ताकि समाज रमा को एक व्यवसायी के रूप में देखें, ना की दूसरी औरत के रूप में। अपने अधिकारों की मांग पूरी नहीं कर पाने पर रमा मिस्टर गोयनका के घर में रहने के प्रस्ताव को ठुकरा देती है और स्वयं अपना घर लेती है। वह घर रमा का होता है जो उसके पिता, भाई, प्रेमी किसी का नहीं होता बल्कि रमा की मेहनत से बनाया गया घर था जो रमा के वर्चस्व की पहचान था। रमा मिस्टर गोयनका के घर रहने के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहती है–"जिस संबंध को तुम नाम नहीं दे सकते जिसके पास तुम्हें दुनिया से छुपकर जाना पड़े, उसको भूल जाओ राजेंद्र। मैं जहां भी रहूंगी, वह मेरा होगा। कोई कोठा नहीं कि तुम्हें सिर झुका कर निकल ना पड़े।'"[83]

रमा को मिस्टर गोयनका ने समाज के सामने स्वीकार नहीं किया और ना ही इस समाज ने। रमा अपने मजबूत इरादों से इस समाज की दकियानूसी विचारधारा का विरोध करती है, उससे लड़ती है और अकेले संघर्ष करते हुए उसी समाज में अपना अस्तित्व बनाती है। इस संबंध में रमा कहती है कि– "मुझे मेरी रोटी खुद कमानी पड़ती है। कौन क्या करता है मेरे लिए ? रमा ने आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर होकर अपने जीवन को एक ठोस धरातल प्रदान किया है।जिसके बल पर वह अपने सम्मान के लिए, अपनी अस्मिता के लिए सामाजिक परंपराओं रूढ़ियों से टक्कर लेने का साहस रखती है। वह स्वयं अपना मार्ग निश्चित करती है।''[84]

रमा इस संपूर्ण उपन्यास में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हुई नजर आती है। रमा के संबंध में गोपाल राय कहते हैं कि– "रमा के रूप में 'दूसरी औरत' की पीड़ा, अंतर्द्वंद और आत्ममंथन ही इस उपन्यास का केंद्रीय विषय है, जिसमें

वह हारती, टूटती और तार–तार होती है"'[85]

इस उपन्यास का मुख्य विषय 'दूसरी औरत' होने की पीड़ा है। समाज में प्रायः यह माना जाता है कि दूसरी औरत पत्नी का स्थान ले लेती है लेकिन वास्तविकता कुछ और ही होती है। विवाह जैसें बंधन का प्रमाण पत्र नहीं होने के कारण दूसरी औरत को समाज से किसी प्रकार की कोई सहानुभूति है नहीं मिलती और ना ही कानून की कोई मदद मिलती है। एक पत्नी की अपेक्षा दूसरी औरत को समाज से केवल घृणा मिलती है। रमा का एक विवाहित पुरुष मिस्टर गोयनका से प्रेम करने पर समाज में उसे दूसरी औरत के रूप में देखा जाता है। समाज की नजरों में वह एक परिवार की गुनहगार बन जाती है। एक परिवार के टूटने का कारण बन जाती है। रमा मिस्टर गोयनका के परिवार के लिए सब कुछ करती है लेकिन समाज उसे केवल दूसरी औरत के रूप में देखता है। रमा स्वयं इस दूसरी औरत की पीड़ा, मानसिक वेदना को बार–बार सहती है। रमा जानती है कि समाज में विवाहित स्त्री पुरुष का संबंध एक पति पत्नी के रूप में होता है और यदि उस विवाहित पुरुष के जीवन में कोई और स्त्री आज है तो वह दोस्त रूप में भी परिवार स्वीकार नहीं की जाती है। समाज उसे दूसरी औरत के रूप में देखता है। इसी स्थिति से रमा गुजर रही थी। अपनी इस स्थिति के संबंध में रमा कहती है कि–"मैं न सधवा, न विधवा। अपनी ही आत्मतस्वीर इतनी धुंधली क्यों लगती है? और कितने खूबसूरत तरीके से कोई धीरे से मांग में स्याही उंडेल जाता है, मेरे उजले ललाट पर स्याही उड़ेल जाता है। मेरी ममता के आंचल में पैबंद गिनने लगता है। और वह भी कितनी मासूमियत के साथ। शायद कहने वाला खुद नहीं जानता कि वह क्या कह रहा है। हां आप तो बेचारी अकेली हैं, बेचारी अकेली औरत।"'[86]

रमा इस समाज में वह सम्मान कभी नहीं पा सकी जो मिसेज गोयनका को समाज ने दिया क्योंकि कानूनन मिसेज गोयनका मिस्टर गोयनका की पत्नी थी और रमा समाज के मुताबिक दूसरी औरत। रमा दूसरी औरत होने की पीड़ा हर समय सहन करती है। वह सोचती है– "इतनी निर्मम सजा। बस एक घंटे के लिए, समाज की सलीब पर टंगी हो बेचारी दूसरी औरत।"'[87]

प्रभा खेतान रमा के माध्यम से हमारे पुरुष प्रधान समाज की व्यवस्था का विरोध करती है। हमारे भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था रही है और उस

व्यवस्था के नियम, कानून बनाने वाले पुरुष ही थे। पुरुषों का स्वामित्व के कारण समाज में गलती कोई भी करें लेकिन सजा केवल औरतों को ही दी जाती थी। रमा इस पुरुष व्यवस्था से लड़ती है और अपनी अलग जमीन तैयार करती है। पुरुषों की जमीन पर खड़े होकर उनकी ही व्यवस्था से लड़ना, उनकी व्यवस्था के विरुद्ध बोलना बहुत कठिन कार्य है। रमा उसी समाज में रहकर उसी समाज की व्यवस्था से लड़ती है।

रीतू इस उपन्यास की दूसरी मुख्य पात्र है जो रमा के विचारों से सहमत दिखाई देती है। रीतू आधुनिक भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। रीतू अपने पति के जीवन में आयी दूसरी औरत से दुःखी होकर ससुराल छोड़कर आती है। अपने परिवार में रीतू का साथ कोई नहीं देता। माता–पिता, भाई–भाभियां सभी रीतू के ससुराल से आने पर नाराज होते हैं। रीतू की मां रीतू को अपने ससुराल वापस भेजने व पति की सभी बातों को सहन करने के लिए कहती है। लेकिन रीतू उनकी बात नहीं मानती। पिता अपनी बेटी की खुलकर मदद नहीं कर पाते क्योंकि पिता की जिंदगी में दूसरी औरत का वास था। रीतू की मदद के लिए मिस्टर गोयनका रमा के पास जाते हैं क्योंकि रमा ने ऐसी बहुत सी स्त्रियों को जीवन में स्वावलंबी बनने में मदद की है। मिस्टर गोयनका इस बात से परिचित है कि रमा आर्थिक रूप से स्वतंत्र और स्वावलंबी स्त्री है। अपनी मेहनत के बलबूते पर अपना स्वयं का अस्तित्व बनाई है। मि.गोयनका रमा के संबंध में विचार करते हैं कि –"आखिर रमा एक समझदार विचारों की है यानी मैं कहना चाहता हूं कि स्वावलंबी स्त्री है। वह किसी पर बोझ नहीं है।"'[88]

मिस्टर गोयनका इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि रीतू की मदद केवल रमा ही कर सकती है इसलिए वे रमा के पास जाते हैं और रीतू कि मदद के लिए कहते हैं। रमा रीतू की मदद के लिए तैयार होती है। रमा रीतू के पुनः ससुराल जाने के पक्ष में नहीं है, वह रीतू को समझाती है, उसे स्वावलंबी, आर्थिक रुप से सुदृढ़ और मानसिक रूप से शांत रहने की सलाह देती है। रमा रीतू को इस समाज की व्यवस्था की सच्चाई बताते हुए समझाती है कि इस समाज की व्यवस्था का निर्माणकर्ता पुरुष है।जहां स्त्रियों का कोई स्थान नहीं है। स्त्रियों के पास कोई अधिकार नहीं है। यदि पुरुष सत्ता द्वारा बनाई गई व्यवस्था का विरोध

करोगी तो समाज तुम्हें ही कुचलने की कोशिश करेगा। इसलिए अपनी एक जमीन तैयार करो, स्वयं को मजबूत बनाओ। रमा रीतू को इस व्यवस्था के संबंध में समझाती है कि– "पुरुष की जमीन पर खड़े होकर पुरुषों के खिलाफ बोलोगी तो उठाकर फेंक दी जाओगे। अपनी जमीन तैयार करो।''[89]

रमा रीतू को आर्थिक रुप से स्वावलंबन बनने की सलाह देती है क्योंकि रमा जानती है कि स्त्री जब अपने पैरों पर खड़ी होती है तो कोई उसका अपमान नहीं कर सकता।रीतू का घर में रहकर घुट–घुट कर अपनी जिंदगी जीना रामा को सहन नहीं होता। रीतू ऐसे पुरुष के लिए रो रही थी जिसके जीवन में स्त्री की कोई अहमियत नहीं थी। रमा रीतू से ऐसे पुरुष के संबंध में कहती है–"रीतू ऐसे घुट–घुटकर क्या जीना। तुम और कड़वी हो जाओगी। जब तुमसे सहन नहीं होता तब शांति से हट जाओ, कुणाल के बिना भी जिंदगी जी सकती हो।''[90]

एक स्त्री अपना जीवन पुरुषों के सहारे ही नहीं अपितु अलग रह कर भी भली–भांति जी सकती है। इसके लिए स्त्री को आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने से अधिक मानसिक रूप से भी स्वतंत्र होना चाहिए। रमा कहती है कि –"मुक्ति केवल आर्थिक नहीं होती। जरूरत तो है कि औरत अपनी मानसिक जकड़न से निकले। धीरे–धीरे मुझें यही समझ आया कि अकेला होना कोई अपराध नहीं। कोई जरूरी नहीं है कि हम केवल पारंपरिक संबंधों को ही अपना समझें।"'[91]

रीतू की मां मिसेज गोयनका रीतू को वापस अपने ससुराल भेजना चाहती है। उनका मानना है कि रीतू के ससुराल जाने एवं दूसरी औरत को स्वीकार करने में ही रीतू का घर बसा रहेगा। मिसेज गोयनका रीतू के संबंध में कहती हैं–"रीतू उस दूसरी औरत को स्वीकार नहीं कर पा रही। यदि स्वीकार कर लेती तो घर बना रहता।'"[92]

रीतू और रमा मिसेज गोयनका की इस विचारधारा के विरोध में दिखाई देती है। मिसेज गोयनका ने अपने जीवन में जो यथास्थिति देखी उसे उसी रुप में अपना लिया लेकिन रीतू और रमा इस बात पर विश्वास नहीं करती। रमेश व्यवस्था का विरोध करते हुए कहती है–"छिः यह कैसा समाज है ? औरत बस खूंटे से बंधी गाय की तरह डकारती रहे। औरत पढ़ी लिखी होकर अपने अस्तित्व के प्रति जागरुक होकर ऐसी अवस्था में नहीं रह सकती है। औरत की जिंदगी पुरुष की

तलाश बनकर रह जाए ? अपने आपने उसकी कोई सार्थकता नहीं ? अकेली औरत क्या समाज का कोई उपयोग हिस्सा नहीं बन सकती ? लेकिन औरत आज अकेली होती जा रही है। शादियां टूटती जा रही है। बच्चें साथ नहीं देते।'"[93]

समाज में ऐसी स्त्रियां परित्यक्ता, विधवा, अकेली कामकाजी औरतें अपने जीवन को आर्थिक रुप से सुदृढ़ बनाती हैं। अपना जीवन स्वतंत्र रूप से जीती हैं। रीतू अपने वैवाहिक जीवन में दूसरी औरत के आने का जिम्मेदार अपने पति कुणाल को मानती है। वह कहती है कि कुणाल कोई दूध पीता बच्चा नहीं है जो किसी के बहकावे में आ जाए। कुणाल ने स्वयं उस स्त्री को अपने पास आने दिया होगा क्योंकि पुरुषों का मन सदैव नई वस्तु की चाह रखता है। रीतू भी उसी समाज में रहती है जहां बेटियों की शादियां होने के बाद बेटियों को ससुराल छोड़कर मायके में रहने की इजाजत नहीं होती। लेकिन रीतू इस समाज की व्यवस्था का शोषण का शिकार नहीं बनना चाहती। वह पढ़ी–लिखी होने एवं स्त्री चेतना से जागृत होने पर वह अपने पति का विरोध करते हुए ससुराल छोड़ देती है। रीतू का इस तरह ससुराल छोड़कर मायके आने पर रमा रीतू को समझाते हुए कहती है–"देखो रीतू, पुरुष की व्यवस्था ने हर जगह गुनाह के लिए औरत को जिम्मेदार ठहराया है जबकि पुरुष खुद गुनाह करता है। यह व्यवस्था उसी ने बनाई है। यह रीति–रिवाज, रिश्तें–नाते सब उसी के खेल है। हम तो केवल बिसात में बिछी मोहरें मात्र है।'"[94]

रमा रीतू को जीवन में पीछे मुड़कर वापस जाने के लिए नहीं कहती बल्कि जीवन में आगे बढ़ने के लिए कहती है। रीतू एक शिक्षित आधुनिक नारी है जो समाज में व्याप्त शोषण व्यवस्था का विरोध करने में सक्षम है। रमा रीतू को घर में बैठे रहने की अपेक्षा आर्थिक रुप से मजबूत करने की सलाह देते हुए कहती है–"रीतू घर में रह पाओगी ? अपनी अलग आइडेंटिटी बनाओ।''[95] रमा रीतू को अपनी एक अलग पहचान, अपना अस्तित्व बनाने के लिए कहती है। रीतू रमा की बातों से सहमत होती है और अपने मन को शांत करके अपनी एक अलग पहचान बनाने का निश्चय करती है। इस उपन्यास में रीतू एक चेतनाशील नारी का पात्र निभाती है। पुरानी परंपरा से चली आ रही शोषण की व्यवस्था का समर्थन न करते हुए उसका विरोध करने का साहस रखती है इसीलिए समाज में अपनी एक अलग

पहचान बनाने में सफल होती है।

रमा एवं रीतू के पश्चात् सरला इस उपन्यास की तीसरी मुख्य नारी पात्र है। सरला एक ऐसी स्त्री है जो यथास्थिति में अपने जीवन में जो घटित होता है वह उस स्थिति को सहर्ष स्वीकार कर लेती है। किसी बात का कोई विरोध नहीं करती। अपने पति एवं अपने परिवार को खुश रखने के लिए वह सभी परिस्थितियों में अपने आप को चुप रखती है। मिस्टर गोयनका अपनी पत्नी सरला से प्रेम नहीं करते हैं। मिस्टर गोयनका इस विवाह को बेमेल विवाह मानते हैं। केवल संतानोत्पत्ति के लिए ही सरला से रिश्ता रखते हैं। सरला को अपनी पत्नी के रूप में दिल से कभी स्वीकार नहीं करते हैं। अपनी पत्नी से इस संबंध में स्पष्ट कहते हैं कि–"मैंने तो सुहागरात के दिन है कह दिया था कि मैं तुमसे प्रेम नहीं करता हूं। यह विवाह मेरी मर्जी के खिलाफ हुआ है। बेमेल, बिल्कुल बेमेल।"[96]

अशिक्षित और अधिक सुंदर नहीं होने के कारण सरला कभी अपने पति की जिंदगी में जगह नहीं बना पायी। सरला अपने जीवन में दूसरी औरत का दुःख झेलती है। लेकिन अपने पति के समक्ष सदैव झुक जाती है क्योंकि सरला का मानना है कि पति को खुश करना है तो सिर झुका कर चलो। पहले स्वयं दबो उसके बाद ही दूसरों को दबा पाओगी। सरला का एक स्त्री के जीवन के संबंध में मानना है कि –"अरे, औरत तो गृहस्थी के पैरों तले दबी घास है। मरद के कदम उठे तुम वापस सिर ऊंचा कर लेना लेकिन जब उसके कदम पड़े तो तुम तलवों के नीचे बिछ जाओ।"'[97] रीतू द्वारा ससुराल छोड़कर अपने मायके आने पर सरला अपनी बेटी का साथ नहीं देते हुए उसे वापस ससुराल जाने के लिए कहती है। स्वयं की भांति सिर नीचे करके सब कुछ बर्दाश्त करने के लिए कहती है ताकि उसका वैवाहिक जीवन बना रहे। रमा द्वारा मि. गोयनका के परिवार के लिए बहुत कुछ करने पर सरला का मन रमा के प्रति द्रवित हो उठता है। लेकिन वह जानती है कि समाज इस प्रकार के रिश्तों को नहीं मानता। अपने पति द्वारा रमा को समाज के समक्ष स्वीकार न करने पर सरला अपने पति को कमजोर कहते हुए उनका विरोध करते हुए कहती है–"हिम्मत तो आपकी नहीं है कि, सीधे समाज का सामना करें। कमजोर तो आप हैं, मेरी गलती क्यों निकाल रहे हैं ? मैं पूछती हूं कि आप उनसे शादी क्यों नहीं कर लेते ? पर अपने मन में हिम्मत होनी चाहिए।"'[98]

प्रभा सरला के माध्यम से यह बताना चाहती है कि बेमेल विवाह जैसी समस्या के कारण स्त्री के जीवन में कई कठिनाइयों जन्म ले लेती हैं। पति का प्रेम, परिवार का प्रियम उसे नहीं मिल पाता और दूसरी औरत, पति एवं परिवार की नफरत का शिकार होना पड़ता है। अंततः प्रभा जी इस उपन्यास में दूसरी औरत की समस्या, उसकी पीड़ा, आंतरिक घुटन, मानसिक वेदना आदि को दिखाते हुए मारवाड़ी समाज की नारी की यथास्थिति, उसकी व्यथा, उसकी वेदना को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। पुरानी पिछड़ी मानसिकता के कारण नारी को समाज में अपमानित किया जाता रहा है। उसे समाज में कोई सम्मानजनक स्थान नहीं दिया गया। लेकिन आज की नारी अपने अस्तित्व के प्रति जागरुक होकर समाज में, परिवार में अपना वर्चस्व स्थापित करती है।

पीली आंधी (1996)

'पीली आंधी' उपन्यास प्रभा खेतान के मारवाड़ी समाज की हकीकत बयां करता है मारवाड़ी समाज की संघर्ष की गाथा को प्रभा खेतान ने बड़े मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का कथानक उस समय की पीड़ा को व्यक्त करता है जब 1835–50 के आस–पास अकाल की स्थिति पैदा होने पर राजस्थान के मारवाड़ी समाज के लोगों का पश्चिम बंगाल की ओर विस्थापन होने तक की पीड़ा को यह उपन्यास अभिव्यक्त करता है। अपनी भूमि को छोड़ दूसरे स्थान पर विस्थापित होना, मारवाड़ी बनिये, राजाओं के शोषण से बचना, ब्रिटिश उपनिवेशवाद, आधुनिक शिक्षा की सुविधा का अभाव, अकाल से भूखमरी की स्थिति पैदा होना जैसें कारणों से मारवाड़ी समाज के लोग अपनी जमीन छोड़कर दूसरे स्थान पर विस्थापित हो रहे थे। मारवाड़ी समाज के लोगों की व्यथा उनके संघर्ष, उनके जीवन के अंतर्विरोधो को उस उपन्यास में देखते हुए गोपाल राय कहते है "हिन्दी उपन्यास में राजस्थान की मारवाड़ी समाज की व्यथा–कथा प्रस्तुत करने वाला यह कदाचित पहला उपन्यास है। मारवाडी समाज के दर्द, उनके अपनी जमीन से कट जाने का दुःख, जी तोड़ परिश्रम आदि का प्रभा खेतान ने अत्यंत प्रामाणिकता के साथ चित्रण किया हैं।"[99]

प्रभा खेतान अपने इस उपन्यास में मारवाड़ी समाज के विस्थापन होने के पीड़ा को तो प्रस्तुत करती है साथ ही साथ वे राजस्थान की जीवन शैली को भी प्रस्तुत करना चाहती है । प्रभा खेतान स्वयं मारवाडी समाज से होने के कारण वे कभी राजस्थान को अपने जीवन से निकाल नहीं पायी। वे राजस्थान में कभी नहीं रही लेकिन उनके विरासत में मिली अनुभूतियों को वे कभी नकार नहीं पायी। प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में इस बात को स्वीकार करती है और कहती है–"मेरी कहानी तो कलकत्ते से शुरू होती थी ओर कलकत्ते के यथार्थ से टकराकर कल्पना के राजस्थान की मूर्ति चटक जाती है। उपन्यास में एक तरफ विरासत में पूर्वजों से मिला हुआ गहन लगाव है तो दूसरी और उसके चटक जाने की अनुभूति है। शायद इसीलिए उपन्यास में लगाव और तल्खी दोनों ही मौजूद है, पर राजस्थान को मैं खारिज कभी नहीं कर सकी, यह मुझसे लिपट जाता है, हर रूप में, हर कहीं।"'[100]

मारवाड़ी समाज के लोगों के पलायन करने के सम्बन्ध में डॉ के. पी. बरली लिखते हैं कि "मारवाडियों का जीवन सघर्ष इस उपन्यास का मुख्य विषय है। जितने भी कठिन वातावरण में भी उन सबको झेलते हुए वे जीवन में आगे बढ़ रहे है। अकाल तथा क्रूर शासकों के शोषणों के कारण देश से पलायन करने वाले मारवाड़ियों की कहानी कह रही है इस उपन्यास में।'"[101]

'पीली आंधी 'उपन्यास की कथा दो भागों में चलती है। उपन्यास की आधी कथा प्रभा खेतान की अपनी माँ से सुनी हुई थी तथा अंतिम की कथा लेखिका ने स्वयं मारवाड़ी परिवार के जीवन को ध्यान में रखकर लिखी है। प्रारम्भिक कथा लेखिका अपनी माँ से सुनती है जिसका जिक्र इस उपन्यास में भी करती है ''कहानी को यहीं विराम देना पड़ रहा है। इसलिए की इतनी भर कहानी मैंने अपनी अम्मा से सुनी थी।''[102]

'पीली आंधी' उपन्यास के कथानक के सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव कहते है कि –"पीली आंधी मारवाड़ियों के झारियों, धनबाद, कलकत्ता आने के दो तीन सौ वर्षों के इतिहास की तरह थी।''[103] इस उपन्यास की कथा राजस्थान के सुजनागढ़ के गुरुमुखदास जी रुंगठा की हवेली से कलकत्ता रुंगठा हाऊस तक की तीन पीढ़ियों के संयुक्त परिवार को जोड़े रखना 'स्त्रियों का परिवार के प्रति समपर्ण,

अपनी मुक्ति के लिए छटपटाहट और विद्रोह दिखाई देता है।

इस उपन्यास की दो मुख्य नारी पात्र है– सोमा और पद्मावती। सोमा और पद्मावती के अतिरिक्त अन्य स्त्री पात्र भी है लेकिन इस उपन्यास की सबसे अधिक प्रभावशाली एवं कथा को गति देने वाली मुख्य नारी पात्र सोमा और पद्मावती है। सोमा आधुनिक शिक्षा से जाग्रत आधुनिक युग की नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वही पद्मावती पुरानी मान्यताओं को महत्व देने वाली, संयुक्त परिवार को जोड़े रखने वाली पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। पद्मावती अपने जीवन के लिए विद्रोह नहीं करती है। लेकिन सोमा अपने स्वतंत्र जीवन के लिए अपने परिवार, अपने ससुराल से ही बगावत करती है।

आज के दौर में नारी शिक्षित होने के साथ साथ अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत भी हो रही है। स्त्रियाँ अपने स्वतंत्र जीवन एवं अपने अस्तित्व के प्रति गहराई से चिन्तन करने लगी है। स्त्रियाँ अपने पति के साथ गुलामी का रिश्ता नहीं रखना चाहती अपितु सहधर्मिणी का रिश्ता चाहती हैं। सदियों से चली आ रही पितृसतात्मक पुरुषवादी व्यवस्था के प्रति स्त्रियाँ विद्रोह करते हुए उन सभी व्यवस्थाओं को नकारती है। स्त्रियाँ अपने जीवन, अपने अस्तित्व के महत्व को समझने लगी है ।

इस उपन्यास की स्त्री पात्र सोमा भी शिक्षित नारी है जिसका विवाह रूँगठा हाऊस में गौतम होता है। सोमा अपने पति की नपुसंकता से बहुत निराश होती है। सोमा को अपने जीवन में प्यार और बच्चें चाहिए। लेकिन सोमा को यह सब अपने पति गौतम से नहीं मिलता। सोमा अपने जीवन को रूँगठा हाऊस में रहकर जीने के लिए तैयार नही होती है। रूँगठा हाऊस में सोमा की ताई सास कठोर अनुशासन करती है। सोमा एक ओर अपने पति से निराश है वहीं दूसरी ओर अपनी ताई सास के कठोर अनुशासन से दुःखी। रूँगठा हाऊस के इतने कठोर अनुशासन को देखकर सोमा के मन में विद्रोह की भावना पनपने लगती है। सोमा मन ही मन विद्रोह करने का निर्णय लेती है। ''विद्रोह करना होगा । पहले दिन से, आज से, अभी से, इसी क्षण से। बुढ़िया जो बोलेगी, उसका विरोध करूंगी। देखूं वह मेरा क्या बिगाड़ लेतीहै ?''[104]

सोमा के मन में विद्रोह की भावना दिनों–दिन बढ़ती जाती है। सोमा को

जीवन में ना 'पति का प्रेम मिला ना ही अपने बच्चो का सुख'। सोमा अपने पति का शोषण सहने की अपेक्षा उसका विद्रोह करते हुए कहती है– "गौतम मैं जीना चाहती हूँ ,मैं जीना चाहती हूँ, यहाँ इस घर में लोग साँस लेते है लेकिन जीते नहीं। वे जीना चाहते नहीं। तुम्हारें ये हीरे ? इनकी चमक से मेरी आखें दुःखती है और जिन्दगी की राह पर हीरे बिछाकर तो नहीं चल सकते। पैरों के नीचे माटी होनी चाहिए। तुम और तुम्हारे जैसें और न जाने ऐसे कितने लोग, क्या समाज को कुछ भी देकर जाते है ? तुम्हारे लिए मेरी जिन्दगी की कोई कीमत है ?।"'[105]

सोमा ऐसी पात्र है जो पुरानी दकियानूसी परम्परा, रीति–रिवाजों, नियमों को नहीं मानती। वह उनका विरोध करती है। सोमा अपना स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। सोमा अपने जीवन के अकेलेपन से निजात पाने के लिए पढ़ना चाहती है। सोमा की शिक्षा के प्रति रूचि देखकर सोमा की ताई सास प्रोफेसर सुजीत सेन घर पर पढ़ने के लिए नियुक्त करती है। सोमा और प्रो. सुजीत सेन दोनों एक–दूसरे से प्रेम करते है फलस्वरूप सोमा गर्भवती हो जाती है। सोमा के गर्भवती होने एंव गर्भ में सुजीत का अंश होने की बात रुंगठा हाऊस में पता चलने पर गौतम नाराज होता है और गर्भपात के लिए दबाव बनाते हुए कहता है "छिनाल, वेश्या, एक गिरी हुई औरत और वह भी उस अदने से दो कोड़ी के आदमी का पाप लिए फिरती है।'"[106]

गौतम एक नपुसंक पुरुष होने के कारण अपनी पत्नी को पति होने का कोई सुख नहीं दे पाता। गौतम सोमा को गाली–गलौच करता है और अपनी गलती छुपाने की कोशिश करता है। सोमा अपने पति और ससुराल का विद्रोह करती है। उसे समाज की परवाह नही है। वह अपना स्वंय का बच्चा चाहती है। अपने नपुसंक पति एंव रूढ़िवादी सयुंक्त परिवार का विद्रोह करती हुई घर छोड़ने का निर्णय लेती है और अपने लिए जीवन साथी के रूप में प्रो। सुजीत सेन का चयन करती है। अपने अस्तित्व अपने स्वतंत्र जीवन के लिए सोमा खुलकर अपने पति का विरोध करती हुई कहती है "नहीं मुझे तुम्हारी दया नही चाहिए। दयनीय तुम हो गौतम। तुमको न अधिकार का पता और न अपने पौरुष का ख्याल। तुमको जिससे जो कहना है कह लो। मैं सबका सामना कर लूंगी। बोलो और कुछ कहना है ?''[107]

नारी अपनी अस्मिता के लिए आज समाज ,परिवार में सघर्ष करती है। स्त्री चाहें

ग्रामीण परिवेश की हो या शहरी परिवेश की अपनी अस्मिता एंव अस्तित्व की लड़ाई नारी को स्वंय लड़नी होगी। स्त्रियों को दबाने के लिए परिवार, मूल्यों, परंपराओं का सहारा लिया जाता है और आज भी लिया जाता है लेकिन इन मूल्यों, परंपराओं के समय स्त्रियाँ झुकती नहीं है बल्कि इनका विद्रोह करती है। अपने आत्मसम्मान के लिए स्त्रियाँ पुरुष सत्ता की चुनौतियों को स्वीकार करती हुई उसका विद्रोह करती है। सोमा एक आत्मविश्वासी, स्वाभिमानी स्त्री है। इसीलिए रूँगठा हाऊस की परम्पराओं का विरोध करती है और रूँगठा हाऊस एंव अपने पति से अलग होने का निर्णय लेती हुई कहती है "हाँ गौतम ! मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ। शायद इस घर से बाहर गौतम तुमको एक हजार रूपये की नौकरी नहीं मिले। लेकिन मुझे मिल जाएगी।''[108]

सोमा अपने पति से सभी सम्बन्ध खत्म करके सुजीत के साथ रहना चाहती है। गौतम ने अपने पति होने की किसी प्रकार की कोई नैतिक जिम्मेदारी नहीं निभायी। सोमा ऐसे बोझ रूपी रिश्तों को ढ़ोना नहीं चाहती और ना ही ऐसे रिश्तों में विश्वास करती है जहाँ केवल अपमान की पीड़ा को सहना पड़े, पुरानी मान्यताओं, मूल्यों को मानने के लिए विवश किया जाए। अपने पति से असंतुष्ट होने पर सोमा अपने पति का समक्ष खुलकर विरोध प्रकट करती है और सुजीत के साथ जीवन जीने के लिए कहती है–"सुजीत को छोड़ना या उसके बगैर जिंदगी जीना असंभव तो नहीं मगर मुश्किल जरूर है। गौतम उसके साथ बिताए गए सुख के पलों को नहीं भूल सकती। क्या कहा जाए गौतम की हरकतों के बारे में ? जहाँ न कभी कोई कोमलता मिली और न ही जीवन का एहसास। गौतम की अपनी भूख, जो कभी– कभी जागती थी और उस इच्छा की संतुष्टि भी केवल गौतम की अपनी संतुष्टि थी। गौतम प्रेमी नहीं मालिक था। संतुष्टि के लिए सोमा का उपयोग करने वाला और शायद इसलिए सोमा,गौतम को भूलना चाहती थी जिसको उसने केवल झेला था, सहन किया था, मगर जिसको कभी जिया नहीं था।"'[109]

सोमा अपने जीवन में अपने अस्तित्व के लिए, अपने आत्मसम्मान के लिए रूंगठा परिवार की परंपराओं का विरोध करती है और रूंगठा हाऊस को छोड़कर सदैव के लिए चली जाती है। रूंगठा हाऊस में सभी सुख–सुविधाएं होने, धन की कोई कमी नहीं होने पर भी सोमा को रूंगठा हाऊस से कोई मोह नहीं होता। सोमा

को मातृत्व का सुख चाहिए था जो रूंगठा हाऊस में मिलना असंभव था। सोमा को धन का कोई लोभ–मोह नहीं था। सोमा ने जिस हिम्मत के साथ पुरानी व्यवस्थाओं का विरोध किया उस संबंध में गोपाल राय कहते हैं कि–"सोमा, नपुंसक पति की भार्या होने पर भी पारिवारिक प्रतिष्ठा पर बलि होने को अभिशप्त है। पर वह विद्रोह करती है और परंपरागत नारी संहिता के सारे नियमों को अपने पैरों तले रौंदती हुई घर के बाहर निकल जाती है।"[110]

सोमा आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है क्योंकि समय एक शिक्षित नारी है। सोमा इस बात को भली–भांति जानती है कि पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था का विरोध नहीं करने पर स्त्री का शोषण किया जाता है। स्त्री को अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के लिए स्वयं लड़ना होगा। सोमा के संदर्भ में हरिकृष्ण राय लिखते हैं–"समाज में सोमा जैसी स्त्री पन्द्र्ह वर्षों तक अपने पति के द्वारा प्रताड़ित, अपमानित और लांछित होने के बाद बगावत पर उतर आती है और 'पति परमेश्वर' से हमेशा के लिए संबंध विच्छेद कर लेती है।"'[111]

इसी संदर्भ में शशिकला त्रिपाठी सोमा के विद्रोही रूप के संदर्भ में कहते हैं कि–"सोमा हीरे, पन्ने, जवाहरात और उनसे पनपती कटुताओं से मुक्त होती 'मिनख के प्यार' को ही सब कुछ समझती है।"'[112]

सोमा अपने ससुराल के परंपरागत संस्कारों के बंधनों को तोड़ कर अपना स्वतंत्र जीवन जीने का निर्णय करती है। सोमा स्वयं आत्मनिर्भर बन कर अपना सुखी जीवन जीना चाहती है। सोमा अपने पैरों पर खड़े होकर अपना जीवन अपने तरीके से जीना चाहती है, अपना निर्णय स्वयं लेना चाहती है। किसी भी प्रकार की विषम परिस्थिति का सामना करने के लिए सोमा अपने मजबूत इरादों से उनसे लड़ने के लिए स्वयं को तैयार करती हैं। सोमा का सुजीत के घर आना और सुजीत की पहली पत्नी चित्रा सोमा के साथ बहुत मधुर व्यवहार के साथ रहती है। चित्रा सोमा को आत्मनिर्भर बनने की सलाह देते हुए कहती है–"जो तुम्हारे साथ घटा, वह तुम्हारे साथ या किसी और भी औरत के साथ घट सकता है। कम से कम अपने पैरों पर खड़ी औरत भीख तो नहीं मांगती।'"[113]

सोमा द्वारा नौकरी करके स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने के संदर्भ में अरविंद जैन कहते हैं कि–"पारिवारिक मान–मर्यादा, नाक और नैतिकता की देहरी लांघती

नायिका (सोमा) सुरक्षित अर्थव्यवस्था के जाल–जंजाल ही नहीं तोड़ती–छोड़ती बल्कि सामाजिक संस्कारों की सीमाएं भी ध्वस्त करती नजर आती है।"[114]

सदियों से चली आ रही पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्रियों को कभी आगे नहीं बढ़ने दिया। उनके पैरों में जंजीरें डालकर घर तक ही सीमित रखना चाहा। लेकिन धीरे–धीरे शिक्षा की किरणें समाज में चारों तरफ फैलने लगी परिणामस्वरुप स्त्रियां शिक्षित होने लगी, अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होने लगी। सदियों से पैरों में जकड़ी बेड़ियों को तोड़ा, पुरानी दकियानूसी परंपराओं, मूल्यों का विरोध किया। आज स्त्रियां पुरुषों से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है। आज की शिक्षित स्त्रियां अपने सम्मान एवं समानता के अधिकार की मांग करती है। सोमा स्वयं को किसी क्षेत्र में कमजोर नहीं समझती और अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेती है। सोमा के इस आधुनिक रूप के संदर्भ में डॉ. उषा कीर्ति राणावत कहती है कि–"लेखिका ने सोमा के रूप में आधुनिक स्त्री का जो उदाहरण दिया है, वह असाधारण और नया है।"[115]

इस उपन्यास की स्त्री पात्र सोमा का चरित्र जितना प्रभावशाली है उतना ही प्रभावशाली स्त्री पात्र पद्मावती का भी है। पद्मावती एक ऐसी स्त्री है जो अपने जीवन में पुरानी परम्पराओं, मूल्यों, नियमों और रीति–रिवाजों को महत्त्व देती है। संयुक्त परिवार को जोड़े रखने में पद्मावती अपने जीवन की बलि देती है किंतु पद्मावती को अंत में वह सुख नहीं मिलता जो उन्हें मिलना चाहिए था ।

पद्मावती एक ऐसी स्त्री है जो पुरानी परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती है लेकिन जीवन में होने वाले नए परिवर्तनों को भी स्वीकार करती है। पद्मावती का असली नाम करनबाई है। माधोबाबू से विवाह के पश्चात् इनकी सुंदरता की उपाधि पद्मावती से दी गयी और इनका नाम करणबाई से पद्मावती रखा गया। माधोबाबू और पद्मावती का विवाह अनमेल विवाह होता है। पद्मावती की स्वयं की अपनी कोई संतान नहीं होने के कारण जीवन भर अनमेल विवाह और निःसंतान की पीड़ा पद्मावती सहती है। माधोबाबू के निधन होने के पश्चात् पद्मावती अपने देवर–देवरानी एवं उनके बच्चों को अपना बच्चा समझकर उनकी जिम्मेदारी स्वयं लेती है और अपना पूरा जीवन निःस्वार्थ भाव से उनके पालन–पोषण में, उनकी सभी जिम्मेदारियाँ निभाने में बिता देती है। पद्मावती अपना पूरा जीवन एक विधवा

स्त्री के रूप में जीती है और एक विधवा स्त्री होने की पीड़ा सहते हुए सभी परंपराओं का निर्वाह करती है। पद्मावती की कठिन जीवन शैली के संदर्भ में हरिकृष्ण राय कहते है–"सतृष्ण कामना से तड़प उठने वाली पद्मावती अनमेल विवाह और फिर वैधव्य से अभिशिप्त वेदी पर उस पशु की तरह छटपटाती है, जिसका सिर पूरी तरह धड़ से जुदा न हुआ हो। हजारों वर्षों से पदच्युत, पददलित, अत्याचार पीड़ित स्त्रियों की यही विडंबना है।"[116]

माधो बाबू के निधन के पश्चात् पद्मावती आधी संपत्ति की मालकिन बन जाती है। संपत्ति के लालच में देवर–देवरानी एवं उनके बच्चे पद्मावती के इर्द–गिर्द मंडराते हैं। पद्मावती इस बात से भली–भांति परिचित है कि देवर एवं उनके बच्चे संपत्ति के कारण ही उनसे जुड़े हुए हैं। यदि पद्मावती के नाम आधी संपत्ति नहीं होती तो देवर व उनके बच्चे उनकी कोई परवाह नहीं करते। संपत्ति के दम पर ही पद्मावती अपने देवर के बच्चों को अनुशासन में रखती है। मां–बाप दोनों की भूमिका में पद्मावती उनका पालन पोषण करती है। इतना करने के बावजूद भी पद्मावती अपने देवर सांवरमल के द्वारा बार–बार अपमानित होती है। एक विधवा स्त्री का जीवन जीते हुए पद्मावती सांवरमल की सभी बातें सुनती है। सांवरमल पद्मावती की जिम्मेदारियों को अनदेखा करते हुए उनका अपमान करते हुए कहता है–"चुप रहो रांड! नहीं तो तुम्हारा झोंठा पकड़कर घर से बाहर कर दूंगा।"[117]

पद्मावती सांवरमल के बच्चों को अपना समझती है। वह किसी भी परिस्थिति में अपने संयुक्त परिवार को टूटने नहीं देना चाहती है इसलिए अपने देवर सांवरमल के सारे अत्याचार, अपमान सहते हुए अपने परिवार को जोड़े रखती है। सभी बच्चों की शिक्षा, विवाह की जिम्मेदारी निभाती है। अपने कर्तव्य से कभी मुंह नहीं मोड़ती है। 'पराया कभी अपना नहीं होता' इस बात को पद्मावती जानती है और उस बात से सहमत भी होती है।अपना पूरा जीवन वह देवर के परिवार के प्रति समर्पित कर देती है। पद्मावती को अपने जीवन में कहीं कोई सुख नहीं मिलता है। अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार होने के बाद भी पद्मावती जीवन भर दुःख सहती है। अपने दुःख को अभिव्यक्त करते हुए पद्मावती कहती है कि–"क्या पड़ा है संसार में ? दुःख ही दुःख है।"'[118]

पद्मावती एवं माधो बाबू का विवाह एक अनमेल विवाह होता है लेकिन पद्मावती इस विवाह को निभाने की कोशिश करती है। माधोबाबू के निधन के पश्चात् पद्मावती का जीवन जो फूलों की भांति महकता था वह नीरस हो जाता है। माधोबाबू की मृत्यु के पश्चात् पद्मावती सुराणा जी से प्रेम करने लगती है लेकिन अपने प्रेम को जाहिर कभी नहीं करती। सुराणा जी भी पद्मावती से प्रेम करते हैं। सुराणा जी पद्मावती के विधवा होने पर उनके प्रत्येक कार्य में उनकी सहायता करते हैं। उनके सुख–दुःख में साथ खड़े होते हैं। सुराणा जी पद्मावती से विवाह करना चाहते हैं लेकिन पद्मावती अपने समाज के पारंपरिक रीति–रिवाजों, मूल्यों और संस्कारों का हवाला देती है और सुराणा जी के प्रेम को समाज के भय से कभी स्वीकार नहीं कर पाती। सुराणा जी पद्मावती के कम आयु में विधवा हो जाने पर उनके विधवा के जीवन की पीड़ा को समझते हुए दुःखी होते हैं। अपनी मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए सुराणा जी कहते हैं कि–"समाज एक विधवा स्त्री के छोटे–छोटे सुखों को भी क्यों छीन लेता है? लेकिन इन बातों का कोई अर्थ नहीं किसी के लिए। इन बातों का उद्देश्य केवल मेरे जीवन में है और मैं अकेला बिल्कुल निहत्था समाज के सामने खड़ा हूं।'"[119]

सुराणा जी एक शिक्षक नवयुवक है जो समाज की पुरानी परंपराओं, मूल्यों और नियमों में विश्वास नहीं करते हैं। सुराणा जी पद्मावती से पूरी श्रद्धा से प्रेम करते हैं। उन्होंने कभी वासना की दृष्टि से पद्मावती से प्रेम नहीं किया। वे पद्मावती के समक्ष अपने प्रेम को जाहिर भी करते हैं और पूरे विश्वास के साथ पद्मावती से कहते हैं–"पद्मावती,भगवान बड़ा नहीं होता, आदमी की निष्ठा बड़ी होती है। और उसकी यहनिष्ठा ही उसे जिलाय रखती है, जीने की क्षमता रखती है। पद्मावती तुम मेरी निष्ठा हो।"'[120]

सुराणा जी पद्मावती के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं और विवाह के पश्चात् कहीं दूसरे स्थान पर जाकर रहने का भी सुझाव देते हैं। पद्मावती सुराणा जी के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती जबकि स्वयं पद्मावती सुराणा जी से प्रेम करती है। अपने मन की भावनाओं को वह नियंत्रण करते हुए स्वयं को कठोर बनाते हुए विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देती है क्योंकि पद्मावती जिस समाज में रहती है वहां के संस्कारों के अनुसार विधवा स्त्री किसी अन्य पुरुष से प्रेम नहीं कर सकती।

पद्मावती के मन में इन संस्कारो के हावी होने के कारण सुराणा जी के साथ सुखी जीवन जीने का साहस नहीं कर पाती। सुराणा जी के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए अपने देवर–देवरानी एवं उनके बच्चों का हवाला देती है। उन्हें समझाती है कि यह मेरा संयुक्त परिवार है यह बिखर जाएगा। सुराणा जी से पद्मावती कहती है–"हां मेरे हैं। देवर जी बिगड़ते जा रहे हैं, देवरानी भोली ठहरी, सुराणा जी मेरा घर बिखर जाएगा। बच्चें रूल जाएंगे।बड़े बाबू की इज्जत मिट जाएगी।"'[121]

पद्मावती अपने समाज के संस्कारों एवं अपने परिवार के लिए अपने प्रेम का बलिदान दे देती है। स्वयं की भावनाओं को नियंत्रण करते हुए सुराणा जी का चुनाव नहीं करती और अपना पूरा जीवन अपने परिवार के लिए समर्पित कर देती है। पद्मावती सुराणा जी से हमेशा प्रेम करती रही। सुराणा जी की मृत्यु के बाद पद्मावती सुराणा जी की डायरी को गीता की भांति अपनी गोद में रखकर आजीवन उसकी पूजा करती रही। पद्मावती ने सुराणा जी के प्रेम को समाज के सामने स्वीकृति नहीं दी लेकिन अपने मन में सदैव इस प्रेम का सम्मान किया। पद्मावती के इस प्रेम रुपी मन के संदर्भ में शशिकला त्रिपाठी कहती है–"मगर प्रेम का सोता जो एक बार फूटता है, क्या वह सूख जाता है ? अनपढ़ पद्मावती सुराणा जी की डायरी को गीता की भाँति गोद में रखकर ताउम्र माला फेरती रही। उनकी यह क्रिया इस बात का प्रमाण है कि झूठी मान–मर्यादा के परे इंसान का एक हृदय होता है, जो प्यार के लिए धड़कता है।'"[122]

सुराणा जी की मृत्यु के पश्चात् पद्मावती सुराणा जी की पत्नी एवं बच्चों की जिम्मेदारी भी स्वयं निभाती है। सुराणा जी की पत्नी एवं बच्चे और देवर व उनके बच्चों का पालन पोषण पद्मावती बहुत ही लाड़–प्यार से करती है। उन्हें किसी भाँति का कष्ट नहीं होने देती। पद्मावती जहां एक ओर अपनी जिम्मेदारियों एवं कर्तव्यों को निभाती है वहीं दूसरी ओर घर में कड़ा अनुशासन भी रखती है और परिवार को जोड़े रखती है। पद्मावती अपने परिवार में अपने बेटे–बहुओं को परिवार को एक सूत्र में बांध कर चलना सिखाती है। पद्मावती अपनी बहुओं के द्वारा अपने समाज के धार्मिक–सामाजिक कर्मकांड करवाती है लेकिन स्वयं किसी कर्मकांड में विश्वास नहीं करती। पद्मावती स्वयं कहती हैं कि–''मेरे तो सौ गुणों में एक यही अवगुण है कि, भगवान में मेरा ध्यान नहीं लगता, दिन भर बस टाबरों में रमी रहती

हूं।"'[123]

पद्मावती जहां एक ओर पुरानी परंपराओं को मानती है तो वहीं दूसरी ओर जीवन में होने वाले नए–नए परिवर्तनों को स्वीकार करती है। पद्मावती समाज में व्याप्त पुरानी परंपराओं का खुलकर विरोध नहीं कर पाती। पद्मावती के इस रूप के संदर्भ में प्रकाश मनु कहते हैं कि–"ऊपर से दिखने पर ताईजी महज एक परंपरावादी स्त्री लगती है, लेकिन नहीं एक ओर उनके मन में परिवार की पुरानी परंपराओं की रक्षा का भार है तो दूसरी ओर वे नए से नए बदलावों को भी स्वीकार करने को तैयार है। यों एक परंपरागत स्त्री लगती हुई भी वे एक सच्ची आधुनिका है।"[124]

पद्मावती की सबसे बड़ी विशेषता है कि पद्मावती सदैव अपने कर्तव्य को बड़ी ईमानदारी से निभाती है और अपने समय के महत्व को, समय पर बोली गई बात के महत्व को समझती है। इसलिए अपने परिवार में अपनी बहुओं को जरूरत से अधिक बिना किसी महत्व की बात के लिए ठोकती है। पद्मावती अपनी छोटी बहू सोमा जो पढ़ी लिखी शिक्षित आधुनिक नारी है। सोमा अपने नपुंसक पति से दुःखी होकर एवं मातृत्व का सुख नहीं मिलने पर प्रोफेसर सुजीत से प्रेम करती है एवं प्रोफेसर सुजीत के बच्चे को अपने गर्भ में पालती है। सोमा अपने मातृत्व सुख के लिए पद्मावती का घर एवं अपने पति को छोड़ सदैव के लिए प्रोफेसर सुजीत के घर चली जाती है। सोमवार के इस निर्णय के पक्ष में पद्मावती अपनी राय देती हुई अपनी सखी निमली बाई कहती है–"निमली यह छोटकी की गलती नहीं है। यह तो हम लोगों की गलती थी। जब अपना ही सिक्का खोटा था तब पराई बेटी पर हम लोगों ने क्यों लांछन लगाया।"[125]

पद्मावती सोमा की पीड़ा को बहुत अच्छे से समझती थी क्योंकि पद्मावती स्वयं उस पीड़ा से गुजर चुके थी। पद्मावती की अपनी कोई संतान नहीं होने के कारण जीवन भर मातृत्व सुख से वंचित रही, सुराणा जी से प्रेम किया किंतु समाज के संस्कारों के कारण उनको प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाई। स्त्री को मातृत्व सुख नहीं मिलने की पीड़ा पद्मावती महसूस कर सकती थी इसी कारण सोमा का प्रोफेसर सुजीत से प्रेम करना, उनके बच्चे को घर में पालना, प्रोफेसर सुजीत के साथ सदैव के लिए जाना इन सभी निर्णयों में पद्मावती सोमा का साथ देती है।

पद्मावती भले ही भारी रूप में कठोर हृदय वाली दिखाई देती थी लेकिन उनके मन के भीतर मातृत्व की चाह विद्यमान थी। सोमा पद्मावती के इस रूप के बारे में जानती थी इसलिए अपना दुख अपनी ताई सास पद्मावती के साथ साझा करती है और सुकून पाती है। प्रभा खेतान ने अपने इस उपन्यास में पद्मावती के माध्यम से एक ऐसी स्त्री को प्रस्तुत किया है जो समाज में रहकर अपने परिवार के लिए अपने जीवन की आहुति देती है। स्त्री होने के नाते एक स्त्री की पीड़ा को समझती है और पूरा सहयोग करती है। स्वयं मातृत्व का सुख नहीं मिलने पर अपने देवर के बच्चों को अपना समझ कर अपना पूरा जीवन उनकी देखभाल में लगाती है।

'पीली आंधी' उपन्यास में सोमा पद्मावती के अतिरिक्त अन्य स्त्री पात्र भी है जो कथा के अनुसार अपनी भूमिका निभाते हैं। जैसें–निमली बाई (सुराणा जी की पत्नी), लता, राधाबाई और चित्रा। सोमा और पद्मावती के अतिरिक्त इस उपन्यास में चित्रा नारी पात्र भी महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में उभरकर आती है। चित्रा एक आधुनिक युग की शिक्षित नारी है। चित्रा प्रोफेसर सुजीत की पत्नी है। प्रोफेसर सुजीत कायस्थ परिवार से एवं चित्रा ब्राह्मण परिवार से होने के कारण दोनों का अंतरजातीय विवाह होता है। परिणामस्वरुप चित्रा और सुजीत को परिवार एवं समाज दोनों से बहिष्कृत कर दिया जाता है। चित्रा अध्यापन का कार्य कर एक आर्थिक रूप से सक्षम नारी है। वह किसी पर आश्रित नहीं है। अपने पति द्वारा सोमा से प्रेम करना, उसके गर्भवती होने की बात पर चित्रा थोड़ी देर के लिए विचलित होती है किंतु अपने आप को मजबूत करते हुए वह सोमा को अपने घर में बड़े लाड़–प्यार से रखती है। सोमा को सौतन का दर्जा न देते हुए अपनी बहन मानती है और आठ महीनों तक सोमा के साथ खुशी से रहती है।

चित्रा एक स्त्री के जीवन के महत्व को जानती है। वह जानती है कि एक स्त्री की पीड़ा, उसके मन की व्यथा एक स्त्री ही समझ सकती है। चित्रा के मधुर व्यवहार, सुजीत के शांत स्वभाव एवं सुजीत और चित्रा के प्रेम को देखकर सोमा स्वयं को एक अपराधी के रूप में महसूस करती है। चित्रा सोमा की मनरूस्थिति को समझते हुए उसे समझाते हुए कहती है– "चुप ! अपराध बोध से ग्रसित होकर बच्चे को मत बड़ा करना। जो कुछ भी घटा, वह कोई नया तो नहीं। मैं भी तो किसी अन्य पुरुष के प्रेम में पड सकती थी। इसमें तुम्हारा क्या दोष है ?"'[126]

चित्रा एक आधुनिक शिक्षित नारी होने के साथ–साथ जीवन के लिए आर्थिक स्वतंत्रता को महत्व देती है क्योंकि चित्रा जानती है कि जिस समाज में हम लोग रहते हैं उस समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत बेहतर नहीं है। आर्थिक रुप से मजबूत स्त्री को कुछ भी कहने से पहले समाज के लोग सोचते हैं। वह अपने ऊपर आत्मनिर्भर होती है। आर्थिक स्वतंत्रता के लिए चित्रा सोमा को बी.एड करवाती है और बी.एड के पश्चात् नौकरी लगवाने का कर्तव्य निभाती है। आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर स्त्री की स्थिति के संदर्भ में चित्रा सोमा से कहती है–"जो तुम्हारे साथ घटा, वह तुम्हारे साथ या किसी और भी औरत के साथ घट सकता है। कम से कम अपने पैरों पर खड़ी औरत भीख तो नहीं माँगती।'"[127]

चित्रा परिस्थितियों का सामना करने का साहस रखने वाली स्त्री है। सोमा को अपने ही परिवार में रखना, उसकी देखरेख करना यह सब कार्य एक वही स्त्री कर सकती है जो एक स्त्री की पीड़ा को समझती है। सोमा के बेटा होने के बाद चित्रा उस घर में नहीं रहना चाहती है। चित्रा का मानना है कि जिस घर में प्यार नहीं होता वह घर नहीं रहता। सोमा से चित्रा कहती है –"जब प्यार नहीं, तब इस व्यवस्था को ढ़ोने से क्या फायदा ? क्या इससे अच्छा नहीं कि मैं ही हट जाऊं।'"[128]

सोमा प्रेम को शाश्वत मानती है लेकिन चित्रा प्रेम को शाश्वत नहीं मानते वह उसकी एक उम्र मानती है। चित्रा इस संदर्भ में सोमा से कहती है–"बकवास ! प्रेम की भी एक उम्र हुआ करती है। किसी का प्रेम जीवित रहता है, घंटे भर के लिए तो किसी का कुछ दिन, कुछ महीने तो किसी का कुछ वर्ष। यह जरूरी तो नहीं कि दोनों का विकास एक साथ एक ही दिशा में हो?''[129] चित्रा, सोमा एवं उसके बच्चें को सुजीत को सौंपा सदैव के लिए बिना किसी को बताए अपनी बेटी के साथ चली जाती है। चित्रा अपना, घर अपना पति सोमा को सौंप देती है। चित्रा के इस प्रभावी चरित्र के संदर्भ में गोपाल राय कहते हैं–''पीली आंधी में चित्र के रूप में प्रभा ने आधुनिक नारी का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह असाधारण और नया है।''[130]

प्रभा खेतान के उपन्यास में आधुनिक युग की स्त्री के रूप में सोमा एवं चित्रा को प्रस्तुत किया है जो व्यवस्था का बोझ ढ़ोने में विश्वास नहीं करती अपितु

उसका विरोध करने में विश्वास करती हैं और खुल कर विरोध करती भी हैं। वहीं दूसरी ओर पद्मावती पुरानी मान्यताओं, परंपराओं को नकार नहीं पाती लेकिन समय के साथ–साथ नए नए बदलावों को स्वीकार करती है।

संदर्भ सूची–

1. राजेन्द्र यादव,प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे , पितृसत्ता के नये रूप, पृष्ठ. संख्या –15
2. उपनिवेश में स्त्री ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –57
3. उपनिवेश में स्त्री, प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –50
4. प्रभा खेता का औपन्यासिक संसार, डॉ. उषा कीर्ति राणावत,पृष्ठ संख्या–153
5. आओ पेपे घर चले, प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –33
6. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –54
7. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –35
8. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –66
9. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –35
10. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –24
11. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –25
12. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –25
13. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –40
14. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या –53
15. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ. संख्या – 80
16. आओ पेपे घर चले ,प्रभा खेतान , पृष्ठ। संख्या –8
17. पृष्ठ संख्या– 88
18. पृष्ठ संख्या–96
19. पृष्ठ संख्या–91
20. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–69
21. आओ पेपे घर चले, पृष्ठ संख्या– 70
22. पृष्ठ संख्या–131

23. पृष्ठ संख्या–148
24. पृष्ठ संख्या–133
25. पृष्ठ संख्या–121
26. स्त्री अस्मिता,साहित्य और विचारधारा,जगदीश चतुर्वेदी,पृष्ठ संख्या–221
27. आओ पेपे घर चलें, पृष्ठ संख्या–36
28. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–45
29. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या–386
30. तालाबंदी,प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–20
31. तालाबंदी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–91
32. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–50
33. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, डॉ.उषा कीर्ति राणावत, पृष्ठ संख्या–42
34. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी, डॉ.अशोक मराठे ,पृष्ठ संख्या–47
35. तालाबंदी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–56
36. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, डॉ.उषा कीर्ति राणावत,पृष्ठ सं –132
37. अग्निसंभवा, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–63
38. पृष्ठ संख्या– 63
39. पृष्ठ संख्या–63
40. पृष्ठ संख्या 63
41. पृष्ठ संख्या–64
42. पृष्ठ संख्या–51
43. पृष्ठ संख्या–51
44. पृष्ठ संख्या–53
45. पृष्ठ संख्या–54
46. पृष्ठ संख्या–67

47. पृष्ठ संख्या–56
48. पृष्ठ संख्या–63
49. पृष्ठ संख्या–63
50. पृष्ठ संख्या–60
51. पृष्ठ संख्या–58
52. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, डॉ.राणावत, पृष्ठ संख्या–42
53. अंतिम दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी, डॉ रामचंद्र माली, पृष्ठ संख्या–82
54. महिला उपन्यासकार, डॉ मधु संधू, पृष्ठ संख्या–51
55. छिन्नमस्ता, पृष्ठ संख्या–11
56. हंस, राजेंद्र यादव, दिसंबर– 2000, पृष्ठ संख्या– 9
57. छिन्नमस्ता, पृष्ठ संख्या– 12)
58. पृष्ठ संख्या–44
59. पृष्ट संख्या–203
60. पृष्ठ संख्या–14
61. पृष्ठ संख्या–210
62. पृष्ठ संख्या– 211
63. स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ संख्या–67
64. छिन्नमस्ता, पृष्ठ संख्या–208
65. महिला उपन्यासकार, मधु संधू,पृष्ठ संख्या– 49
66. पृष्ठ संख्या–145
67. पृष्ठ संख्या– 145
68. पृष्ठ संख्या– 144
69. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार,डॉ देशपांडे, पृष्ठ संख्या–117
70. पृष्ठ संख्या–23

71. पृष्ठ संख्या–187
72. पृष्ठ संख्या–188
73. पृष्ठ संख्या–189
74. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या–426
75. पृष्ठ संख्या–384
76. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, डॉ.राणावत, पृष्ठ संख्या–44
77. अन्या से अनन्या,प्रभा खेतान,पृष्ठ संख्या–45
78. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी, डॉ. अशोक मराठे, पृष्ठ संख्या–60
79. अपने अपने चेहरे, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–3
80. पृष्ठ संख्या–50
81. पृष्ठ संख्या–24
82. पृष्ठ संख्या–27
83. पृष्ठ संख्या–60
84. पृष्ठ संख्या–15
85. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या–385
86. अपने–अपने चेहरे, प्रभा खेतान,पृष्ट संख्या–29
87. पृष्ठ संख्या–60
88. पृष्ठ संख्या–40
89. पृष्ठ संख्या–48
90. पृष्ठ संख्या–52
91. पृष्ठ संख्या–57
92. पृष्ठ संख्या–40
93. पृष्ठ संख्या–40
94. पृष्ठ संख्या–46
95. पृष्ठ संख्या–51

96. पृष्ठ संख्या–18

97. पृष्ठ संख्या–91

98. पृष्ठ संख्या–45

99. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या –386

100. अन्या से अनन्या, प्रभा खेतान पृष्ठ संख्या–45

101. प्रभा खेतान के उपन्यास में नारी, डॉ. अशोक मराठे पृष्ठ सख्या 62

102. पीली आंधी' प्रभा खेतान पृष्ठ संख्या 131

103. हंस पत्रिका 'अरे 'ये लाईन क्यों कर गई? राजेन्द्र यादव, नवम्बर 2008 पृष्ठ संख्या–4

104. पीली आंधी, प्रभा खेतान पृष्ठ सख्या–181

105. पृष्ट संख्या– 260

106. पृष्ट संख्या– 250

107. पृष्ट संख्या– 252

108. पृष्ट संख्या –253

109. पृष्ट संख्या –249

110. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृष्ठ संख्या–385

111. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी, डॉ अशोक मराठे ,पृष्ठ संख्या– 135

112. पृष्ठ संख्या– 135

113. पीली आंधी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या– 260

114. औरत, अस्तित्व और अस्मिता, अरविंद जैन, पृष्ठ संख्या– 64

115. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार,डॉ।उषा कीर्ति राणावत,पृष्ठ संख्या– 103

116. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी, अशोक मराठे, पृष्ठ संख्या –136

117. पीली आंधी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या– 301

118. पीली आंधी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या– 137

119. पृष्ठ संख्या– 293

120. पृष्ठ संख्या– 297

121. पृष्ठ संख्या– 281

122. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी, डॉ. अशोक मराठे , पृष्ठ संख्या–137

123. पीली आंधी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–215

124. प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी, डॉ. अशोक मराठे,पृष्ठ संख्या–137

125. पीली आंधी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–143

126. पीली आंधी, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या–259

127. पृष्ठ संख्या–260

128. पृष्ठ संख्या–259

129. पृष्ठ संख्या–260

130. हिंदी उपन्यास का इतिहास , गोपाल राय, पृष्ठ संख्या–426

पंचम अध्यायः

प्रभा खेतान की आलोचनात्मक साहित्य में स्त्री संवेदना

पंचम अध्याय

प्रभा खेतान के आलोचनात्मक साहित्य में स्त्री संवेदना

प्रभा खेतान का नाम स्त्री लेखिकाओं में उच्च स्थान पर है। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री अस्मिता और उसकी पहचान को संवेदनात्मक अनुभूति के साथ अभिव्यक्त किया है। उनका स्त्री चेतना संबंधी चिंतन भारतीय एवं पाश्चत्य विचारों से प्रभावित है। वह भारतीय परिस्थितियों में स्त्री के शोषण के विभिन्न आयामों को न केवल गहराई से समझती है बल्कि पाश्चात्य विचारों के आलोक में उनका मूल्यांकन भी करती हैं।उनके ऊपर अपने प्रारंभिक स्त्री लेखिकाओं के विचारों का प्रभाव तो पड़ा ही साथ ही साथ वे पाश्चात्य विचारक सिमोन द बोउवार, सार्त्र एवं अलबेयर कामू के अस्तित्त्ववादी विचारधारा के आलोक में स्त्री की पीड़ा एवं चिंता को अभिव्यक्त करती है। सबसे बड़ी बात यह है की प्रभा खेतान भारतीय एवं पाश्चत्य विचारों को ग्रहण करते हुए उसे अपनी दृष्टि में ढ़ाल लेती है।अर्थात् वह एकांगी दृष्टिकोण से स्त्री की समस्याओं को नहीं देखती है। इस बात को हम उनकी रचनाओं में देख सकते है। वह अपने साहित्य पर पाश्चात्य चिंतन के प्रभावों को स्वयं स्वीकार करती हुई कहती है कि–''सार्त्र को शब्द दर शब्द पढ़ना किसी महायुद्ध में गोता लगाने जैसा रहा, कितना ग्रहण करे, कितना छोड़े।''[1] प्रभा खेतान के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव सार्त्र के विचारों का दिखाई देता है। सार्त्र अस्तित्त्ववादी को संवेगों के व्यवहार की प्रक्रिया मानते हैं। उनके अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञानवादी मनोविज्ञान आज भी बेहतर दिशा में है। वह कर्मशील है। गहरी चेतना लिए ओत–प्रोत है। अस्तित्त्ववादी काल और चेतना से परे है। वह केवल प्रत्यक्ष ज्ञान है। 'स्व' की खोज और चेतना है। वह मूल्य और संभावनाओं की अवधारणा है। यहाँ दूसरे के अस्तित्व की समस्या प्रमुख रूप से उभरकर सामने आ जाती है।

प्रभा खेतान का मानना है कि सार्त्र के दार्शनिक प्रभाव से ज्यादा साहित्यिक पक्ष का महत्व अधिक हैं। सार्त्र हर आदमी के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनकर व्यक्ति के करीब आना चाहते थे। 'शब्दों के मसीहा' सार्त्र का जन्म उन्होंने विसंगतियों के बीच माना है। आदमी के जिस अकेलेपन को सार्त्र ने रूपायित किया है वह अकेलापन वे बचपन से ही भोगते आ रहे हैं। सार्त्र शुरुआती दौर में

आदर्शवादी थे किन्तु बाद के दिनों में वह यथार्थवादी हो गए। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रेमचंद हो गए थे। उनके भीतर एक लम्बा स्वप्न जागकर यथार्थ में बदल जाता है। सार्त्र नीति और इतिहास से जुड़े हुए थे इसलिए वह महत्त्वपूर्ण मुद्दों को प्रकाशित करते हैं। सार्त्र अपने जीवन में ईमानदार थे किन्तु ईमानदारी के बाद भी उन पर तरह–तरह के आरोप लगते रहे हैं। सार्त्र आरोपों का खंड़न अपने साहित्य के माध्यम से करते थे। उनकी दृष्टि में 'शब्द' एक भरी हुई बन्दूक के समान होती है। 'शब्द' यदि बोलता है तो वह बन्दूक दागता है। हर एक व्यक्ति को ऐसे ही शब्दों से भरा होना चाहिए तभी देश की व्यवस्था और उसकी स्थिति में सुधर आएगा। प्रभा खेतान नेसार्त्र के प्रस्थान बिन्दु के रूप में वह मार्क्स को मानती हैं और लिखती हैं–''सार्त्र का प्रस्थान बिन्दु चाहे मार्क्स से हो अन्त में दोनों की विचारधारा एक ही पड़ाव पर आ कर रूकती है और वह है आदमी का आदमी से सम्बन्ध।''[2] इस प्रकार प्रभा खेतान 'सार्त्र शब्दों के मसीहा' को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करती हैं और साहित्यिक दृष्टि से सार्त्र का सर्वांगीण मूल्यांकन करने की कोशिश करती है।

प्रभा खेतान ने साहित्य, इतिहास और दर्शन का गहरा अध्ययन किया है। खासतौर से पाश्चात्य दर्शन और साहित्य में उन्हें निपुणता हासिल है। जिसमें सार्त्र,अल्बेयर कामू, सिगमंड फ्रायडआदि के विचारों का प्रभाव उनके दर्शन में देखने को मिलता है।इनमे सबसे अधिक प्रभाव सार्त्र के विचारों का प्रभा खेतान पर दिखाई देता है। निश्चित तौर पर उनके उपन्यासों और आलोचनात्मक रचनाओं को पढ़ते हुए हम उनके प्रभाव को देख सकते है। विशेष रूप से सार्त्र के अस्तित्त्ववाद का प्रभाव उनके साहित्य पर दिखाई देता है। सार्त्र के प्रति उनका चिंतन बहुत गहरा है। स्वयं प्रभा खेतान लिखती हैं कि–''सार्त्र मेरे कन्धे पर बेताल का भूत बनकर वर्षों बैठे रहे। जिस प्रकार बेताल कथा बोलता है और बोलते–बोलते अचानक फिर पेड़ पर जा बैठता है–सार्त्र ने वही मेरे साथ किया। कब, क्यों, कितने वर्ष ऐसा हुआ अब हिसाब लगाना मुश्किल है। मैंने पीछा छुड़ाने की कोशिश की। सोचा, क्यों नाहक इस दुरूह बौद्धिकता में फंसी। लेकिन यह मेरी अपनी यात्रा का एक हिस्सा बन गया और सार्त्र मेरे दिमागी हमसफर।''[3]

फलस्वरूप उन्होंने सार्त्र के व्यक्तित्व और साहित्य पर दो कृतियों का सृजन किया। वह अपनी पुस्तक में सबसे पहले वह सार्त्र के जन्म के बारे में बताती हैं। सार्त्र का जन्म 1905ई में पेरिस में हुआ। पिता की बचपन में ही मृत्यु हो जाने के कारण उनका पालन–पोषण नाना–नानी के घर में हुआ। वहाँ उस परिवार में पुस्तकीय महौल ज्यादा था। सार्त्र की आँखों में टेढ़ापन होने कारण बहुत कम लोगों से बोलते थे। आँखों की बदसूरती से नफरत करते हुए वह अकेले रहने लगे। लाइब्रेरी को ही उन्होंने अपनी दुनिया बना ली। सार्त्र इस प्रकार वास्तविक जगत से दूर जाते हुए अपनी ही दुनिया में खो जाते हैं। अपनी दुनिया में खोए हुए सार्त्र सबसे पहले सिमोन द बोउवार से मिलते हैं। वह एकांत वर्षों की उसकी साथी बन जाती हैं। बौद्धिकता की राह पर उनकी हमसफर बन जाती हैं। सिमोन सार्त्र के वास्तविक जीवन में हमसफर बनकर सामने आती हैं। सार्त्र के बारे में प्रभा लिखती हैं–''सार्त्र शुरू से ही एक सुरक्षित महौल में बड़े हुए थे, भूख को उन्होंने कभी महसूस नहीं किया था किन्तु वैभव की ललक भी सार्त्र में नहीं थी। पैसा और महत्वाकांक्षा इन दो मुद्दों पर उन्होंने अपने जीवन में कभी एक क्षण भी नहीं सोचा। अंत में हम पाते हैं कि सार्त्र लेखन के प्रति एक मौलिक चुनाव। उसे लेखक बनना है यही उसकी नियति है।''[4] लेकिन लेखन के प्रति सार्त्र एक दार्शनिक चुनाव भी करते हैं। द्वितीय विश्वयद्ध की विभीषिका से व्यथित होकर उन्होने अध्यापन कार्य छोड़ दिया। जबकि वह एक अच्छे अध्यापक भी थे। जर्मन दर्शन का पूरा ज्ञान प्राप्त कर सार्त्र ने अध्यापन कार्य शुरू किया था। सार्त्र ने रेजिस्टैंस आन्दोलन में भाग लिया था। इसके उपरान्त उन्होंने 'ल तौं मोर्दान' पत्रिका का सम्पादन किया था। सार्त्र की प्रमुख कृतियों में 'नासियाँ' है।

प्रभा खेतान सार्त्र के दर्शन को ग्रहण तो करती है लेकिन उसको भारतीय दृष्टिकोण में अपने साहित्य में उपयोग करती है। उन्होंने सार्त्र के दार्शनिक विचारों से अधिक साहित्यिक विचारों को अपनाया है। इसलिए वह सार्त्र के उपर लिखी पुस्तक 'सार्त्र शब्दों का मसीहा' में सार्त्र की साहित्यिक प्रतिबद्धता के बारे में बताती हैं। सार्त्र साहित्य की पूरी उपयोगिता को लेकर चलती हैं। यहाँ लेखकीय प्रतिबद्धता सर्वप्रमुख थी। सार्त्र यह मानते हैं कि लेखक के लिए पलायन का कोई मार्ग नहीं है। सार्त्र प्रतिबद्ध होते हैं और वह जीवन की विविध संभावनाओं के प्रति

प्रतिबद्ध होते हैं। सार्त्र आत्मवाद, शून्यवाद व अहंवादी धारणा के प्रति आकर्षित होते हैं। वह हर एक–दूसरे आदमी की चेतना जागृति को जाग्रत करना चाहते हैं। अपने ऊपर लगाए गए विभिन्न आक्षेपों को वह दरकिनार करना चाहते हैं। प्रभा खेतान सार्त्रकी जीवन यात्रा में आए विभिन्न पड़ावों को रेखांकित करना चाहती है। वह सार्त्र के संबंध में कहती है कि सार्त्र अपने साहित्य में व्यक्ति स्वतंत्रता की बात करते हैं। अभाव में जी रहे व्यक्ति की वह बहुत गहरे स्तर पर पकड़ बनाते हैं। यूरोप के सर्वाधिक क्रांतिकालीन समय में सार्त्र अपने चिंतन को प्रकट करते हैं। मानवीय अस्तित्व के केन्द्र में वह उसकी स्वतत्रंता को रखते हैं। मानव के रूप में जीव अपने लिए ही होता है। तथा अपने में होता है। इन तथ्यों पर सार्त्र ने गहरे स्तर पर विचार किया। सार्त्र के विचार प्रामाणिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

प्रभा खेतान ने सार्त्र के अस्तित्त्ववाद में स्पष्ट किया है कि सार्त्र नाजियों का विरोध करते हुए माक्सर्वाद के संपर्क में आए। मार्क्सवाद और अस्तित्त्ववादी को उन्होंने दो बिन्दुओं पर मिलाने की चेष्टा की है। उनके भीतर मानवीय स्वतंत्रता की चाह और कर्म की प्रधानता थी। उन्होंने मार्क्सवाद से बहुत कुछ ग्रहण किया लेकिन धीरे–धीरे समय के साथ स्थितियों में परिवर्तन हुआ और विचारों को छोड़ने के लिए सात्र उद्वत हुए किन्तु ऐसा हुआ नहीं। कोई भी व्यक्ति विचारों और बौद्धिकता को छोड़ नहीं सकता। सार्त्र के बारे में प्रभा खेतान कहती हैं कि–''वास्तव में सबसे पहले वे अपनी अस्तित्त्ववादी संरचना का निर्देश देते हैं। अतः जो भी मार्क्सवाद के लिए हुए विचार हैं जैसें शोषण, अलगाव, प्रतीकान्ध भक्ति, जड़ता इत्यादि ये हमारे प्रस्थान बिन्दु हैं और यहाँ से इतिहास की द्वन्द्वात्मकता की व्याख्या शुरू होती है।''[5]

प्रभा खेतान के दो महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रन्थ है जिनमें कुछ इन दोनों ग्रथों में सार्त्र के व्यक्तित्व और विचारों की चर्चा करती है, तो दूसरे आलोचनात्मक ग्रन्थ 'अल्बेयर कामू: वह पहला आदमी' में कामू के विचारों का उल्लेख करती है। प्रभा खेतान का विचार है कि अल्बेयर कामू को सार्त्र ने दुनिया का पहला ऐसा आदमी माना है जिसके चिंतन में गहराई दिखाई देती है। उन्होंने माना है कि कामू को सबसे अधिक निकट उसका अस्तित्व ही दिखाई दिया है। कामू ने यह विचार किया कि क्षणभंगुरता की स्थिति में उसका अस्तित्व कहाँ है ? सार्त्र यह मानते हैं कि कामू अनके बाधाओं को पार करता हुआ अस्तित्व की ओर दुबारा लौटा। वह

अपने अस्तित्व के बरक्स किसी को नहीं टिकने देते। जीवन की अर्थवत्ता उसके अस्तित्व में है। कामू ने सबसे पहले हीगेल के आदर्शवाद को नकारने का साहस किया। अल्बेयर कामू अपने जीवन की विसंगतियों से ऊबने के बाद जीवन को खोजने लगे थे। सामाजिक बहिष्कार से व्यथित होकर वह अपने अस्तितत्व के आगोश में आ गए थे। नैतिकता को कामू ने अस्तित्व का पर्याय माना था। वह इस तरह आधुनिक भाव बोध को प्रकाश में लाना चाहते थे। जीवन की विसंगतियों को कल्पना के रंग में डुबोना नहीं चाहते थे। अस्तित्व की कीमत पर कामू को कुछ भी स्वीकार नही था। अपनी प्रखर उदासियों को उन्होंन अपनी कविताओं व कहानियों एवं उपन्यासों से दूर किया अस्तित्त्ववादी को उन्होंने सौन्दर्य के आगोश में देखा उनकी सीमा धर्म और सदाचार तक नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक सौन्दर्य में दिखाई देती है। कामू ने सौन्दर्यबोध को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इस सौन्दर्यबोध से विविध प्रकार के आनन्द की प्राप्ति होती है। कामू का यह मानना था कि उत्कृष्ट सौन्दर्य से ही अस्तित्त्ववादी की प्राप्ति हो सकती है। व्यक्ति के भीतर यदि निराशा है तो वह जीवन में विविध क्रियाकलापों से वंचित रह जाता है। निश्चित रूप से प्रभा खेतान ने सार्त्र और अल्बेयर कामू के विचारों का न केवल गहराई से अध्ययन किया बल्कि वे बड़े साफगोई से स्वीकार करती है कि सार्त्र के अस्तित्त्ववादी विचारों को उन्होंने जिया है। यही करण है कि वह इन पाश्चत्य विचारकों के व्यक्तित्त्व और जीवन दर्शन को बड़ी सहजता का साथ व्याख्यित करती है। निश्चित रूप से यह रचनायें प्रभा खेतान के साहित्य में मील का पत्थर है। प्रभा खेतान से पूर्व सार्त्र और अल्बेयर कामू के दार्शनिक विचारों को बड़े ही संशय के साथ देखा जाता था। लेकिन प्रभा खेतान ने अपनी प्रतिभा के बल पर इन दोनों विद्वानों के विचारों को साहित्य में प्रयोग करके सहज और सरल बना दिया।

अपने सृष्टि काल से ही भारतीय समाज स्त्री और पुरुष के बराबरी के संबंधों पर आधारित रहा है। प्रकृति ने भी दोनों में भेदभाव नहीं किया परन्तु स्त्री परिस्थितिवश कमजोर,शोषित और पीड़ित होती गई। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उसे यह मानने पर बाध्य कर दिया कि वह पुरुष की अनुगामिनी है। उसने स्वयं भी इसे अपनी नियति मानकर प्रतिरोध करना बंद कर दिया और अपनी अस्मिता खो दी। लेकिन आधुनिक काल में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक

परिस्थितियों के प्रवाह में स्त्री ने अपनी अस्मिता को पहचाना और उसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष का मार्ग चुना। उन रास्तों पर आगे बढ़कर उसने न केवल प्रतिरोध किया बल्कि प्रतिरोध के लिए शिक्षा एवं कलम उसके हथियार बनें। इसके बल पर स्त्री लेखिकाओं ने अपने अस्तित्त्व को पहचानने की कोशिश शुरू कर दी। वे उन सभी कारणों की पड़ताल करने लगी जो उनके शोषण का कारण बने।इसी क्रम में प्रभा खेतान भी इन्हीं सवालों से जूझती और उनका उत्तर खोजती नजर आती हैं। पितृसत्ता द्वारा निर्मित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक ढ़ाचें में स्त्री की वास्तविक स्थिति का वे अवलोकन बड़ी साफगोई से करती है। पितृसत्ता के केन्द्र में स्त्री की यौनिकता संबंधी प्रश्नों पर वे बार–बार ध्यान आकृष्ट करती हैं। नव–निवेशीकरण, बाजारवाद, भूमण्डलीकरण और पश्चिमीकरण की राह पर सारा आज देश चल रहा है। इससे यह साबित होता है कि बाजार की शक्ति के हाथों दुनिया की व्यवस्थाएँ संचालित हो रही है। इस व्यवस्था का एक प्रमुख अंग स्त्री है, जो आधी–आबादी कहलाती है। परन्तु इस आधी–आबादी के षोषण पर पितृसत्तात्मक समाज को ध्यान दिए जाने की बात को रेंखाकिंत करती है। सत्ता व संस्कृति की भाषा पुरूष के यौन इच्छाओं की बोली बोलने लगी है। ऐसे में सत्ता, संस्कृति, समाज व व्यवस्था की भी बारीकी से जांच–पड़ताल व अवलोकन होना आवष्यक ही नहीं, निहायत जरूरी भी है। प्रभा खेतान के अपने जीवन–संघर्षों से प्राप्त अनुभव उनकी दृष्टि को विस्तार देती है। वे 'सार्त्र का अस्तित्त्ववादी' (1984), 'सार्त्र शब्दों का मसीहा', (1985), 'अल्वेयर कामूः वह पहला आदमी' (1993), 'उपनिवेश में स्त्री' (1999) और 'बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ' (2004) में स्त्री के सम्पूर्ण अस्तित्व, गरिमा, मानवीय मूल्य बोध की साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृति पहचान करती है। सत्ता एक तरफ 'स्त्री–सशक्तिकरण की बात करता है और अंतर्राष्ट्रीय स्त्री–दिवस मनाता है तो दूसरी तरफ स्त्री का शोषण करता है। व्यवस्था द्वारा इस स्त्री–सशक्तिकरण, विशेषण में भी यह तय हुआ है कि स्त्री को सशक्त किए जाने की जरूरत है अर्थात् वह अब तक निर्बल है, असहाय है, पीड़ित है, शोषित है। पितृसत्ता यह मानती है कि उसके शोषण का जिम्मेदार, उसे कमजोर व निर्बल बनाए रखने का जिम्मेदार वह खुद भी है। जबकि वास्तव में स्त्री को स्त्री समझा ही नहीं गया, उसे माननीय स्वरूप में पितृसत्ता ने माना ही नहीं। या तो उसे

देवी, शक्ति कहकर मानव ने उसे कुछ ऊपर रखा या कुल कंलकिनी कहकर उसे मानव से हीनतर समझा। उसकी समस्त संभावनाओं को न्यून करते हुए, उसे 'देह' या 'शरीर' या 'योनि' तक सीमित करते हुए उसे वस्तु में तब्दील कर दिया। एक बार वस्तु होने के बाद 'स्त्री' स्त्री की आवाज में न बोल सकी।उसकी इच्छा–अविच्छा पर पुरूष सत्ता हावी हो गया। दरअसल 'वस्तु' बनते और बनाते ही स्त्री मषीन हो गयी, मशीन की भांति कार्य करती दिन और रात, बिना थके–बिना रूके। अंततः स्त्री अपनी पहचान व कर्तव्य का इतिश्री करके वह बन जाती है जो दूसरे बनाना चाहते हैं। दूसरों की नजर में स्वयं को तोलने की वह आदि हो जाती है और 'स्त्री जीवन' इसी 'तोलने की क्रिया' में निहित दिखाई देता है।

पारिवारिक संरचनाओं के भीतर सदियों से स्त्रियों का दमन, शोषण व उत्पीड़न होता रहा है। यही कारण है कि उत्तर आधुनिक समय में स्त्रियाँ जैसें–जैसें शिक्षित व आत्मनिर्भर होती गयी वैसें–वैसें अपने अधिकारों को लेकर सजग होने लगी। स्त्री–मुक्ति आंदोलन या स्त्री–विमर्श सदियों से सामाजिक बंधनों में जकड़ी स्त्री की पीड़ा को सामने लाने का सशक्त हथियार है। प्रभा खेतान लिखती है कि–''कहा जाता है कि नारीवाद पारिवारिक मूल्यहीनता को प्रश्रय देता है। या फिर वह पारिवारिक संरचनाओं को तोड़ देना चाहता है। वास्तविकता कुछ और है। अगर पारिवारिक संरचनाएँ मानवीय है तो अपनी वैचारिक संभावनाओं सहित नारीवाद परिवार और समाज के मानवीय मूल्यों को नष्ट करने से बचाना चाहेगा। वह पारम्परिक समाज–व्यवस्था को परिवर्तित जरूर करना चाहता है। परिवार स्त्री की सबसे पुख्ता जमीन है। यदि इस जमीन पर खड़े होकर वह यथास्थिति के परिवर्तन के पक्ष में है और अन्य व्यापक सामाजिक जिम्मेदारियों को स्वीकारना चाहती है, तो इसे गलत क्यों कहां जाना चाहिए?''[6] बल्कि पुरूष समाज को आगे बढ़कर स्त्रियों केअधिकार उन्हें दे देने चाहिए।

कहा यह भी जाता है कि नारीवाद एक बुर्जुआ विचार है, पश्चिम की देन है या अनैतिक आचरण के समान है। यह मानने के पीछे एक कारण यह भी रहा है कि भारतीय संदर्भ में यह आयातित विचारधारा है जिसका भारतीय स्त्रियों से क्या लेना–देना ? इसी प्रकार नारीवाद शब्द को लेकर यह भी धारणा बनी है कि नारीवाद अराजक मानसिकता का प्रतीक है जो सामाजिक ताने–बाने को खत्मकर

देना चाहता है और पुरूषों के प्रति नफरत की भाषा में बात करता है। जबकि इन धारणाओं के उलट प्रभा खेतान मानती है कि ''दरअसल ये सभी धारणाएँ भ्रामक हैं। नारीवाद एक विचारधारा और जीवन शैली है। चूंकि स्त्री भी सोचना–समझना जानती है इसलिए मानवाधिकार की विचारधारा और प्रभावित आंदोलन स्त्री जीवन के लिए परिवर्तनशाली है।''[7] यदि देखा जाए तो आद्यौगीकरण और उपनिवेशीकरण ने मिलकर पूरी दुनिया में स्त्रियों के जीवन में आमूल–चूक परिवर्तन किया है। देहरी के बाहर जाकर वे फैक्ट्रियों में काम करने लगी। स्त्री श्रम को सस्ता समझा गया इसलिए कारखानों में उन्हें काम दिया गया परन्तु वेतन मजदूरी पुरूषों से कम। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद उपनिवेशीकरण भी अवसान की राह पर चले गए। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध से हुई तबाही ने राष्ट्र–राज्यों को जो फिर से सशक्त होने का मंत्र दिया उसके बाद साम्राज्यवाद का नया रूप नव–साम्राज्यवाद सामने आता है। इस नव–साम्राज्यवाद ने उत्तर–आधुनिकता के रथों पर सवारी शुरू कर दी। अर्थात् ज्ञान–विज्ञान और तकनीक के बूतों पश्चिमी देशों ने अपनी–अपनी जमीन काफी पुख्ता कर ली। नव–साम्राज्यवाद ने भूमंडलीकरण का नारा दिया। इसने ग्लोबल विलेज, ग्लोबल मनी, ग्लोबल मार्केट की अवधारणा का प्रतिपादन किया। फलतः एक तरह के विचार, एक तरह की भाषा एक तरह के खान–पान, रहन–सहन, पोशाक, कार्य–व्यापार पर जोर दिया जाने लगा। एक तरफ भूमंडलीकरण ने दुनिया में एकरूपता की बहार बहायी वहीं दूसरी ओर 'भिन्न्ता' को भी प्रश्रय दिया, 'मल्टी–कलचरल सोसाइटी' की साधारण हानि में निहित है। नव–साम्राज्यवाद ने प्रौद्योगिकी का दिनों–दिन उत्तरोत्तर विकास किया। फलतः 'औद्योगिकरण' पीछे छूट गए और 'प्रौद्योगिकीकरण' को बल मिला। 'विकास' नामक मॉडल का पैमाना गरीब देशों के लिए औद्योगिकरण को माना गया, वहीं विकसित देशों के लिए 'प्रौद्योगिकी' को औजार बनाया गया। टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाईल आदि प्रौद्योगिकी के नित उन्नत संस्करण की ही देन है। आज दुनिया का हर देश, समाज, वर्ग, लिंग, नस्ल प्रौद्योगिकी से प्राप्त इन 'वरदानों' का उपभोग कर रही है।

प्रौद्योगिकी के विकास के चरण में स्त्री–मुक्ति आंदोलन अथवा स्त्रीवाद की अवधारणा सामने आई। दूसरे शब्दों में कहें तो एक तरफ बाजारवाद, उदारवाद,

भूमंडलीकरण, प्रौद्योगिकीकरण ने दुनिया में विकास की रफ्तार पकड़ी वहीं दूसरी ओर दुनिया की आधी–आबादी कहीं जाने वाली स्त्रियों ने अपने कर्त्तव्यों व अधिकारों को लेकर पितृसत्तात्क समाज से लोहा लेना शुरू किया। प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों की आवाज को सशक्तकिया, और उन्हें सरल बनाया। सोशल मीडिया ने भी स्त्रियों को अपनी बात कहने का मंच प्रदान किया। स्त्रियों की वस्तुकरण का अभिमान विज्ञापनों, फिल्मों, टूरिज्म, सौंदर्य–प्रतियोगिता के माध्यम से चला वहीं इसके विरोध में नारीवाद ने ऊँचे कर में बोलना शुरू किया। इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि ''भूमंडलीकरण जितना स्त्री के हक में गया है, उससे कहीं अधिक हानिकारक साबित हुआ है।''[8]

उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव का सभी जगह नजर आता है। पारम्परिक मूल्यबोध नष्ट हुए हैं। व्यक्ति पहले खरीदार हुआ करता था आज उपभोक्ता समझा जाता है ''भूमंडलीकरण की प्रौद्योगिकी के कारण भारत व्यक्ति का कद गाया जाता है। ऐसे में परिवर्तन हर भोर हुआ है जिससे स्त्री–समाज भी अछूती नहीं रही। भूमंडलीकरण की प्रौद्योगिकी के कारण भारत जैसें विकासशील देशों में एक वर्ग–विशेष के पास जब अचानक पैसा आया, तो उन देशों की स्त्रियों ने समाज के पारंपरिक कामों को छोड़ नए काम की खोज में औद्योगिक क्षेत्रों की निचली गहराईयों में आश्रय लिया। इन उद्योग प्रधान शहरों में रहते हुए जिस उपभोक्तावादी समाज से उनका परिचय हुआ। वह उनकी कल्पना से भी परे या....कल तक खेत मजदूरी करने वाली स्त्री की बेटी आज पढ़–लिखकर नौकरी करके कमाते हुए एक सुनहरे भविष्य का सपना भी देख रही थी। मगर प्रगति के नाम पर इन स्त्रियों ने नैतिक आत्मबल से रहित बुर्जुआ मूल्यों को ही अपनाया। स्वाभाविक था कि वे यौन हिंसा और जातिगत भेद भाव की शिकार होती हैं।''[9]

प्रौद्योगिकीकरण के कारण बाजार में स्त्रियों की भूमिका बढ़ी है। पुरुष की अपेक्षा कम्पनियों में स्त्रियों को काम पर रखा जाने लगा। हालांकि स्त्री–हित की बात नौकरी देने वाला कम्पनी मालिक नहीं करता। वह पुरुष की ही तरह शोषण करता है। स्त्री की सुलभ कमनीयता, शील, लज्जा, संकोच जैसें गुण व सस्ते श्रम के कारण कम्पनियाँ उन्हें काम तो दे देती है परन्तु पुरूष समान वेतन नहीं देती। स्त्रियों को काम पर रखने में कई कारणों से जोखिम कम है इसलिए फैशन इंडस्ट्री,

नर्सिंग उद्योग, प्ले स्कूल, मॉल आदि पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को नौकरी में तरजीह देती है। दूसरी और ''स्त्री जन कमाने लगती है तो उसका बढ़ता हुआ आत्मसम्मान पारम्परिक परिवेश की वर्जनाओं को सहन नहीं कर पाता। अधीनस्थता की स्थिति उसके लिए असहनीय दो जाती है। अतः भूमंडलीकरण के तहत हर दिन, हर ज्ञण जारी रहने वाले इनतमाम व्यक्तिगत और सामाजिक बंधनों और तनावों से गुजरती हुई स्त्री को सोचना होगा कि अपने जीवन की दिशा–निर्देश वह किस आधार पर और कैसे करें।''[10]

प्रौद्योगिकी का ताना–बाना कुछ ऐसा है कि इसमें भी पुरूष शीर्ष पर बैठा है। एप्पल टीम कुछ, फेसबुक के मार्क जर्कर वर्ग, हो अथवा रिलायंस जियो के मुकेश अंबानी, टाटा कंसलटेनसी सर्विस के रतन टाटा–सबके सब पुरूष पात्र हैं जो दुनिया के सबसे ताकतवर कम्पनियों के सर्वेसर्वा है और पुरूष ही हैं। दुनिया को तमाम बड़ी से लेकर छोटी कम्पनियों में लिंगभेद कायम है। इसलिए कम्पनियों के ''प्रबंधन के दृष्टिकोण से देखें तो उनके स्वार्थ में गांव–देहात से आई हुई स्त्री का श्रम ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि वह दो वक्त की रोटी के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं।यदि वह अविवाहित है तो प्रबंधन का स्वार्थ और भी सिद्व होता है। इससे प्रबंधन को मातृत्व छुट्टी जैसे झंझटों का सामना नहीं करना पड़ता।''[11] इसलिए कम्पनी में नवविवाहित स्त्रियों को अधिक से अधिक कम पर रखा गया है। पुरुष की अपेक्षा अधिक कार्य करवाना और उन्हें काम के बदले मूल्य भी कम देना।

प्रभा खेतान का विचार है कि प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों को स्वावलम्बी और स्वछंद बना दिया है। आज की कामकाजी स्त्री अपने जीवन का निर्णय तो स्वयं लेने लगी है, परिवार के निर्णय में भी हस्तक्षेप करने लगी हैं।आज स्त्रियां स्वालंबन, आत्माभिव्यक्ति, निजी संपत्ति, परिवार के फैसलों में दखल अंदाजी की चाहत स्त्री–विमर्श के दायरे में वह आत्म–सम्मान के लिए आज लड़कियॉ हर ओर राम कर रही है। शासन–प्रशासन, सेना, शिक्षक, कारखाना, कॉपोरेट–हाऊस सब जगह उसकी उपस्थिति बढ़ी हैं। ''काम करने वाली स्त्री भी जानती है कि अतीत में जहाँ अपनी अज्ञानतावश वह भूखी मरती थी, आत्महत्या करती थी, कहीं आज वह अपने होने और जीने के नए–नए रास्ते खोलती जा रही है। यह तो उसने सिद्व कर दिया है कि गुलानी की जिन्दगी वह नहीं जियेगी और इस चुनौतिपूर्ण रवैये के

सामने पितृसत्ता को आज नही ंतो कल भविष्य में सिर झुकाना होगा।''[12]

यह भी सच है कि आज भूमंडलीय प्रचार–तंत्र स्त्री–आंदोलन को कमजोर व अधिकारहीन करने की जोर–आजमाईस कर रहा है। जबकि बाजारवाद की क प्रमुख उपभोक्ता होने के नाते स्त्रियाँ भोगवादी संस्कृति का प्रतिरोध आसानी से कर सकती है। स्त्री के प्रति भेदभाव रखने वाला पितृसत्ता स्त्रियों के प्रति जामान्योक्तियों की भरमार पैदा करता है ताकि विचार व राजनीति के स्तर पर शून्य पैदा हो और नारीवादी आंदोलन की कमर टूट जाए। इसलिए नारी आंदोलन के लिए समतामूलक वितरण, जयविरल औचित्य और आरक्षण के प्रति प्रतिबद्धता, सुनिश्चित करना रूरी है। आत्मसंदेह और अविश्वासों से घिरी स्त्री को अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए नए विश्वास, नमी आस्था और नयी विचारों की जरूरत है। स्त्री को राजनीतिक प्रक्रियाओं में रूचि लेनी सीखनी होगी ताकि स्त्री समाज को आगे बढ़ाया जा सकें।

सामान्य तौर पर स्त्री–पुरूष एक–दूसरे में पूरक समझे जाते हैं। परन्तु इसमें भी पुरूष विधेयक और स्त्री निषेधक होती है। इसने अतिरिक्त शास्त्र में भी स्त्री को माया कहा जाए। यहाँ तक कि मध्यकाल के सर्वाधिक प्रखर व आधुनिक कवि–समाज सुधारक कबीर ने भी नारी को 'माया महाठगिनी' कहकर संबोधित कियातो तुलसीदास ने ढोल गंवार ,शुद्र ,पशु और नारी ,सकल ताड़ना के अधिकारी कह कर संबोधित किया। वस्तुतः स्त्री के प्रति यह नजरिया सदियों से समान में कायम रही है। स्त्री–जीवन को पुरूष जीवन से था तो भिन्न समझा गया था उससे अलगाया गया। प्रभा खेतान लिखती है कि–''स्त्री की अपनी संस्कृति है, उसका अपना इतिहास, उसकी परम्परा है, जो पुरूष से भिन्न है। साहित्य के इतिहास में इसे भिन्न तो माना गया लेकिन भिन्नता को अलग पहचान नहीं दी गयी, साहित्य–जगत में भी स्त्री–पुरूष संबंधों पर विवेचन करने वक्त पुरूष की सत्ता स्वीकृत हुई तथा स्त्री के सार तत्व की खोज हुई।''[13] साहित्य में स्त्री की इस भूमिका से इतर हम राजनीति में देखे तो पाते हैं कि वहां भी सत्ता ने स्त्री षक्ति का इस्तेमाल अपनी शक्ति बढ़ाने में किया। वरना राजनीति में 50–50 की स्त्री समानुपात आज महान लोकतंत्र समझे जाने वाले भारत में हो नजर आता।

साहित्य में हम देखते कि परम्परा से समाज में भी पुरूषों का आधिपत्य रहा

है। जो स्त्रियाँ विगत कुछ दशकों में दृश्यमान हुई हैं उनके लेखन को सिर्फ स्त्री संबंधी प्रश्न 'या' नारीवादी विमर्श, तक सीमित करके देखा गया। एक स्त्री पुरूषों का इतिहास, उसकी संस्कृति, उसकी सोच, उसकी परम्परा को भी सत्यनवेषण करके जब लिखने लगी तो उसे विशेष चश्में से देखा जाने लगा। प्रायः लेखिका, स्त्री रचनाकार से पुरूष–लेखन घबराया हुआ है। यही नहीं, स्त्री लेखिका या रचनाकार के किसी मंच पर आसीन देखकर भी कुछ लोगों माथे की भृकुटी तन जाती है, यह भी सच है कि विद्यापति से लेकर तुलसी तक और केशव से लेकर घनानंद तक या फिर प्रेमचंद से लेकर राजेन्द्र यादव तक के सभी रचनाकारों ने स्त्री–स्वरूप पर जो कुछ भी कहा–वह अपनी इच्छानुसार मन–मुताबिक जाति–व्यवस्था और विवाह संस्था ने मिलकर स्त्रियों का जो 'स्त्रीकरण' किया वह अपने हित के लिए किया। पुरूषों को ऊपर रखकर पुरूषों की शक्ति को बढ़ाने के लिए किया। यही कारण है कि जाति–व्यवस्था के कारण स्त्रियॉ न तो प्रेम कर पाती है, न अपनी मर्जी से साथी का चयन न घर या आगामी परिवार का चयन, वस्तुतः ''स्त्रीकरण एक अमानवीय व्यवस्था है, जिसके तहत पुरूष ने अपने विचारों एवं अवधारणा के अनुसार स्त्री का निर्माण किया है। ऐसे निर्माण में स्वाभाविक है कि स्त्री की सहमति नहीं रही होगी। पुरूष की सवंर्धित चेतना, आधिपत्य की भावना, स्त्री–देह के प्रति पूंजीकरण की प्रवृत्ति ने न केवल साहित्य–जगत में स्त्री की नुमाइंदगी का प्रयास किया, बल्कि स्त्री–विरोधी दृष्टिकोण एवं लेखकीय विद्वेष से एक ऐसा पाठक वर्ग भी तैयार किया जो स्त्री की कमजोरियों पर चुहलबाजी से बाज नहीं आता।''[14] आज स्त्रियां ऐसे विकृत मानसिकता वाले लोगों को स्त्री लेखिकाएं करार जवाब दे रही हैं .

आज के समय में यदि पुरुष स्त्रियों को समाज में अपनी बराबरी का दर्जा देना चाहता है तो उसे अपने शब्दकोश से 'स्त्रीपन', 'औरतपन' शब्द को हटाना पड़ेगा बल्कि उसे व्यवहार इन शब्दों के प्रयोग पर पाबंदी लगनी होगी.जब तक समाज अपने मन से स्त्री को सम्मान नहीं देगा तब तक स्त्री मुक्ति संभव नहीं है . यही कारण है कि स्त्री लेखिकाओं ने पुरुष लेखन से यह अपेक्षा की कि वे अपने कर्तव्यों को स्वीकार करें 'स्त्रीपन', औरतपन, जैसें शब्दों जो साहित्य, समाज और संस्कृति में आज चल रहे हैं वास्तव में एक हीन भावना' की और इशारा करते है

और इसलिए हर और स्त्री लेखन 'अन्या' दे रूप में खड़ी नजर आती है। सदियाँ से शोषित–दमित–उत्पीड़ित स्त्री साहित्य–जगत में भी कुंठित है। ''वह पुरूषों की पैतरेंबाजी से आंतकित हैं, संपादक मंडल की लाल स्याही के सामने असुरक्षा और हीनता के बोध से ग्रसित है। आज भी पुरूष संपादक और पुरूष आलोचक लेखिकाओं से कहता है कि तुम यह लिख सकती हो और यह नहीं। उनका मसीहाई रवैया हर कहीं हावी है।''[15]

संस्कृति का निर्मित एक लम्बे कालखंड की प्रक्रिया में निहित है। किसी भी संस्कृति का निर्माण एकांगी नहीं होता उसमें स्त्री–पुरुष दोनों की सहभागिता होती है। क्योंकि दोनों का समाज में समान स्थान और अधिकार होते है। लेकिन सत्तात्मक प्रक्रिया में पुरुष ने अपने को उपर और सर्वश्रेष्ठ घोषित करके विभिन्न तरीकों से स्त्रियों को कमजोर साबित कर दिया। तमाम उपनिषद, स्मृति ग्रंथ और संस्कृत की पुस्तकों में स्त्री एक रीढ़हीन, विनम्रता वाले सात्विक गुणों से भरपुर है।

इस सन्दर्भ में स्त्रीवादी लेखिका डॉ. अनामिका का विचार है कि ''इससे बड़ा सांस्कृतिक षड्यंत्र कोई हो ही नहीं सकता कि सीता–सावित्री जैसी बागी स्त्रियों को एक मूक आज्ञाकारिता से एकाकार करके देखा जाए। न सीता कठपुतली थी, न सावित्री दोनों के स्वतंत्र व्यक्तित्व थे औरसमय आने पर दोनों ने निर्भिक निर्णय का तेज दिखाया, यह विड़म्बना ही है कि अन्यायी, असंस्कृत और भ्रष्ट पति की भी मूक प्रतिछाया बनकर रहने वाली दीन–हीन स्त्रियों को ''सीता–पावित्री' कहा जाता है।''[16] सीता से संबंधित मिथक आज की स्त्री लेखिका तोड़ रही है। सीता सावित्री जैसी विद्रोहिणी–स्त्रियों को भी, साहित्य और शास्त्र ने पति की परछाई के रूप में पेश किया और इन्हें पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली महान स्त्री–चरित्र के रूप में व्याख्यायित किया। कमोवेश समकालीन साहित्य में भी ऐसा होता है। आज के समय का ''प्रत्येक लेखक, आलोचक, विचारक, शब्द–शिल्पी, सचतेन या अर्थ चेतन रूप से स्त्री–पुरूष के बौद्धिक स्तर को भिन्नता को स्वीकार करके ही चलता है। पुरूष स्वयं को स्त्री से श्रेष्ठ संस्कृति का निर्मित एक लम्बे कालखंड की प्रक्रिया मानता है।''[17] भारतीय समाज ने इतिहास, परम्परा और संस्कृति के द्वारा स्त्री की स्थिति को कमजोर साबित करने की पुरजोर कोशिश की। इसलिए समाज द्वारा स्त्रियों के लिए ऐसे ही शब्दों को गढ़ा गया जो स्त्री की कमजोर स्थिति को बयाँ

करते हो। पितृसत्तात्मक समाज ने भाषा को भी स्त्री और पुरुष की भांति दो रूपों में बाँट दिया। इसके पीछे एक मात्र षड्यंत्र स्त्री को कमजोर दिखाना है। अतः स्त्री लेखिकाओं ने अपनी भाषा स्वयं गढ़ने शुरू कर दी फलतः वह अपने साहित्य में भी भाषा के सवाल को बड़ी ही सजगता के साथ उठाने लगी। हालांकि यह सच भी है कि भाषा का सवाल स्त्री अस्मिता से जुड़ा है। वह मानती है कि शिक्षा से वंचित करना पुरुष समाज का एक षड्यंत्र था।

उसके अतिरिक्त स्त्री लेखन की भाषा पर भी आज साहित्यिक समाज प्रश्न खड़े कर रहा है। जबकि सच यह है कि स्त्री को अपनी भाषा के अभाव में उसे पितृसत्ता की भाषा में अपने अनुभवों को सामने लाना पड़ता है। राजेन्द्र यादव इसी ओर ध्यान दिलाते हुए लिखते है कि–''अपने निजी मुहावरों के बावजूद स्त्री की अपनी कोई भाषा नहीं होती वह भी मर्द की दी होती है जो स्त्री को शक्ति संम्पन्न होने का स्थायी भ्रम देती है।''[18] यद्यपि स्त्री अपनी संवेदना व अनुभव को अपनी भाषा में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाती और न ही वह पुल्लिंगवादी भाषाई संरचना का तोड़ निकाल पाती है। कई तरह के 'जाति' सूचक शब्दों आज स्त्रियों के जुबान पर चढ़ी रहती है। महान मानने, वर्चास्व बनाने, गॉड फादर होने, भगवान होने की बात पुरूष इस तरह करता है कि स्त्रियाँ भी ऐसा मान लेती है। 'पतिदेव' के विपरीत 'पत्नी देवी' शब्दों आम लोगों की जुबान पर कमी नहीं चढ़ते। 'अर्धांगिनी' के उल्ट 'अर्धांग' शब्दों की कोई भूमिका नहीं पुरूषों ने स्त्रियों से सम्मान प्राप्ति के लिए जो भाषा गढ़ी, स्त्रियों ने वही अपना लो। और पुरूषों से अपने सम्मान के लिए कोई शब्दों वहीं गढ़ा, प्रभा खेतान लिखती है कि ''स्त्रियों ने कभी नहीं सोचा कि पुरूष अपनी महानता को गढ़ता है, अपने शब्दों जाल से वह मसीहा का भ्रम विर्मित करता है। यह पुरूष का अपना नेटवर्क है।, जिसकी बदौल्त वह स्त्री की प्रोग्रामिंग करता है, उसका संचालन करता है। शोधकर्ता, इतिहास, आलोचक जितनी मेहनत पुरूष–लेखन पर करते हैं, उतने स्त्री–लेखन पर रची नहीं करते। कबीर पर जितने शोधकार्य हुए उनमें स्त्रियों से संबंधित शोधकार्य नहीं हुए। स्त्रियों के पक्ष में कुछ नहीं लिखा गया. सार्त्र को फ्रांसीसी साहित्यिक जगत में ज्यादा सम्मान मिला, मगर सीमोन द बोउवार की उपेक्षा की गई।''[19] स्त्री–पुरूष लेखन और चिंतन के सारे प्रतिमान पुरूष समुदाय का स्त्री समुदाय पर वर्चास्व

स्थापित करने के लिए निर्मित किए गए है। सुधीष पचौरी स्त्री–लेखन की भाषायी संबंधी चिंतन पर लिखते है कि ''स्त्री केन्द्रिक चिंतन को निर्णायक विशेषता भाषा में पुरूष वर्चस्ववाद के इस ढांचे को तोड़ने की है। प्रचलित कोई भी भाषा शिक्षण केंद्रिकता से इस कदर संचालित होती है (हिन्दी तो खूब ही है) कि वह स्त्री अनुभव को पूरी तरह व्यक्त करने में असमर्थ हो रहती है। यों भाषा एक सामाजिक संबंध है, लेकिन सदियों से पुरूषों द्वारा एवं केन्द्रित अनुभवों का निर्माण करने के कारण स्त्री अनुभव को बहुत दूर तक खारिज कर चुकी है। उस दी हुई भाषा के स्तरों एवं संरचना को तोड़े बिना स्त्री को वाणी नहीं मिलती। स्त्रियाँ जहां काम करती है, वहाँ विषय–केन्द्रित भाषा के अतियार का सामना करना पड़ता है। यह स्थिति कितनी भयानक और सार्वजनिक है कि लेना, देना, लेगी, देगी, जैसे मामूली क्रियाओं तक को मर्दो द्वारा द्विअर्थी बना दिया जाता है।''[20]

आज भी साहित्य पुल्लिंगवादी भाषा के वर्चस्व के कारण वह स्त्री की वाणी नहीं पाती और इसलिए स्त्री लेखन हशिए पर दिखाई देता है। इससे पार पाने के लिए यह जरूरी है कि स्त्री जिन भाषा को खोजे, अपना स्वयं का शब्दों कोष तैयार करें। विडंबना इस बात की है कि यह मान लिया जाता है कि स्त्री लेखन की सीमा उसके स्त्री होने के कारण संकीर्ण है। उसके अनुभव का भी दायरा संकुचित होगा और इसलिए उसके लेखन की आलोचनात्मक ढंग से तत्वमीमांसा नहीं हो पाएगी? प्रभा खेतान स्त्री लेखन के संदर्भ में सवाल करती है कि ''किन–किन जोखिमों से हिन्दी समाज की स्त्रियों को गुजरना पड़ता हैं। क्या महिला लेखिकाओं को दोष देने के बदले कोई लेखक–आलोचक इस पर और गहराई से सोचने की चेष्टा करेंगा।''[21] स्त्री लेखन को सहानुभूति की नजर से देखने वाला पुरूष भला क्यों अपनी जमीन का इस्तेमाल स्त्रियों को करने के क्यों वह अपनी भाषा में स्त्रियों को बात करने की आजादी दें? अपना वर्चस्व तोड़े? इसलिए वह स्त्री की जिन्दगी को जानने का दावा की अर्थसत्य की तरह करता है। सहानुभूति की दृष्टि से विचार करने वाले पुरूष लेखन में ''स्त्री के षोषण–उत्पीड़न पर चर्चा की गई, आंसू बहाए गए, मगर समाज की इस भेद–भाव वाली संरचना के विकल्प में कुछ न सोचा गया। या फिर येन–केन प्रकारेण कुछ लेखिकाओं की बहला फुसलाकर, थोड़ी–बहुत सहूलियत देकर, अपवाद स्वरूप एक–दो को अपने समकक्ष बैठाकर बारी सबको

तिरस्कृत कर दिया गया। यह कहना कितना आसान है कि 'आखिर साहित्य के इतिहास के बारे में तुम स्त्रियाँ कितनी जानती हो? तुम लोग पढ़ती लिखती कहां हो? एक दो उपन्यास लिख दिए, दो पांच कहानियां छप गई और बस बन गईं लेखिका और लगी अरे इन साहित्यिक अरगड़े बाजियॉ, लड़ाइयों और गाली–गलौंज के माहौल में बिल्कुल चीरकर रख दी जाओंगी।''[22] हालांकि पुरुष लेखकों की धमकियों का प्रभाव स्त्री लेखिकाओं पर नहीं पड़ा. वह आज साहित्य में अपनी पीड़ाओं, वेदनाओं को खुलकर अभिव्यक्त कर रही हैं औए स्त्री जीवन से जुड़े सवालों को पुरजोर तरीके के उठा रही हैं . प्रभा खेतान मानती है कि स्त्रियों को पुरुष वर्चस्ववादी भाषा को अस्वीकार करके अपनी भाषा का सृजन करना होगा। इससे स्त्री चेतना को न केवल बल मिलेगा बल्कि पितृसत्ता के वर्चस्व को तोड़ने में सहायता मिलेगी। भाषा की इस पीड़ा को इन शब्दों में वह अभिव्यक्त करती है–''खुद कुछ रहने के लिए पुरूषों की भाषा सीखनी पड़ती है। लेकिन यह तो स्त्री की अपनी भाषा नहीं पितृसत्ता की भाषा हैं, जो लिंग विभाजन पर आधारित है। ऐसी भाषा है जहां पुरूष के लिए श्रेष्ठता का संबोधन प्रयुक्त किया जाता है। स्त्री के लिए नहीं मसलन राजा, धर्मगुरू आदि को आदर सूचक रूप से संबाोधित करते हैं मगर स्त्री को नहीं। पिता थे और मां थी, आदर सूचक रूप में मां थे, नही कहा जाता। भाषा में यह भेद–भाव, स्त्री की हीनता को पुनस्थापित करती है। इसका यह अर्थ भी हुआ कि हम स्त्रियों अपनी लड़ाई, दूसरों के हथियारों से लड़ रही है।''[23] प्रभा खेतान कहां लिख पाती है हम सच? अर्थात् पुरूषों की भाषा में स्त्रियां अपने यथार्थ व संवेदना की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से नहीं कर सकती। इसलिए स्त्री अस्मिल, स्त्री अधिकार, स्त्री गरिमा के सवाल तब तक हल नहीं होते जब तक कि स्त्री को भी अपनी भाषा नहीं बन जाए। भारतेन्द्र के शब्दों में कहें तो निज भाषा उन्नति है, निज भाषा को मूल।

प्रभा खेतान का विचार है कि पुरूषों की बनाई दुनिया में औरतों को अपने वजूद की, स्वतंत्रता की, अभिव्यक्ति की लड़ाई लड़नी ही होगी क्योंकि पुरूष–समाज द्वारा स्त्रियों के तमाम रूपों स्वरूपों पर अधिकार कर लिया गया है। स्त्री–विमर्ष इस सवाल की तहकीकात करने का सबसे सशक्त हथियार है। स्त्री का निजी जीवन, मूल्यबोध, विचारधारा, उसकी सम्पत्ति व उसकी देह पर क्यों पुरूष–समाज

अपना आधिपत्य चाहता है? इस अधिपत्य से मुक्ति के कौन–कौन से औजार हैं? इस और नारीवादी विमर्श ध्यान दिलाता है। यही नहीं, ''इतिहास में पीछे लौटकर नारीवाद को एक बर फिर से स्त्री का इतिहास लिखना होगा, अतीत पर दृष्टिपात करने का अर्थ उस अतीत का महिमा मंडन ही नहीं, बल्कि इन नए फांसीवादी मुखौटों को पहचानना और उनके दोषों को उधेड़ना है।''[24] ताकि स्त्री को, स्त्री कहने वाला स्त्री की वास्तविक शक्ति की सही–सही पहचान कर पाए और सत्ता की हवस और सत्ता का नशा–चोला उताकर बराबरी के स्तर से स्त्री–समाज को देखें, सत्ता से टकराने और सत्ता के सामने घुटने न टेकने की हिदायत देते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं कि ''अगर कोई स्त्री सत्ता के करीब है तो यह उसकी जवाब देही है कि वह स्वयं को सत्ता जनित सुविधाओं से और भ्रष्ट होने से कैसे बचाए, और जमीनी स्तर पर अन्य दूसरी स्त्रियों से अपना संवाद जारी रखें। प्रभावी संप्रेषणीयता उसका बहुत महत्वपूर्ण जरिया है जिसके अपहरण से सत्ता बाज नहीं आएगी, अतः सत्ता के संसर्ग में रहने वाली स्त्रियों को अपनी प्रतिरोध क्षमता को बचाए रखना है, समाज पर वर्चस्व के जारी उन तमाम दावों को उधेड़ते हुए धीरे–धीरे सत्ता को समझा देना है कि स्त्री के पास समस्याओं को समझने का अपना दृष्टिकोण है।''[25]

विदित है कि सत्ता तीन प्रकार की मानी गई है– राजनीतिक सत्ता, ज्ञान की सत्ता और अर्थ की सत्ता, यदि इन तीनों में से किसी एक पर आधिपत्य जमा लिया जाए तो बाकि दो सत्ताएं भी आज नही ंतो कल हाथ में आ जाएगी। इसलिए स्त्रीवाद को सबसे पहले राजनीतिक सत्ता में अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करने की बात प्रभा खेतान करती है। लेखिका, स्त्री–कलाकार, फिल्म अभिनेत्रियॉ, गृहनियॉ ये सब स्त्री–मुक्ति में प्रसंग में स्पष्ट चिंतन रखती है इसलिए इनके ऊपर दायित्व आता है कि वे कदम–कदम पर सोचे, संभले, विचार करें और प्रत्येक स्त्री की भागीदारी सत्ता में सुनिश्चित करें, ''स्त्री बौद्धिकी का काम है किवह आंदोलन को भूमंडलीय स्तर पर विस्तृत करें, व्यापक बनाए ताकि राष्ट्र और जाति का माननीय पक्ष अभिव्यक्त हो, किसी भी आंदोलन का यही मानवीय पक्ष है जो दूसरी संघर्षरत स्त्रियों से संबंधित होने की क्षमता रखता हैं।''[26] यह सच भी है स्त्री को स्वयं को मुक्त करना होगा। उसे यह मानना होगा कि वह पुरूषों से किसी भी तरह से कम

नहीं है। जब तक वह खुद में आत्मबल पैदा नहीं करेंगी तब तक स्त्री मुक्ति का कोई अर्थ नहीं है।

विगत वर्षों से स्त्री आन्दोलन स्त्रियों की मुक्ति के सवाल को लेकर संघर्षरत है परन्तु सच्चाई यही है कि नारी मुक्ति आज भी दिवास्वप्न है। नारी मुक्ति के संदर्भित सवालों को केन्द्र में रखते हुए सुभाष सेतिया कहते हैं कि ''महिलाओं को समानता, सम्मान और अधिकार देने के अब तक के सारे बहुआयामी प्रयास क्या व्यर्थ रहे हैं? क्या महिला–पुरूष समानता का सपना साकार करने में कुछ और सदियाँ लगेंगी।''[27] लेकिन स्त्रियां एक दिन स्वतंत्र जरुर होंगी। स्त्री अस्मिता का प्रश्न, शिक्षित समाज के विकास की कसौटी समझा जाता है। समाज में स्त्री और पुरूष दोनों की परस्पर भागीदारी भी रहती है। परन्तु जब सवाल स्त्री का आता है तो आज भी परिवार का दोहरा चरित्र सामने आता है। जबकि सच्चाई यही है कि ''शिक्षा की सीढ़ियों पर चढ़कर महिलाएँ आज आर्थिक स्वावलंबन की मंजिल की ओर बढ़ रही है। यह बोध बड़ी तेजी से जड़े जमा रहा है कि आर्थिक स्वाबलंन से ही पुरूष पर स्त्री की निर्भरता कम हो सकती है।''[28] सवाल यह उठता है कि क्या ऐसा संभव है कि सिर्फ आर्थिक स्वतंचता हासिल कर लेने से स्त्री स्वावलम्बी हो जाएगी और इससे पुरूषों की अधीनता की स्थिति या पुरूषों पर निर्भरता समाप्त हो जाऐगी। इस प्रश्न के गहराई में जाकर देखे तो यह सच्चाई सामने आती हैं कि विवाह नामक संस्था का निर्माण पुरूषों के हितों के साथ निर्मित ही हुआ है। अमूमन विवाह में स्त्रियाँ पुरूष के घर आती है, पुरूष का घर संभालती है और पुरूष के अधीन ही रहती है। प्रभा खेतान इस संबंध में लिखती है कि ''पितृसत्तात्मक समाज–व्यवस्था पर आधारित पुरूष प्रधान संस्थाओं और आर्थिक सामाजिक जगत में उनमें वर्चस्व के कारण स्त्री अधीनस्थ स्थिति में रहने को बाध्य है। सत्ता की भाषा और संस्कृति के पुरूष प्रधान होने से पुरूष के यौन अनुभवों को ही प्रधान माना गया है। ऐसी सत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का अपनी यौनिकता के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण होना स्वाभाविक है। चूंकि संस्कृति उसे एक 'चीज' मानती है अतः स्त्री खुद भी अपनी देह को वस्तु में ही आंकती है, उसे सजाती–संवारती है।''[29] अर्थात् दूसरों की नजर से स्वयं का आकंलन करने की वह आदि हो जाती है। इसलिए स्त्रियों को पुरूष के अधीन बनाने वाली विवाह संस्था की पोल खोलते

हुए जॉन स्टुअर्ट मिल कहते हैं कि ''विवाह की एक वास्तविक दासता है। हर घर की मालकिन के सिवाय अब कोई कानूनी रूप से दास नहीं रहा।''[30] पुरूषों की दासता को विवाह नामक संस्था के माध्यम से लोकतांत्रिक बना दिया गया। चूंकि विवाह केवल बच्चें पैदा करने के उद्देश्य से ही नहीं किया जाता इसमें यौन–जीवन के बाद यौन–संबंधों के जरिए भी पुरूष सत्ता की पैरवी की जाती है। वस्तुतः ''स्त्री की यौन प्रकृति पूरी तरह पुरूष की कामना के प्रति समर्पित है, परिणामस्वरूप यौन जीवन में मिलने वाले अन्य सुखों से स्त्री वंचित ही रहती है। प्रश्न उठता है कि जब स्त्री के सुख का ख्याल ही नहीं है तो इतर स्त्री–पुरूष के बीच यौन संबंध ही क्यों स्वाभाविक हैं? स्त्री–पुरूष के संबंधों को क्यों या गलत माना गया है।''[31]

प्रभा खेतान से पूर्व स्त्रीवादी लेखिकाओं ने स्त्री की समस्याओं को साहित्य के माध्यम से उजागर तो किया ही है लेकिन उनके साहित्य लेखन में अधिकांश भारतीय परिवेश, विचारधारा, परम्परा को ध्यान में रखकर स्त्री मुक्ति की बात करती है। वे स्त्री की पीड़ा और वेदना को जिस सहजता के साथ व्यक्त करती हैं उसमें उनके जीवन का अधिकांष भोगा हुआ यथार्थ ही अभिव्यक्त होता है। यह यथार्थ भारतीय परिवेश तक ही सीमित है जबकि प्रभा खेतान का स्त्री विमर्श एक व्यापक फलक पर देखने को मिलता है। वह स्त्री विमर्श की एक नई परिपाटी शुरू करती है इसके पीछे भारतीय साहित्य, समाज ,परम्परा के साथ ही साथ पाश्चत्य साहित्य,परम्परा और संस्कृति आदि का मिला जुला रूप अभिव्यक्त हुआ है । वह स्वयं भी विदेशों में आती जाती थी जिससे उनका अनुभव संसार अन्य स्त्री लेखिकाओं की अपेक्षा व्यापक है।वह उसी व्यापक दृष्टि से अपने साहित्य में स्त्री मुक्ति के सवालों एवं उनकी समस्याओं को देखती है। प्रभा खेतान का यह मानना है कि स्त्री आज उपनिवेश बन चुकी है। लेखिका चाहती है कि स्त्री आज पुरुष की अनुचित दास्तां को त्याग दे और स्वतंत्रा रूप से अपनी अलग पहचान बनाए। यह पहचान वह पुरुष से अलग रहकर बनाए। उनका मानना है कि स्त्री आज प्रेम और भावनाओं के नाम पर ठगी जारही है। इस प्रकार का भ्रष्टाचार व्यक्ति को विकास की ओर न ले जाकर पतन की ओर ले जाता है। स्त्री को आज केवल उपभोग की स्त्री मान लिया गया है। उसे केवल उपनिवेश तक ही सीमित कर दिया गया है। बड़े–बड़े उद्योगों में स्त्री को एक प्रोडक्ट की तरह इस्तेमाल किया जाता है। आज

उसे बाजार की वस्तु मात्रा बनाकर रख दिया गया है। प्रभा खेतान अपने उपन्यासों में स्त्री के प्रति होने वाले घरेलू हिंसा खासतौर से यौन हिंसा को बड़े पुरजोर ढंग से उठाती है । वह मानती है कि स्त्री केवल पुरुष की वंश परम्परा को बढ़ाने का केवल माध्यम है। वह केवल वस्तु मात्र है। इसलिए बहुत बार और व्याभिचार का शिकार हो जाती है। यह बात अच्छी नहीं है। वह पुरुष का वंश चलाने के लिए अभिशप्त है। उसके श्रम का मूल्य उसे नहीं मिलता है। उसके साथ भयानक मुद्दे हैं। उसकी यौनिकता को तोड़ा गया। कार्यस्थल पर उसका यौन शोषण होता है जबकि घर में उसका शारीरिक शोषण होता है और समाज के स्तर पर करोड़ों स्त्रियाँ खरीद और बिक्री में लगी हुई है। आज की स्त्री पूरी अर्थतंत्र के बहुत नज़दीक है। वह अर्थतंत्र के लिए मजबूर हो जाती है। वह केवल अपने परिवार के लिए गुलामी नहीं करती बल्कि पूरे अर्थतंत्र के प्रति वह करती है। मनोरंजन के नाम पर उनका दुरुपयोग होता है। आज स्त्री उपनिवेश बनकर बिकती है। खराब से खराब वस्तु के लिए स्त्रियों से प्रचार करवाया जाता है और खराब से खराब वस्तु को बेच दिया जाता है। यूरोप में थोड़ा सा परिवर्तन देखने को मिलता है किन्तु प्रारंभिक दौर की स्त्रियों को गला दबाकर मार दिया गया। इस संदर्भ में लेखिका कहती हैं कि ''औरतों के इस कारोबार को भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से काटकर सिर्फ एक अनैतिक व्यापार के रूप में देखने वाले लोग अक्सर इसे कानून और व्यवस्था की समस्या की तरह चिन्हित करते है। असली कारण घूम–फिर कर सामने आ ही जाता है।''[32]

भूमंडलीकरण ने बाजार को बढ़ावा दिया और विज्ञापनों के माध्यम से स्त्री को एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया। आधुनिकता के नाम पर स्त्रियां स्वछंद तो हो गई लेकिन उनका दोहरा शोषण शुरू हो गया।एक तरफ परिवार में और दूसरी और कार्य स्थल पर। बस अंतर इतना हुआ कि पहले स्त्रियों के शरीर के मूल्य नहीं मिलते थे लेकिन आज विज्ञापनों के माध्यम से वस्तु के रूप में परोसी जानी वाली स्त्री को मूल्य दिए जाते है।वर्तमान में महिलाओं का विज्ञापनों में दुरुपयोग लगातार जारी है। पुरुषों द्वारा शोषण आज भी जारी है। ऐसी स्थिति को नकारना संभव नहीं है। अधिकांश स्त्रियां राजनीति के प्रति उदासीन और विरक्त है। स्त्री की प्राथमिकता उसका घर परिवार हो गया है। परिवार जिसकी नींव में

आतंक और शोषण है। आत्मसाक्षात्कार जैसी चुनौतियों से वह लगातार गुजर रही है।

प्रभा खेतान ने न केवल पाश्चत्य साहित्य का अध्ययन किया था अपितु पाश्चत्य देशों में जाकर अपना व्यापार भी किया था। अतः उन्होंने यूरोपीय समाज और उसमे खासतौर से स्त्री जीवन को बहुत नजदीक से देखा था यही कारण है कि वह अपने आलोचनात्मक साहित्य में भारतीय और यूरोपीय स्त्रियों की तुलना करती है । उनका मानना है कि–''हमारे देश में, स्त्रियाँ जिस मात्रा में पुरुषों के अधीन हैं, यूरोप और अमेरिका में उसका श्तांश भी नहीं है। हमारा देश अधीनता का देश है, हर प्रकार की अधीनता यहाँ अंकुरित होकर फलती–फूलती रहती है। यहाँ प्रजा जिस प्रकार राजा के नितांत अधीन है अन्यत्रा उतनी नहीं । यहाँ शिक्षित–अशिक्षितजिस प्रकार गुलाम हैं अन्यत्रा उस प्रकार कही नहीं। यहाँ शुद्र भी जिस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा पददलित हैं अन्यत्र किन्हीं भी धर्मयोजकों द्वारा इस प्रकार नहीं है। यहाँ दरिद्र धनियों द्वारा जितना दबाए जाते हैं, अन्यत्रा उतना नहीं। यहाँ स्त्री जिस प्रकार पुरुषों की आज्ञानुवर्तिनी है अन्यत्रा उतनी नहीं। जितनी यहाँ रमणी पिजड़े में कैद विहंगिनी है। जैसी बोली उसे सिखाई जाएगी वैसी ही बोली यह बोलेगी। आहा देने से खाऐगी, नहीं तो एकादशी करेगी। पति अर्थात्–पुरुष देवता स्वरूप है और देवता स्वरूप ही क्यों वह शास्त्राों में सभी देवताओं में प्रधन देवता स्वरूप स्तुत्य हैं। दासीभाव इतना अध्कि है कि पत्नियों की आदर्श–स्वरूपा द्रौपदी ने सत्यभामा से अपने प्रशंसा में कहा है कि स्वामियों के संतोषार्थ में उनकी अन्य पत्नियों की परिचर्या भी करती हूँ।''[33] निश्चित रूप से स्त्रियों को अपनी मानसिकता को बदलना होगा। जब तक वह खुद को नहीं बदलेगी उसे पितृसत्ता से मुक्ति नहीं मिलेगी।

अतः कहा जा सकता है कि भारत ही नहीं वरन विश्व के प्रत्येक देश में स्त्रियों की दयनीय स्थिति है। पुरुष सत्ता उन्हें हमेशा अपनी सम्पत्ति मानता रहा है। इसलिए वह स्त्रियों के साथ वस्तुओं की तरह ही व्यवहार करता है। इसलिए प्रभा खेतान 'उपनिवेश में स्त्री' नामक आलोचनात्मक साहित्य में कहती हैं कि स्त्री उपनिवेश बनकर रह गई है।

19वीं सदी के प्रारंभ में ही भारत में औद्योगिकीकरण की शुरुआत होती है

और धीरे–धीरे भारत का शहरीकरण होना प्रांरभ हो जाता है और बाजार सजने लगते है। बाजारों के द्वारा समाज की विभिन्न सामाजिक रुढ़ियों का खंडन शुरू हो जाता है। ऐसे समय में स्त्री भी मुक्त हो जाती है या यह कहे कि वह मुक्त होने की कोशिश करती है।उस समय की स्त्री मुक्ति की समस्या को प्रभा खेतान अपने साहित्य में 'बाजार के बीचः बाजार के खिलाफ' में यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करती है। स्त्री यह मानकर चलती हैं कि स्त्री बाजार के बीच है। वह स्त्रियों को बाजार के शोषण खिलाफ सचेत करना चाहती हैं। उपलब्धि व्यवस्था में स्त्री की विविध छवियाँ हैं और स्त्री आज बाजार के आकर्षण का केन्द्र बन गई है। वह स्त्रियों को वस्तु के रूप में तब्दील कर चुका है। बाजार में स्त्री के पहचान का संकट गहराता जा रहा है। स्त्री अपनी मिटती हुई पहचान को पुनः तभी पा सकती है जब वह बाजार के खिलाफ अपनी आवाज उठायेगी। नई नैतिकता के आगोश में, बाजार में स्त्रियों को अपने अस्तित्व के लिए बराबर लड़ना पड़ रहा है। बाजार के मध्य स्त्री को अपनी जगह की तलाश है। इसी संदर्भ प्रभा खेतान कहती हैं।''घर–बाहर के प्रश्नों में विवाह या कैरिअर का चुनाव स्त्री के लिए शाश्वत प्रश्न रहा है। सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियों के परिणामस्वरूप विवाह करने और संतानोत्पत्ति के बाद घर–परिवार के लिए खुद कैरिअर छोडकर जाती स्त्रियों की संख्या कम नहीं है। बड़े पैमाने पर कामकाजी स्त्रियों में यह प्रवृत्ति देखी जा रही है।''[34]

इसी संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं–''कामकाजी महिलाओं के संकट, संघर्ष और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में सचमुच एक गंभीर बहस है। शिक्षित, स्वावलम्बी और सचेत स्त्री की यह अपने आप से भी बहस है और समाज से भी।''[35]

प्रभा खेतान अपने साहित्य में अक्सर इस बात की चर्चा करतीहै कि आधुनिकता और स्वतंत्रता के नाम पर अधिकांष स्त्रियाँ बाजार में चली जाती हैं। जहां बाजार उनका उपभोग करता हैं। बाजार उनकेउनके भीतर के स्वत्व को जीवित नहीं रखता है। घर से बाजार में आई स्त्री चरित्रहीन घोषित कर दी जाती है। उसे धीरे–धीरे यह स्थिति और खराब हो जाती है। बाजार के बीच स्त्री की छवि के संदर्भ प्रभा खेतान का मानना हैं कि –''भूमंडलीकरण का दूसरा चरण ऑटोमेशन, कम्प्यूटरीकरण और संचार क्रांति का था जिसके लिए उच्च शिक्षित और

मध्यवर्गीय–उच्चवर्गीय औरतों की जरूरत पड़ी। औरत के सौन्दर्य को उपभोक्ता क्रांति का केन्द्र बनाने के लिए पश्चिम में फिट हो चुकी सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में नई जान ड़ाली गई और तीसरी दुनिया की औरतों को विशेष रूप में सुन्दर घोषित कर दिया गया है। प्रसाधन उद्योग को मध्यवर्गीय लड़कियों और गृहणियों के रूप में असंख्य नए उपभोक्ता मिल गए। भूमंडलीकरण ने औरत का यह इस्तेमाल करते समय नर–नारी विषमता के सामाजिक पहलू की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। बाजार के पास ऐसा कोई औजार नहीं था जिसके जरिए वह इस सामाजिक शक्ति–संतुलन को प्रभावित करता। दरअसल उसका फायदा तो औरत की अधीनस्थ और परिवार के साथ बँधी हुई स्थिति कायम रखने में ही था। उसे औरत से कम वेतन के बदले अधिक श्रम जो लेना था। औरत को देह के बंधनों से निकाल कर सचेत बनाने में भी उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। इसलिए उसने सुन्दर औरत को विदुषी और विदुषी औरत को सुन्दर मानने से इनकार किया। कुल मिलाकर भूमंडलीकरण ने औरत की पारंपरिक अधीनस्थ छवि को कायम रखते हुए उसकी सुन्दरता के संस्थागत इस्तेमाल को वैश्विक आयाम प्रदान कर दिया।''[36]

बाजार में स्त्री की भूमिका को लेकर अलग–अलग लोगों की अपनी अलग–अलग विचारधाराएं हैं। प्रभा खेतान ने भी बाजार में स्त्री को शक्तिशाली रूप को उजागर किया है। वह चाहती हैं कि स्त्रियाँ बाजार की वस्तु बनकर न रह जाएँ उन्हें अपने शोषण के विराध में आवाज उठानी होगी तभी वह बाजार में रहकर अपनी पहचान भी बना सकती है और बाजार के शोषण से भी बची रह सकती है। बाजार में स्त्री आज यौन व्यापार का हिस्सा बनकर रह गई है। ज्यादातर गरीबी और बेरोजगारी वाली जगहों में यौन शोषण अधिक होता है। किन्तु यह आज मजबूरी न होकर शौक बन गया है। विदेशों में नौकरी कर रही स्त्रियाँ चाहे वह दफ्तरों में नौकरी करती हो या घरों में नौकरी करती हो वह कहीं–न–कहीं बाजार का हिस्सा है। सेक्स टूरिज्म कई ऐशियाई देशों में है। पर्यटन और मनोरंजन बाजार को नई दिशा नहीं दे रहे बल्कि बाजार के हाथों ही बिक गए हैं। देहाती इलाकों, कस्बों और शहरों से आने वाली औरतें व लड़कियाँ निर्यात संवर्धन क्षेत्र तथा फौजी इलाकों के आस–पास सेवा देती है। दूसरे शब्दों में कहें तो बाजार ने वेश्यावृत्ति के धंधे को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया है। औरतों के इस व्यापार से बड़े व्यापारियों भर्ती

ऐजेंसियों, बैंकों और अन्य संस्थाओं को जोरदार मुनाफा मिल रहा है। प्रभा खेतान ने इस भी स्थितियों पर विचार किया है। स्त्रियों के ऐसे जघन्य अपराधियों को वह किसी भी कीमत पर छोड़ना या माफ करना नहीं चाहती हैं। प्रभा खेतान का यह मानना है कि शारीरिक संरचना पुरुष प्रदत्त है किन्तु उनकी संरचना को पुरुषों ने अपने अनुसार गढ़ दिया है। और स्त्रियों को लगातार उपेक्षित किया जा रहा है। स्त्रियों के यौनांगों को विकृत करके तरह–तरह के निमय बनाकर उनकी छवि को धूमिल किया जा रहा है उसका शारीरिक शोषण करके उसे आयात–निर्यात का साधन बना दिया गया है। आयात–निर्यात का साधन बनकार पुरुष स्त्री को तरह–तरह की प्रताड़ना देता है। भयानक हिंसा से भी वह नहीं चूकता। औरतों का व्यापार भूमंडलीकरण के जरिए पूरे विश्व में फैलता जाता है। आज स्त्रियों का शोषण न हो, स्त्रियाँ ठगी न जाए इसलिए वह बाजार के खिलाफ स्त्रियों को खड़ी करना चाहती हैं।

भूमंडलीकरण दौर में स्त्री की स्थिति दयनीय हो गई है। बाजारीकरण ने जहाँ स्त्रियों आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया है। वहीं दूसरी ओर उन्हें उपभोग के रूप में इस्तेमाल भी किया है। जैसा कि उस समाज में स्त्री केवल एक देह है इससे अधिक स्त्री कुछ नहीं है। जबकि स्त्री को केवल देह मानना गलत है। यह एक ऐतिहासिक सच है कि स्त्री प्राचीन काल से ही अर्थव्यवस्था में योगदान देती हुई आयी है। स्त्री के संदर्भ में यह एक ऐतिहासिक सच भी है। अधिकांश लोग स्त्रीवाद की उस सीमा के पास जाकर भी कुछ नया करने की कोशिश करते हैं। स्त्रीवाद केवल नर और मादा के रिश्तों को ही बात नहीं करता अपितु जीवन और जगत में स्त्री की भी बात करता है। यहाँ स्त्री पराधीन है। वह मुक्ति चाहती है किन्तु अपनी पहचान भी चाहती है। कोई साहित्यिक महिला अन्य महिलाओं से बिल्कुल भिन्न होती है। वह लिखती तो है किन्तु शायद उतनी यातनाएँ नहीं झेल पाती है। बहुत सी स्त्रियाँ अनेक यातनाएँ भी झेल लेती हैं किन्तु वह यौनिकता की यातनाएँ नहीं सहती हैं। स्त्री आन्दोलन करना वर्चस्वविहीन समाज भी स्थापना करना है। यह वही क्षण है जब स्त्री आंदोलन अपने चर्मोत्कर्ष पर है। मुक्ति की सामाजिक परंपरा में नारी अब कुछ और भी चाहती है। स्त्री शोषण का इतिहास टिका है। नारीवादी महिलाएँ भूमंडलीकृत समाज में अपनी स्थिति को लेकर बराबर

संघर्ष करती हुई आयी हैं। इसी संदर्भ लेखिका का मानना हैं कि ''दरअसल ज्यादातर लोगों की नजर में स्त्री महज एक देह है। लेकिन स्त्री केवल देह तो होती नहीं और न ही स्त्री की यौनिकता को हम देह और उसके उपभोग तक सीमित कर सकते हैं। सेक्स और जेंडर दो अलग–अलग चीजें है। सेक्स का अर्थ हुआ स्त्री की जैविकता और जेंडर का अर्थ हुआ लैंगीकरण की वह सामाजिक प्रक्रिया जिसके कारण स्त्री का अस्तित्व उसकी विभिन्न भूमिकाएँ और पुरुष वर्ग के साथ उसका संबंध निर्धरित होता है। स्त्री का अपना होना और उस होने की प्रक्रिया की सारी अर्थवत्ता अब पितृसत्ता निर्धरित करती आई है। चूँकि कोई दूसरा यानि पुरुष जाति उसका निर्धरण करती है इसलिए स्त्री की अपनी स्वायत्तता नहीं रहती।''[37]

प्रभा खेतान के साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन में तमाम स्त्री के जीवन और जगत को बहुत नजदीक से देखा है उन्होंने स्त्री और पुरुष की बराबरी की बात कही है। 'सीढ़ियाँ पर चढ़ती हुई मैं' में अनुभूति की गहराई के साथ संवेदना का नयापन दिखाई देता है। स्त्री अधिकारों की बात को यहाँ व्यापक स्तर पर उठाया गया है। स्त्री की जिन्दगी के खट्टे–मीठे अनुभवों के विविध पक्षों को यहाँ रेखांकित किया गया है। प्रभा खेतान स्त्री की अस्मिता की बात करती है और उसे मानवीय गरिमा के साथ जोड़ती है। आदमी भी गरिमा या विचार के कारण कुण्ठित होती है। उनका स्त्री विमर्श उनके अस्तित्व की ही तलाश है। प्रभा खेतान का निजत्व व्यापक बाह्य समाज के साथ जुड़ता हुआ प्रतीत होता है। आदर्शों के प्रति नकार प्रभा खेतान के यहाँ बराबर दिखाई देता है। स्त्री संवेदना में उन्होंने इस तथ्य को रेखांकित किया है। लेकिन वह स्त्री के भीतर अस्तित्व की गरिमा निरंतर बनाए रखना चाहती है। उनके यहाँ महत्वाकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं है। अपने अस्तित्व के कारण वह औरों से बिल्कुल अलग है। उनका व्यक्तित्व इस दृष्टि से बहुआयामी है। वह यदि किसी पुरुष से प्रेम भी करती है तो वह प्रेम एक मीठी सी कसक है। और इस कसक को एक सुखद मोड़ देकर छोड़ देना चाहती है। उनके लिए स्त्री, जीवन का एक दर्पण है जिसमें समाज की बहुत सी सच्चाईयों को देखा जा सकता है। प्रभा खेतान स्त्रियों को आर्थिक रूप से स्वतंत्र करने के पक्ष में दिखाई देती हैं। वे मानती है कि स्त्रियों पर किसी भी प्रकार का कोई बंधन न हो।

प्रभा खेतान स्वयं आत्मनिर्भर है वह किसी दूसरे व्यक्ति पर मोहताज नहीं है। समाज किसी भी स्त्री को यदि उपेक्षित करता है तो उनकी दृष्टि में वह उचित नहीं है। वह ऐसे समाज को ही बहिष्कृत कर देना चाहती है। जो स्त्री को तरह–तरह की यातनाएँ दें उन्हें किसी भी प्रकार का कोई कष्ट दें। यही बात प्रभा खेतान ने 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में उठाई है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास के माध्यम से प्रभा खेतान कहती हैं–''शायद ये दोस्तियाँ न रहती तो मैं कभी एक ही औरत हो जाती अपने ही घरौंदे में कैद।''[38]

प्रभा खेतान कुछ पुरुष जाति के लोगों से भी नफरत करती है। वे स्वंय इस बात को स्वीकार करते हुए कहती है–''मुझे नफरत है इस पुरुष जाति से, नफरत है उससे जो मासूम छोटी बच्ची को भी नहीं छोड़ता। अब मुझे समझ में आता है कि हर समाज में इनसेस्ट प्रेम पर इतना भयानक टैबू क्यों है? क्यों सहज प्रकृति का मृत्यु धर्म इन्सेस्ट प्रेम पर लागू होता है। नहीं तो जन्म से औरत असहाय औरत, उसको न पिता छोड़ता है और न भाई। अपनी नारी देह में स्वयं में क्षत–विक्षत होकर रह जाती है। वह कभी किसी पराए पुरुष को प्यार नहीं कर पाती और न ही सृजन के सबसे सुन्दर रूप किसी और के बीज की रक्षा अपने गर्भ में कर पाती हैं। मानव जाति के लिए यह प्रयास जरूरी है।''[39] लेखिका अपने निजी दर्द को आत्मसात् करने के लिए भलाई का काम करती है। लेखिका पुरानी परम्पराओं या पुराने ख्यालातों के बीच नहीं जाना चाहती है। वह अपने हक की माँगती है। 'अपरिचित उजाले'में अंधेरे से रोशनी तक और प्रकृति का सफर प्रभा खेतान करती है। वर्तमान में उनके यहाँ अतीत के क्षण जीवित हो उठते हैं। जीवन के पात्र और स्वयं जीवन में क्रियाकलाप स्त्री, पुरुष सभी के लिए हैं।

प्रभा खेतान का मानना है कि किशोरावस्था में किया गया प्रेम, प्रेम नहीं होता वह केवल आकर्षण होता है। और इसी आकर्षण में अधिकांश लोग फँस जाते हैं। ऐसी स्थिती में स्त्री को अपनी गरिमा और अस्तित्व को बचाए रखना होगा अन्यथा वह कुछ गलत रास्तों की तरफ मुड़ सकती है। एक लम्बा अंतराल, एक लम्बी खामोशी स्त्री जीवन को कहीं न कहीं रोक देती है। प्रभा खेतान की रचनाएँ उनके अस्तित्व से शुरू होती है और अस्तित्व पर ही जाकर खत्म होती है। प्रेम और अस्तित्व एक साथ नहीं चल सकते किन्तु दर्शन और प्रेम का अस्त्वि एक साथ

चल सकता है। इसी बात को प्रभा खेतान ने रूपायित किया है। किसी भी समाज की स्त्रियाँ साहस और संवेदना के साथ जीवन जीना चाहती हैं। साहस और संवेदना का अस्तित्व उनके भीतर बहुत दूर तक समाहित रहता है। सम्बन्धों की श्रृंखला में वह गुमनामी के अंधेरे में जीती है। उसका लगातार शोषण होता रहता है। प्रभा खेतान ने स्त्री जीवन में स्त्रियों की निष्क्रमणीयता की झलक स्त्रियों के भीतर व्यापक स्तर पर नहीं लेकिन सतही स्तर पर जरूर देखना चाहती हैं। स्त्रियों के भीतर जो सत्य है उसे प्रभा खेतान बाहर लाना चाहती हैं। वह चाहती हैं कि स्त्रियों के भीतर संत्रास की भावना विकसित नहीं हो। अपनी महत्त्वपूर्ण रचना 'एक और आकाश की खोज में' प्रभा खेतान ने स्त्रियों का स्वर विविधमुखी बताया है। वह भावनाओं की जगह बौद्धिकता को स्थान देती हैं और एक नया समाज चाहती है। स्त्री शक्ति के आलोक में प्रकृति की विभिन्न व्याख्याएँ करती हैं।

प्रभा खेतान का विचार है कि हर एक कोमल पत्ता जीवन में अपने होने का सच भोग रहा है अर्थात् अपने सच की विसंगतियों को झेल रहा है। उससे आत्मसाक्षात्कार हो रहा है। वह स्त्री को रोमानी प्रवृत्ति से बाहर निकालकर जीवन की वास्तविकता में लाना चाहती है। 'एक और पहचान' में प्रभा खेतान ने स्त्री को उसकी पहचान दिलाने के लिए संघर्ष किया है। अपने जीवन के आरंभिक दिनों में प्रभा खेतान बहुत चिंतन करती थी। वह स्त्री उपेक्षिता के कारणों पर बराबर विचार करती थीं। जब उन्होंने 'द सेकेंड सेक्स' पढ़ा तो उनके विचार और भी पुष्ट हो गए। वह उस तवायफ का भी दर्द अब महसूस करने लगी जो अपना शरीर बेचने के लिए विवश है। वह स्त्री जो अपने ही पति द्वारा अपमानित, शोषित की जाती है। ऐसी स्त्री के दर्द को प्रभा खेतान महसूस करते हुए कहती हैं–

''बिस्तर की सिलवटों मे मुचड़ी पड़ी हूँ
कोख की झुर्रियों में सिकुड़ी पड़ी हूँ।
फर्श पर फैले दूध की तरह खिलरी
टूटी हुए काँच–सी बिखरी पड़ी हूँ।''[40]

संदर्भ सूची–

1. प्रभा खेतानः सात्र का अस्तित्ववाद, पृ.सं– 57
2. वही, पृ.सं.–85
3. वही, पृ.सं–9
4. सार्त्र शब्दों का मसीहा, प्रभा खेतान, पृ.सं–20
5. सार्त्र शब्दों का मसीहा, प्रभा खेतान, पृ.सं–104
6. उपनिवेष में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ.सं–11
7. उपनिवेष में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ.सं–10
8. वही, पृ.सं–24
9. वही, पृ.सं–22
10. वही, पृ.सं–23
11. वही, पृ.सं–28
12. वही, पृ.सं–34
13. वही, पृ.सं–36
14. वही, पृ.सं–37
15. वही, पृ.सं–38
16. मन मांझने की जरूरत, अनामिका पृ.सं.–13
17. स्त्री के लिए जगह, प्रभा खेतान, पृ.सं–39
18. देहरि भई विकेस, राजेन्द्र यादव सं, पृ.सं–14
19. उपनिवेष में स्त्री, प्रभा खेतान,पृ.सं.–43
20. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पृ.सं–121
21. उपनिवषे में स्त्री, प्रभा खेतान,पृ.सं–44
22. वही, पृ.सं.–45
23. वही, पृ.सं.–33
24. वही, पृ.सं.–57

25. वही, पृ.सं.–61
26. वही, पृ.सं.–74
27. वही, पृ.सं.–9
28. वही, पृ.सं.–10
29. वही,पृ.सं.–141
30. स्त्रियों की पराधीनता, रेखा कस्तवार, पृ.सं.–111
31. उपनिवेश में स्त्री, पृ.सं.–141
32. अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नए रूपः स्त्री और भूमंडलीकरणः पृ. सं–70
33. बंकिम चंद्र, आधी दुनिया, पृ.सं– 40
34. हंस भूमंडलीकरण विशेषांक, पृ.सं–173
35. अरविन्द जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, पृ.सं–93
36. अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नए रूपः स्त्री और भूमंडलीकरणः पृ. सं– 63
37. अरविन्द जैन, औरत होने की सजा, पृ.सं– 240
38. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृ.सं–16
39. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृ.सं.–20
40. प्रभाखेतान, अहल्या, पृ.सं– 42

संदर्भ सूची–

1. प्रभा खेतानः सात्र का अस्तित्ववाद, पृ.सं– 57
2. वही, पृ.सं.–85
3. वही, पृ.सं–9
4. सार्त्र शब्दों का मसीहा, प्रभा खेतान, पृ.सं–20
5. सार्त्र शब्दों का मसीहा, प्रभा खेतान, पृ.सं–104
6. उपनिवेष में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ.सं–11
7. उपनिवेष में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ.सं–10
8. वही, पृ.सं–24
9. वही, पृ.सं–22
10. वही, पृ.सं–23
11. वही, पृ.सं–28
12. वही, पृ.सं–34
13. वही, पृ.सं–36
14. वही, पृ.सं–37
15. वही, पृ.सं–38
16. मन मांझने की जरूरत, अनामिका पृ.सं.–13
17. स्त्री के लिए जगह, प्रभा खेतान, पृ.सं–39
18. देहरि भई विकेस, राजेन्द्र यादव सं, पृ.सं–14
19. उपनिवेष में स्त्री, प्रभा खेतान,पृ.सं.–43
20. सुधीष पचौरी, उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पृ.सं–121
21. उपनिवेष में स्त्री, प्रभा खेतान,पृ.सं–44
22. वही, पृ.सं.–45
23. वही, पृ.सं.–33
24. वही, पृ.सं.–57
25. वही, पृ.सं.–61
26. वही, पृ.सं.–74
27. वही, पृ.सं.–9
28. वही, पृ.सं.–10
29. वही,पृ.सं.–141
30. स्त्रियों की पराधीनता, रेखा कस्तवार, पृ.सं.–111
31. उपनिवेश में स्त्री, पृ.सं.–141
32. अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नए रूपः स्त्री और भूमंडलीकरणः पृ.

सं–70
33. बंकिम चंद्र, आधी दुनिया, पृ.सं– 40
34. हंस भूमंडलीकरण विशेषांक, पृ.सं–173
35. अरविन्द जैन, औरत अस्तित्व और अस्मिता, पृ.सं–93
36. अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नए रूपः स्त्री और भूमंडलीकरणः पृ.सं–63
37. अरविन्द जैन, औरत होने की सजा, पृ.सं– 240
38. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृ.सं–16
39. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, पृ.सं.–20
40. प्रभाखेतान, अहल्या, पृ.सं– 42

उपसंहार

उपसंहार

स्वातंत्र्योत्तर महिला लेखिकाओं में प्रभा खेतान एक बहुमुखी, बहुआयामी, विलक्षण प्रतिभा संपन्न लेखिका है। इन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं कविता, उपन्यास, आलोचना, अनुवाद आदि का सृजन किया।वस्तुतः उनके सम्पूर्ण साहित्य के केंद्र में स्त्री है। वे अपने साहित्य में स्त्रियों की संवेदनाओं को समाज के समक्ष मार्मिक तथा गंभीरता से प्रस्तुत करती हैं। उनका संपूर्ण साहित्य स्त्रीत्ववादी चेतना से ओतप्रोत दिखाई देता है और उनके साहित्य का प्रमुख उद्देश्य स्त्रीत्ववादी आत्मचेतना को प्रस्तुत करना है।

प्रभा खेतान ने अपने लेखन के माध्यम से समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरुषवादी मानसिकता का विरोध करते हुए सामजिक, धार्मिक रुढ़ियों, परम्पराओं और अन्धविश्वासों का भी खंडन किया है। समाज में धर्म एवं अर्थ के आधार पर सर्वाधिक शोषण दलित एवं स्त्रियों का किया गया। समाज में स्त्रियों को धर्म के नाम पर अपमानित किया गया और आर्थिक रूप से उनकी स्थिति कमजोर बनाई गई जिससे उनकी निर्भरता सदैव पुरूषों पर बनी रही। स्त्रियों को समाज में केवल उपभोग की वस्तु के रूप देखा जाता था। क्योंकि स्त्री चेतना का अभाव होने के कारण स्त्रियाँ जागरूक नहीं थी, अपने अधिकारों, अपने अस्तित्व के प्रति सजग नहीं थी। इसलिए अपने शोषण का विरोध नहीं कर पाती थी लेकिन जैसें–जैसें समाज में स्त्रीवादी आन्दोलन हुए, वैसे–वैसे स्त्री चेतना की लहर समाज में फैलती गई जिसके परिणामस्वरूप स्त्रियाँ धीरे–धीरे अपने अस्तित्व, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी। आज की आधुनिक स्त्रियाँ समाज में अपने शोषण का विरोध करती है। यही स्त्रियों के विद्रोह का स्वर हमें प्रभा खेतान के साहित्य में दिखाई देता है। उनकी रचनाओं के पात्र पारम्परिक पृष्ठभूमि से होने के बाद भी अपने अस्तित्त्व और सम्मान के लिए समाज की शोषणकारी नीतियों का विरोध करती हैं।

प्रभा खेतान की साहित्यिक कृत्तियों में उनके जीवन के यथार्थ का चित्रण मिलता है। उनकी कविताओं, उपन्यासों एवं आत्मकथा में उनके भोगे गए जीवन का

यथार्थ और उनकी संवेदनाएं दिखाई देती है। उन्होंने अपने जीवन में जो देखाऔर महसूस किया उसकी अभिव्यक्ति वे कविताओं के माध्यम से करती है। प्रभा खेतान कविता को अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का एक माध्यम मानती है। कविता वह माध्यम है जिसमें व्यक्ति अपनी मन की दबी आवाज को वाणी देता है और मन में दबे विचारों को बाहर निकालता है। कविता मन की कुण्ठाओं और निराशा को व्यक्त करता है। अपने मन की उलझनों को दूर करने का प्रयत्न करता है। जो बात हम हम मुख से अभिव्यक्त ना कर पाये वह कविता के माध्यम से व्यक्त करते हैं। दरअसल कविता व्यक्ति के मन के भावों के उद्‌गार का माध्यम है। कवि जब कविता करता है तब कविता के भीतर उसका प्रतिबिम्ब झलकता है। इसी तरह प्रभा खेतान की कविताओं में भी उनका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। कविताओं के माध्यम से व्यक्ति अपने मन में दबे विचारों, मन की कुंठाओं को अभियक्त करते हुए अपनी उलझनों को दूर करता है। प्रभा खेतान ने अपने काव्य संग्रहों के माध्यम से स्त्री जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए स्त्री के मनः स्थिति कोचित्रित करती है। एक कवयित्री के रूप में प्रभा खेतान अपने जीवन में मि. सर्राफ से प्रेम करती है। प्रेम में जो पीड़ा और वेदना उन्हें मिलती है, उसी वेदना की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रेम की पीड़ा के, अतिरिक्त स्त्री के जीवन संघर्ष, शोषण की पीड़ा और अपमान की वेदना, स्त्री मुक्ति की छटपटाहट, कामकाजी महिलाओं की व्यथा, पाश्चात्य प्रभाव से ग्रस्त स्त्री की पीड़ा, भूख, गरीबी और आतंकवाद जैसी समस्याओं को अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। अपनी कविताओं में स्त्री जीवन की पीड़ा के अतिरिक्त प्रकृति के प्रति अपने लगाव व प्रकृति के मनोरम दृश्यों का भी प्रभा खेतान चित्रण करती है।

प्रभा खेतान जिस मारवाड़ी समाज में रहती है उस परिवार और समाज द्वारा बार–बार शोषित और अपमानित की जाती है जिसकी वेदना उनकी आत्मकथा में स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी आत्मकथा उनके भोगे गए यथार्थ का प्रमाणिक दस्तावेज है। प्रभा खेतान ने अपने जीवन में एक स्त्री के रूप में जिस पीड़ा और

वेदना को सहा था उसकी अभिव्यक्ति उनकी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में दिखाई देती है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा में विदेशी महिलाओं की त्रासदी को भी प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि स्त्रियां कहाँ नहीं रोती, स्त्रियां सभी जगह रोती है। दुनियां का ऐसा कोई कोना नहीं है जहाँ स्त्री नहीं रोती। प्रभा खेतान अपने स्त्री पात्र आइलीन के माध्यम से यह बताती है कि स्त्री जितना रोती है, वह उतनी ही औरत होती जाती है।

इसके साथ प्रभा खेतान यह भी बताती है कि स्त्रियां जन्म से स्त्री नहीं होती अपितु समाज उसे स्त्री बनाता है। स्त्री एक मनुष्य के रूप में जन्म लेती है, लेकिन स्त्री–पुरुष का भेद समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आधार पर किया जाता है। परिवार , समाज में स्त्री के श्रम का कोई मूल्य नहीं होता है।आर्थिक रूप से उन्हें कमजोर बनाया जाता है ताकि समाज में स्त्री अपना कोई स्थान नहीं बना पाए। प्रभा खेतान की आत्मकथा में स्त्रियों की आर्थिक शोषण की पीड़ा दिखाई देती है। औरत के आर्थिक अवदान को नकारने की परम्परा रही है। पहले गृहस्थी में उसके श्रम को नकारा जाता है, फिर मुख्यधारा में उसे स्थान दिया जाता है तब उस स्त्री को या तो अपवाद मानकर पुरुष वर्ग अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है, या फिर उसे परे ढ़केल दिया जाता है। परन्तु आने वाले समय में औरत की सबसे बड़ी लड़ाई इस मुख्यधारा में बने रहने की होगी।

प्रभा खेतान के उपन्यासों का विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि उनकी आत्मकथा के ही अंश उनके सभी उपन्यासों में दिखाई देते हैं। उनके उपन्यासों में उनके जीवन की संघर्ष की व्यथा उनके स्त्री पात्रों द्वारा अभियक्त होती है।उनके उपन्यासों में भारतीय समाज के स्त्रियों के जीवन संघर्ष के साथ–साथ पाश्चात्य समाज की स्त्रियों की भी शोषण की पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है।लेखिका ने स्वयं विदेशी महिलाओं की समस्याओं को बहुत ही गहराई से देखा और महसूस किया। विदेशों में रहनेवाली स्त्रियाँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के बावजूद स्त्री भी अपने जीवन में सुख के क्षणों के लिए तरसती हुई दिखाई देती है।

'आओ पेपे घर चले' और 'अग्निसंभवा' उपन्यासों के माध्यम से प्रभा खेतान

ने पाश्चात्य स्त्रियों की वेदनाओं को अभिव्यक्त किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र अपने जीवन में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए भी दिखाई देती है। 'आओ पेपे घर चले' उपन्यास में लेखिका ने लॉस एंजेल्स, सेंट लुइस और न्यूयार्क में रहते हुए अपने अनुभवों के आधार पर अमेरिकी स्त्री के जीवन की व्यथा को प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासों की सभी स्त्री पात्र आर्थिक दृष्टि से संपन्न और आत्मनिर्भर हैं किन्तु अपने सीने में अपने शोषण की पीड़ा और एकाकीपन की मानसिक वेदना को दबाये हुए अपना जीवन यांत्रिक रूप से जीते हुए दिखाई देती है। वस्तुतः अमेरिकी संस्कृति ने पूरी दुनिया में भूमंडलीकारण के नाम पर पश्चिमीकरण, उदारीकरण, निजीकरण और बाजारीकरण का ऐसा जाल बिछाया कि मनुष्य की जिन्दगी यांत्रिक, भोगवादी व असंवेदनशील होती गई । अमेरिका की व्यावसायिक जिन्दगी और भोगवादी वृत्ति ने मनुष्य की मानवीय संवेदनाओं को खत्म कर दिया है ।

'तालाबंदी' उपन्यास में प्रभा खेतान ने व्यापारिक जगत की समस्याओं को प्रस्तुत किया है। एक स्त्री होने केनाते व्यापारिक जगत में आने वाली उन सभी कठिनाईयों का वर्णन किया है जो एक स्त्री को स्वतंत्र रूप से व्यवसाय करने से रोकती है। अपनी फैक्ट्री के स्थापित होने, बंद होने,धनऔर कमाने की अधिक लालसा में परिवार से बढ़ती दूरी और उनसे होने वाली अनेक समस्याओं को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास में श्याम बाबू पात्र के माध्यम से दिखाया है।

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में एक ऐसी स्त्री के जीवन के संघर्ष की कहानी है जो पुरुष प्रधान समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरूषों के वर्चस्व के विरुद्ध अपनी एक अलग पहचान और जमीन तैयार करना चाहती है। वह अपना स्वतंत्रजीवन जीना चाहती है तथा, अपने निर्णय स्वयं लेना चाहती है। उपन्यास की नायिका प्रिया के माध्यम से लेखिका समाज में स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्त्व की बात करती है। प्रिया अपने समाज एवं अपने परिवार से संघर्ष करते हुए अपना स्वतंत्र व्यापार स्थापित करने के साथ अपना अस्तित्त्व भी स्थापित करती है। इस उपन्यास में लेखिका ने स्त्री की आर्थिक रूप से कमजोर स्थिति, यौन शोषण की पीड़ा के

साथ–साथ पारिवारिक रिश्तों में तनाव, पति–पत्नी के बनते–बिगड़ते संबंधों को दिखाया गया है।

'अपने–अपने चेहरे' उपन्यास में प्रभा खेतान ने रमा स्त्री पात्र के माध्यम से 'दूसरी औरत' होने की पीड़ा को बहुत ही मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान ने स्वयं समाज में 'दूसरी औरत' होने की पीड़ा को सहा था।उन्होंन इस उपन्यास में'दूसरी औरत' के रूप मिली मानसिक वेदना और अपने अनुभवों को अभिव्यक्त किया है।

'पीली आंधी' उपन्यास में मारवाड़ी समाज में परम्परा एवं आधुनिकता के मध्य झूलती स्त्री की कसमसाहट है जो उस व्यवस्था से समझौता नहीं करना चाहती। इस उपन्यास की पद्मावती स्त्री पात्र पुरानी परम्परा का निर्वहन करते हुए समाज में होने वाले नए परिवर्तनों को भी स्वीकार करती है वही सोमा एक आधुनिक शिक्षित स्त्री है जो पुरानी परम्पराओं और रूढ़िवादी मानसिकताओं का खुलकर विरोध करती है। अपनी मातृत्व सुख के लिए अपने नपुंसक पति को छोड़ देती है तथा वहसमाज की परवाह नहीं करते हुए अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व स्थापित करती है। इस उपन्यास में समाज में व्याप्त पुरुषवादी मानसिकता से संघर्ष करने की पीड़ा प्रस्तुत की गई है ।

प्रभा खेतान के चिंतन साहित्य पर दृष्टि डालें तो उनका साहित्य सिमोन द बोउवार, सार्त्र, अल्बेयर कामू और सिंगमड फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित दिखाई देता है। उनके साहित्य चिंतन पर सबसे अधिक प्रभाव सार्त्र के अस्तित्त्ववादी विचारों का दिखाई देता है। सार्त्र के चिंतन संबंध में वे मानती हैं कि सार्त्र को शब्द दर शब्द पढ़ना किसी महायुद्ध में गोता लगाने जैसा है। उसे कितना ग्रहण करें और कितना छोड़े यह समझना बहुत मुश्किल है। उन्होंने सार्त्र से प्रभावित होकर अपने साहित्य में स्त्रियों की समस्याओं पर चिंतन किया है। प्रभा खेतान पाष्चात्य स्त्री लेखिका सिमोन द बोउवार के विचारों से बहुत प्रभावित थी इसलिए उन्होंने सिमोन द बोउवार की 'द सेकेंड सेक्स' स्त्री विमर्श संबंधी पुस्तक का हिंदी में 'स्त्री उपेक्षिता'के नाम से अनुवाद किया। जो हिंदी साहित्य में स्त्री

विमर्श के क्षेत्र में एक नए दृष्टिकोण के साथ स्त्रियों की समस्याओं को प्रस्तुत करती हैं। इसके साथ ही आज के भूमंडलीकरण, बाजारवाद के दौर में स्त्रियों को मात्र एक उपभोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करके उनके श्रम के मूल्य को नकारा जा रहा है । स्त्रियों को एक ब्रांड के रूप में बाजार में दिखाया जा रहा। इस तरह से बाजार स्त्रियों के शोषण के नए–नए आयामों को बढ़ावा देता है। आज के समय में स्त्रियों को मीडिया, बाजारऔर विज्ञापनों के माध्यम से शोषित किया जा रहा है। प्रभा खेतान स्त्रियों के शोषण की पीड़ा को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करती है।

''इतिहास और पम्परा से मुक्त
बिल्कुल ताजा
नई–नई रेशमी साड़ी पहन
वह टंग गयी
आधुनिकता के हैंगर पर।''[1]

प्रभा खेतान ने अपने लेखन के माध्यम से स्त्रियों की शोषण की पीड़ा और उनकी वेदनाओं को अभिव्यक्त किया है। उनके सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री जीवन जिन विडम्बनाओं और असंगतियों के साथ समाज में दिखलाई पड़ता है, उनके प्रति गहन एवं बृहत्तर चितंन की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची–

1. सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं, प्रभा खेतान, पृ.सं – 26

संदर्भ ग्रंथ

कविता संग्रह–

1. खेतान, प्रभा, अपरिचित उजाले, अक्षर प्रकाशन, प्रा. लि., 2–36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 1981।
2. खेतान, प्रभा, सीढ़ियां चढ़ती हुई मैं,, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन,, दिल्ली, संस्करण 1982।
3. खेतान, प्रभा, एक और आकाश की खोज में,, अप्रस्तुत प्रकाशन, कलकता, संस्करण 1985।
4. खेतान, प्रभा, कृष्णधर्मा मैं, स्वर समवेत–6, प्रकाशन, तनसुक लेन, कलकता, संस्करण 1986।
5. खेतान, प्रभा, हुस्नबानों और अन्य कविताएं, स्वर समवेत–6, प्रकाशन, तनसुक लेन, कलकता, संस्करण 1987।
6. खेतान, प्रभा, अहल्या, सरस्वती विहार, जी़. टी रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 1988।

उपन्यास–

1. खेतान, प्रभा, आओ पेपे घर चलें, सरस्वती विहार, जी़. टी रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 1990।
2. खेतान, प्रभा, तालाबंदी,, सरस्वती विहार, जी़. टी रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण 1991।
3. खेतान, प्रभा, अपने– अपने चेहरे, किताबघर, 24, अंसारी रोड़, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 1991।
4. खेतान, प्रभा, अग्निसंभवा, हंस मासिक , (मार्च 1992–मई 1992),नई दिल्ली 1992।
5. खेतान, प्रभा, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि.,1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, संस्करण 1993।
6. खेतान, प्रभा, पीली आंधी, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि.,1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, संस्करण 1999।

आत्मकथा–

1. खेतान, प्रभा, अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, संस्करण 1999।

चिन्तन–

1. खेतान, प्रभा, सार्त्र का अस्तित्ववाद, सरस्वती विहार, जी़ . टी रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा,दिल्ली, संस्करण 1984।
2. खेतान, प्रभा, सार्त्र शब्दों का मसीहा, सरस्वती विहार, जी़ . टी रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा,दिल्ली, संस्करण 1985।
3. खेतान, प्रभा, अल्बेयर कामू: वह पहला आदमी , सरस्वती विहार, जी़ . टी रोड़, दिलशाद गार्डन, शाहदरा,दिल्ली, संस्करण 1993।
4. खेतान, प्रभा, उपनिवेश में स्त्रीः मुक्ति की दस वार्ताएं, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि.,1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली, संस्करण 1999।
5. खेतान, प्रभा, बाजार के बीच :बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, 21 ए, नई दिल्ली, संस्करण 2004।

सहायक ग्रथ सूची (Bibliography)

1. अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002।
2. अनामिका, स्त्री मुक्ति : साझा चूल्हा, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली संस्करण 2010।
3. अग्निहोत्री, कृष्णा, लगता नहीं है दिल मेरा, सामयिक प्रकाशन, 2010
4. अग्रवाल, रोहिणी, स्वप्न और संकल्प, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली –2011
5. अमरनाथ,डॉ.,नारी मुक्ति का संघर्ष, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड, उत्तर प्रदेश, सं. 2007।
6. आर्य, साधना, निवेदिता मेनन एवं जिनी लोकनीता, नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, सं. 2001

संदर्भ–ग्रंथ सूची–

7. अरोड़ा, सुधा, औरत की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2008
8. अंसारी,एम. ए. नारी जीवन सुलगते प्रश्न, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2006
9. ऐंगल्स,फेद्रिक, परिवार, निजी सम्पत्ति राज्य की और उत्तपति, प्रकाशन संस्थान,दिल्ली संस्करण 2003
10. कटारिया,कमलेश, नारी जीवन वैदिक काल से आज तक, यूनिक टेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
11. कस्तवार, रेखा, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2006
12. रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्शः कलम और कुदाल के बहाने, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली, सं. 2004
13. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, 1997
14. कुमार, जैनेन्द्र, नारी, पूर्वोदय प्रकाशन, 1980
15. कुमार, दीपक, चौबे, देवेन्द्र (सं.) हाशिए का वृतांत, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2011
16. कुमार, राधा,स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800–1990), अनुवादक एवं संपादक रमा शंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2005
17. कृष्णकांत, डॉ. सुमन, इक्कीसवीं सदी की ओर ,राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 2001।
18. गर्ग, मृदुला, चुकते नहीं सवाल, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002।
19. गर्ग, मृदुला,उसके हिस्से की धूप, नेशनल पब्लिशिंग हाउस , 2002।
20. गीताश्री, स्त्री आकांक्षा के मानचित्र, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008।
21. गीताश्री, औरत की बोली, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
22. गुप्ता, रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
23. ग्रीयर, जर्मेन, बधिया स्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2005।

24. ग्रीयर, जर्मेन, विद्रोही स्त्री, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001।
25. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड ड्रिस्टीब्यूटर्स लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण 2011।
26. जाखड़, डॉ. कृष्णा, प्रभा खेतान के साहित्य में नारी–विमर्श,राजस्थानी ग्रंथाकार प्रकाशन, जोधपुर 2012।
27. जैन,अरविन्द, औरतः अस्तित्व और अस्मिता, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2000।
28. जैन, अरविन्द, औरत होने की सज़ा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2006।
29. जोशी, गोपा, भारत में स्त्री असमानताः एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, सं. 2006।
30. टाकभौरे, डॉ. सुशीला, भारतीय नारी, शरद प्रकाशन,नागपुर, संस्करण 1996।
31. पचौरी, सुधीश, उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,
32. पचौरी, सुधीश, स्त्री देह विमर्श, आत्माराम एंड सां प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2000
33. पाण्डे, मृणाल,जहाँ औरते गढ़ी जाती है, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1996।
34. पाण्डे, मृणाल, परिधि पर स्त्री, राधाकृष्णप्रकाशन, दिल्ली, संस्करण1996।
35. पाण्डे, मृणाल, बंद गलियों के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001
36. पुष्पा, मैत्रयी, खुली खिड़कियाँ, समसामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003
37. पुष्पा, मैत्रयी, कस्तूरी कुंडल बसै, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009
38. पुष्पा, मैत्रयी,चाक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009
39. पुष्पा, मैत्रयी, इद्न्न्म, ज्ञान गंगा, 2010
40. प्रसाद, कमला, स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

41. प्रियंवदा, उषा, रुकोगी नहीं राधिका, राजकमल प्रकाशन, 2010
42. प्रियंवदा, उषा, पचपन खम्बे लाल दीवारे, राजकमल प्रकाशन, 2009
43. प्रीतम, अमृता, रसीदी टिकट, हिन्द पॉकेट बुक्स, 2014
44. पोपकर, किरण, मैत्रयी पुष्पा का कथा साहित्य, स्त्री–विमर्श, गौड़ पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2011
45. बानो, शहनाज, भक्ति काव्य में पितृसत्ता और स्त्री–विमर्श, अनिरुद्ध बुक प्रकाशन, दिल्ली, 2010
46. बैसंत्री, कौसल्या, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशक, दिल्ली, 1999
47. बोउवार, सीमोन द, स्त्रीः उपेक्षिता, अनुवादक प्रभा खेतान, हिंद पॉकेट बुक्स प्रा. लिमिटेड, दिल्ली, सं. 1994
48. ब्राउन, लुईज, यौन दासियाँः एशिया का सेक्स बाजार , वाणी प्रकाशन, 2005
49. मालती, के. एम., स्त्री विमर्शः भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010
50. महाजन, उषा, बाधाओं के बावजूद नई औरत, मेघा बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2001
51. माहेश्वरी,सरला, नारी प्रश्न, राधाकृष्णप्रकाशन,, संस्करण 1998।
52. मिल, जॉन स्टुअर्ट, स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002
53. मिल, जॉन स्टुअर्ट, स्त्री और पराधीनताः प्रकृति, शक्ति और भूमिका से जुड़े प्रश्न, अनुवाद एवं प्रस्तुति–युगांत धीर, संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण 2002।
54. मीणा, डॉ. ओंकार लाल, स्त्री साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर प्रा. लि., दिल्ली, 2012
55. मुद्गल, चित्रा, तहखानों में बंद अक्स, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, 2012
56. भंडारी, मन्नू, एक कहानी यह भी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2008

57. यादव, डॉ. उषा, हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना, राधाकृष्ण प्रकाशन , संस्करण 2001
58. यादव,राजेन्द्र, आदमी की निगााह में औरत , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001।
59. यादव,राजेन्द्र, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे, पितृसत्ता के नए रूप स्त्री और भूमंडलीकरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010।
60. यादव,राजेन्द्र, एवं वर्मा, अर्चना, अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2001।
61. राय, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002
62. राजकिशोर, स्त्री पुरूष कुछ पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002
63. राजकिशोर (संपादक), आज के प्रश्नः स्त्री, परंपरा और आधुनिक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संपादक 2010
64. राजकिशोर, स्त्री के लिए जगह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संपादक 1994।
65. राजकिशोर, स्त्री परंपरा और आधुनिकता ,वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संपादक 1999।
66. राजे, सुमन, हिन्दी साहित्य का आधा, भारती ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, सं. 2003।
67. राजे, सुमन, इतिहास में स्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012
68. वर्मा, महादेवी, श्रृखंला की कड़ियां, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1995।
69. वेंकटेश्वर, डॉ. एम,हिन्दी के समकालीन उपन्यासकार, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2002
70. वोल्सटनक्राफ्ट, मेरी, स्त्री–अधिकारों का औचित्य–साधन, अनुवादक मीनाक्षी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, संस्करण 2003

71. वोहरा, आशारानी, भारतीय नारीः दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण 1983
72. वोहरा, आशारानी, औरतः कल, आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, संस्करण 2005
73. वोहरा, आशारानी, स्त्री सरोकार, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, संस्करण 2006
74. राणावत उषा कीर्ति प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार अरुणोदय प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2003
75. शर्मा, डॉ. गजानन, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, इलाहाबाद, संस्करण, 1971।
76. शर्मा, नासिरा, औरत के लिए औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
77. शर्मा, क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्शः, समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, सं. 2002
78. शुक्ल, उमा, भारतीय नारी : अस्मिता की पहचान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, संस्करण 1994
79. सिन्हा, मृदुला, मात्र देह नहीं है औरत, सामयिक प्रकाशन, 2012
80. सिंह, लता, भारतीय संस्कृति में नारी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1991।
81. सेतिया, सुभाष, स्त्री–अस्मिता के प्रश्न,कल्याणी शिक्षा परिषद, नयी दिल्ली, सं. 2005।
82. गर्ग, डॉ. संजय, स्त्री–विमर्श का कालजयी इतिहास, सामाजिक प्रकाशन, संस्करण –2014
83. अरोड़ा, सुधा, आम औरत जिन्दा सवाल, सामाजिक प्रकाशन, संस्करण –2004
84. के. पी., प्रमिला, स्त्री अस्मिता और समकालीन कविता, सामाजिक प्रकाशन, संस्करण –2011

85. गुप्त, मन्मथनाथ, स्त्री–पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास, वाणी प्रकाशन –2005

सहायक पत्र–पत्रिकाएँ

1. स्त्रीकाल (स्त्री का समय और सच), संजीव चंदन (सं.) अंक–8, जनवरी 2012
2. स्त्रीकाल (स्त्री का समय और सच), संजीव चंदन (सं.) अंक–9, जनवरी 2013
3. समयांतर, पंकज बिष्ट (सं.), मार्च 2009
4. स्त्री मुक्ति , अमृता ठाकुर (सं.), फरवरी 2014
5. हंस, संपादक राजेंद्र यादव, 2005
6. हंस, राजेन्द्र यादव (सं.), नवंबर 2011
7. आजकल, सीमा ओझा (सं.), मार्च 2011
8. आजकल, फरहत परवीन (सं.), मार्च 2013

शब्द कोश–

1. वर्मा, डॉ, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञान मंड़ल, वाराणसी संवत् 2020